शील-मञ्जूषा

संकलनकर्त्री

आर्यिका श्री विशालमती माताजी एवं विज्ञानमती माताजी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

www.aaryikavigyanmatiji.in

कृति	:	**शील-मञ्जूषा**
संकलनकर्त्री	:	आर्यिका श्री विशालमती एवं विज्ञानमती माता जी
सम्पादन	:	डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
संस्करण	:	चतुर्थ, फरवरी 2013
आवृत्ति	:	2200 प्रतियाँ
मूल्य	:	40/-
ISBN	:	978-81-910547-8-1
प्राप्ति स्थान	:	**धर्मोदय साहित्य प्रकाशन** जैन मंदिर के पास बाहुबली कॉलोनी,सागर (म. प्र.) 094249-51771 dharmodayat@gmail.com
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल

इस कृति के सम्बन्ध में

मनुष्य के पास शक्ति है और वह शक्ति तटस्थ है। वह उस शक्ति का उपयोग अपने विनाश के लिए भी कर सकता है और अपने विकास के लिए भी। वह उस शक्ति का दुरुपयोग कर अपना संसार भी बढ़ा सकता है और उसका सदुपयोग कर जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त होने का मार्ग भी पा सकता है। शक्ति का सदुपयोग कर वह धर्म की ओर उन्मुख होता है तो इसका दुरुपयोग कर वह अधर्म की ओर बढ़ता है। जैनाचार्यों ने धर्म की परिभाषा की है - ''धम्मो वत्थु सहावो'' वस्तु का स्वभाव उसका धर्म है। यानी स्वभाव को प्राप्त कर लेना धर्म है-निज स्वरूप को उपलब्ध हो जाना परम धर्म है। और अधर्म हुआ अपने से हटना, अपने स्वभाव से दूर हो जाना, अपने से अतिरिक्त किसी को पाने का प्रयास करना।

संसार के सभी जीव सुख पाना चाहते हैं पर वे यह नहीं जानते कि यह सुख कहीं बाहर नहीं है। इन्द्रिय सुख, सुख नहीं है, जबकि हम यह मानते हैं कि समस्त सुखों का मूल इन्द्रियों से उत्पन्न सुख है। ज्ञानी कहते हैं कि इन्द्रियों का सुख भ्रान्ति है, इन्द्रियों का दुःख ही वास्तविकता है क्योंकि जिसे हम सुख कहते हैं उसके कारण ही हमें दुःख मिलता है। आज जो इन्द्रियों को अच्छा लगता है या ऐसा लगता है कि इनमें हमें सुख मिल रहा है, तो क्या होगा इसका परिणाम ? यदि वे पदार्थ कल न मिलें तो हमें दुःख मिलेगा यदि वे ही पदार्थ हमें रोज-रोज मिलने लगें तो भी दुःख मिलेगा। पदार्थ न मिले तो उसे प्राप्त करने की पीड़ा होगी और वही पदार्थ मिलता रहे तो ऊब पैदा होगी और फिर यह सुख मिलता भी रहे तो विलीन हो जाता है, न मिले तो दुःख देता है यानी यह सुख हर हालत में दुःख ही देता है। ज्ञानीजन ठीक ही कहते हैं कि इन्द्रिय जन्य सुख सच्चा सुख है ही नहीं। इन्द्रियाँ तो दुःखों का द्वार हैं। जब तक हमें यह प्रतीति नहीं होती तब तक हम इन्द्रियों से ऊपर उठने की कोशिश भी नहीं करते अगर हम यही मानते रहे कि समस्त सुखों का मूल इन्द्रियाँ हैं तो सहज रूप में हम अपना संसार फैला लेते हैं। पुनर्जन्म का एक ही कारण है कि इन्द्रियाँ सुख की आधार हैं। मोक्ष का एक ही कारण है कि इन्द्रियाँ दुःख की आधार हैं। हमारी परम श्रद्धा जिनमें है, हम 'जिन' के अनुयायी हैं, जिन का अर्थ होता है जिसने अपने को जीता हो-जिसकी इन्द्रियों की गुलामी सदा-सदा के लिए समाप्त हो चुकी हो, जो अपने भीतर पूर्ण स्वतंत्र

और मुक्त हो गया हो। ऐसे जिन के वचन हैं कि मनुष्य ही मुक्त हो सकता है, देवता, नारकी और तिर्यञ्च नहीं :-

देवता विषयासक्ताः नारकाः दुःखविह्वलाः।
ज्ञानहीनाः च तिर्यञ्चाः, धर्मयोग्याः हि मानवाः॥

नारकी निरन्तर दुःख भोगते हैं, तिर्यञ्च ज्ञानहीन हैं और देवता विषयों में पञ्चेन्द्रियों के विषयों में आसक्त हैं यानी जो इन्द्रियों के सुख में जी रहे हैं, वे एक गहन भ्रान्ति में जी रहे हैं। देवता को भी यदि मोक्ष पाना हो तो उसे वापस मनुष्य के जन्म में आना पड़ता है। मनुष्य के अतिरिक्त मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि कोई मनुष्य होने से मुक्त हो जाये। मनुष्य होने से केवल मुक्ति की सम्भावना है लेकिन हम भी यदि विषय-वासनाओं में डूबे रहें तो हम उस अपूर्व, अमूल्य अवसर-मनुष्य पर्याय को यों ही नष्ट कर देंगे।

मनुष्य का अर्थ है-जहाँ हम जाग सकते हैं, जहाँ हम चाहें तो इन्द्रियों से अपने को विरत कर सकते हैं, जहाँ हम चाहें तो आत्मस्थ बने रह सकते हैं यही तो वीतराग दशा है-इससे बाहर जाने की कोई इच्छा, आकांक्षा, अभिलाषा शेष नहीं रही। किसी से कुछ मिल सकता है, यह भाव ही समाप्त हो गया।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज कहते थे-''जो विषयों का उपभोग किए बिना उनको त्यागते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। जो भोग कर पश्चात् त्यागते हैं, वे मध्यम हैं किन्तु जो विषयों को भोगते ही रहते हैं और छोड़ने का नाम नहीं लेते हैं, वे जघन्य हैं।''अधिक संख्या तो तीसरी श्रेणी में ही है। यों कहा जाता है कि नर में नारायण का निवास है, आत्मा ही परमात्मा है लेकिन हमारे भीतर उसका कोई भी पता नहीं चलता। हम कैसे परमात्मा हैं ? पशुत्व तो मिल सकता है। हमारे भीतर, परमात्मा का कोई पता नहीं चलता। मनुष्य भी उन्हीं से घिरा है, जिनसे पशु-आहार, निद्रा, भय और मैथुन ही उनका सम्पूर्ण जीवन है, अब यदि मनुष्य भी सिर्फ इन्हीं के लिए जी रहा है तो वह पशुओं से भिन्न कहाँ है?

मनुष्य की शक्ति नीचे की तरफ बहती रहे तो हम सिर्फ पशु की तरह व्यवहार करते हैं, हम मनुष्य कभी नहीं हो पाते और जब यह शक्ति ऊपर के मार्ग पर जाने वाली शक्ति बन जाती है तो हम परमात्मा होने की ओर बढ़ते हैं। हमारे भीतर भी वह बीज है जो फूल बन सकता है हमारा आत्मा भी परमात्मा बन सकता है पर इसके लिये हमें जागना होगा। जागकर स्वतंत्र होना होगा इन्द्रियों की दासता छोड़नी होगी। इन्द्रियाँ जबर्दस्ती किसी को बाहर नहीं ले जा सकतीं, हम जाना चाहते हैं इसलिए जाते हैं। जब हम नहीं जाना चाहते तो इन्द्रियाँ निरर्थक हो

जाती हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना है कि सारा संघर्ष इन इन्द्रियों के कारण है, शरीर के कारण हैं, आत्मा के कारण कोई भी संघर्ष नहीं है।

इस पृथ्वी पर जो लोग आत्मा को पाने में लगते हैं उनका किसी से कोई भी संघर्ष नहीं है- क्योंकि तब बाहर की यात्रा छूट जाती है और अन्तर्यात्रा शुरू होती है। शाश्वत सुख को उपलब्ध करना है तो हमें जागना ही होगा, यह अन्तर्यात्रा शुरू करनी होगी।

पूज्य आर्यिका श्री 105 विशालमती माताजी ने एक श्रावक की जिज्ञासा के निमित्त प्रस्तुत कृति 'शील-मञ्जूषा' का प्रणयन कर मनुष्य को जगाने, उसे अर्न्तयात्रा पर ले जाने का प्रयास किया। जीवात्मा अपने शील (स्वभाव) में आने के लिए क्या करे और क्या नहीं करे। उसके लिए क्या निषिद्ध है और क्या विधेय है, इस विवेचन ने कृति का कलेवर समृद्ध किया है। 'क्या करना चाहिए' यह जानने और करने के साथ यह जानना भी अति आवश्यक है कि क्या नहीं करना चाहिए या क्या नहीं होना चाहिए, ब्रह्मचर्य जीवन के परम आनन्द की उपलब्धि है, इस उपलब्धि के लिए 'क्षुद्रता' का परित्याग नितान्त आवश्यक है। अब्रह्मचर्य से बचना बहुत जरूरी है, ब्रह्मचर्य ऐसा आनन्द है जो स्वयं से आविर्भूत होता है। अब्रह्मचर्य का मतलब है, ऐसा सुख जो हम दूसरे में तलाश करते हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण से प्राप्त होने वाला सुख बुनियादी रूप से सुख की दूसरे में तलाश है, अनिवार्यतः पर में सुख की तलाश है, जो कथमपि श्रेयस्कर नहीं है। 'शील मञ्जूषा' कृति मंगलाचरण से प्रारम्भ होकर शील रक्षा में तत्पर पुरुषों एवं नारियों के मंगल आचरण के आख्यानों का कथन कर समाप्त होती है। मध्य में विषय के विविध पक्षों पर आगम प्रमाण पूर्वक विवेचन किया गया है एवं यथासम्भव प्रसिद्ध उदाहरणों के माध्यम से विषय को विश्वसनीय और ग्राह्य बनाया गया है।

देव, शास्त्र, गुरु को नमन कर लेखिका प्रतिज्ञा करती हैं कि ''जिनागम के अनुसार स्वान्तः सुखाय और भव्य जीवों के हितार्थ मैं शील (ब्रह्मचर्य) के स्वरूप और भेद-प्रभेदादि का आगम से संकलन करके संक्षेप में कथन करूँगी।'' कृति का प्रयोजन है-''जिसका पठन और श्रवण कर भव्य जीव शील की महिमा समझ अपने शीलरत्न की सुरक्षा कर अपना जीवन सार्थक करें।''

प्रथम अध्याय में ब्रह्मचर्य के लक्षण और भेदों का कथन है, ब्रह्मचर्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लेखिका ने ब्रह्म, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्यप्रतिमा, ब्रह्मचर्यमहाव्रत आदि की शास्त्र सम्मत व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं।

द्वितीय अध्याय विवाह-संस्कार के स्वरूप और उसक प्रयोजन पर प्रकाश डालता है। इसकी आवश्यकता क्यों और किसे है? इसका उद्देश्य क्या है? इसकी पद्धति क्या है? आदि प्रश्नों का सम्यक् समाधान करते हुए लेखिका ने अन्त में ''वासना पर विजय पाने की सीढ़ियाँ'' भी बताई हैं, जिनका अवलम्बन लेकर व्यक्ति मुक्ति महल की ऊँचाईयों तक पहुँच सकता है।

तीसरे अध्याय में अतिसंक्षेप में सन्तान और उसे संस्कारित करने की चर्चा की गई है, संयोग के साथ वियोग लगा ही हुआ है, चतुर्थ अध्याय में पति के परलोक-प्रयाण की दशा में विधवा के क्या कर्त्तव्य हैं, इन पर प्रकाश डाला गया है।

पाँचवे अध्याय में मैथुन के स्वरूप और उसके भेदों की चर्चा करने के बाद विस्तार से उन कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है जो मैथुन का भाव प्रज्वलित करने में सहायक बनते हैं।

छठे अध्याय में अ-ब्रह्म या मैथुन के दुष्परिणामों को विशद व्याख्या की गई है।

सप्तम अध्याय ब्रह्मचर्य रक्षा के उपायों और उनसे होने वाले लाभों की चर्चा करता है।

आठवाँ अध्याय शीलरक्षा में तत्पर प्रसिद्ध पुरुषों एवं नारियों से हमारा परिचय कराता है, जिसे पढ़कर इस मार्ग को अपनाने के प्रति उत्साह उत्पन्न होता है।

सम्पूर्ण पुस्तक पठनीय है और शील की ओर उन्मुख पाठकों का अच्छा मार्गदर्शन करती है। मैं लेखिका (माताजी) के चरणों में वन्दना करता हुआ यही कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी की लेखनी से जिनवाणी का मर्म प्रकट करने वाली ऐसी ही रचनाएँ और सामने आवें, पुस्तक-रचना में सहयोग करने वाली आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी भी प्रशंसा की पात्र हैं। निरन्तर ध्यान-अध्ययन में संलग्न रहने वाली इन माताओं के माध्यम से जिनशासन की प्रभावना प्रवर्धमान रहे, यही कामना है।

प्रस्तुत कृति के लेखन और प्रकाशन में सहयोग करने वाले अन्य सभी महानुभाव भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इति शुभम्

5.3.1996

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

अपनी तरफ से ...

वर्तमान पंचमकाल में भरतक्षेत्र में त्रिलोकपूज्य केवली भगवान के साक्षात् दर्शन तो नहीं हैं किन्तु जगत्प्रकाशिनी उनकी वाणी आज भी विद्यमान है। उस वाणी के आधार-स्तम्भ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी तपोधन मुनिवृन्द और आर्यिका-मातायें हैं, जो आज भी भौतिक युग की चकाचौंध के बीच आध्यात्मिक ज्योति विकीर्ण कर रहे हैं। उस वाणी के अनुरूप अपने जीवन को ढाल कर वे स्वयं तो मोक्षमार्ग के सच्चे पथिक बने ही हैं और अन्य अनेक भव्यजीवों को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त करने के निमित्त भी बने हैं।

ऐसी ही एक जागृत आत्मा है-पूज्य आर्यिका विशालमती माताजी जिन्होंने इस पुस्तक के माध्यम से श्रावक-श्राविकाओं को आत्म-कर्त्तव्य का परिज्ञान कराते हुए शील धर्म की महिमा प्रकट की है। पुस्तक-रचना का निमित्त बनी है- जबलपुर जिले के अतिशय क्षेत्र पनागर के ग्रीष्मावकाश में एक धर्म-पिपासु श्रावक की यह जिज्ञासा कि हम ब्रह्मचर्य के पालन में किस प्रकार सावधानी रखें?

भौतिकता की चकाचौंध में लुब्ध मानव आज स्वकर्त्तव्यों से विमुख होते जा रहे हैं, ऐसी भ्रान्त पीढ़ी को अपने वास्तविक स्वरूप का भान कराते हुए पूज्य आर्यिकाश्री ने समाज व राष्ट्र के लिए 'शील-मञ्जूषा' के रूप में जो उदात्त अवदान दिया है, वह अत्यन्त श्लाघनीय है, अभिनन्दनीय है। अतीत और वर्तमान की अनेक आख्यायिकाओं के माध्यम से अपने मन्तव्य को पूज्या माताजी ने जिस विश्वसनीय विधि से प्रस्तुत किया है, वह स्तुत्य है। पुस्तक की सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया में सक्रिय सहयोग दिया है पूज्या आर्यिका विज्ञानमती माताजी ने, जिन्होंने नाना ग्रन्थों से इस विषय से सम्बद्ध सामग्री का चयन कर उसे सम्मिलित करते हुए पुस्तक के कलेवर को सम्पुष्ट किया है तथा मुनि श्री 108 समतासागरजी ने एवं ऐलक श्री 105 अभयसागरजी ने अपनी साधना का अनमोल समय देकर पैनी दृष्टि से इस कृति का अवलोकन कर जो निर्देशन दिये और पुस्तक के कलेवर को सुसंस्कृत किया, उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

पुस्तक के सम्पादन कार्य का निर्वाह किया है डॉ. चेतनप्रकाश जी पाटनी ने।

- ब्र. सन्तोष (शान्तला)

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ संख्या
● **मंगलाचरण**	
1. ब्रह्मचर्य : लक्षण और भेद	1-9
❑ ब्रह्मचर्य शब्द का निरूक्तिपरक अर्थ	3
❑ ब्रह्मचर्य का स्वरूप	3
❑ ब्रह्मचर्य के भेद	5
❑ अणुव्रत	5
❑ महाव्रत	8
2. विवाह : स्वरूप और प्रयोजन	10-31
❑ विवाह क्या है?	10
❑ विवाह की आवश्यकता क्यों ?	10
❑ विवाह की आवश्यकता किसे ?	11
❑ विवाह के भेद	12
❑ विवाह पद्धति	13
❑ भारतीय विवाह-पद्धति का रहस्य	17
❑ विवाह किस कन्या से करें ?	21
❑ विवाह का मूल उद्देश्य	25
❑ वासना पर विजय प्राप्त करने की सीढ़ियाँ	31
3. सन्तान और संस्कार	32-43
❑ योग्य संतान की प्राप्ति किसे ?	32
❑ संस्कारों का चमत्कार	34

- वर्तमान में बच्चों को संस्कारित कैसे करें ? 42

4. वैधव्य : दशा और दिशा 44–50
- वैधव्य क्या है ? 44
- वैधव्य का कारण 46
- विधवा विवाह का निषेध 46
- विधवा क्या करें ? 48

5. मैथुन : स्वरूप, भेद और कारण 51–74
- अब्रह्म अपरनाम मैथुन 51
- मैथुन के भेद 52
- मैथुन प्रज्ज्वलित होने के कारण 53
- कामोद्दीपक आहार का सेवन करने से 53
- विषयोपभोग सम्बन्धी चिन्तन 57
- कुशील स्त्री-पुरुषों की संगति 59
- वेद नामक कर्म की उदीरणा होने से 61
- स्त्री के चित्रादि को देखने से 62
- स्त्री के अंगों के स्पर्श से 63
- मधुरगान सुनने से 65
- एकान्त में स्त्री सम्पर्क से 67
- स्त्री के अंगोपांग देखने से 69
- अब्रह्म के कारणों के भेद (अब्रह्म की उत्पत्ति) 74

6. अब्रह्म के दुष्परिणाम 75–97
- मैथुन से होने वाली हानियाँ 76

- शारीरिक हानि 76
- धार्मिक हानि 82
- सामाजिक हानि 83
- आर्थिक हानि 84

7. ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय और लाभ 98–148
- संयम के आठ शत्रु 101
- कामदोष-विचार 102
- स्त्रीदोष विचार 106
- शरीर की अशुचिता का विचार 121
- स्त्री/पुरुष संसर्ग दोष विचार 124
- वृद्धसेवा 127
- ब्रह्मचर्य की प्रशंसा 134
- ब्रह्मचर्य से लाभ : प्रशस्त ब्रह्मचर्य 139

8. शीलरक्षा में तत्पर पुरुष एवं नारियाँ 149–179
- चिड़िया का सतीत्व 153
- मदनजयी मदनरेखा 154
- अनन्तमती का अचिन्त्य शौर्य 160
- सेठ सुदर्शन : श्रेष्ठी का श्रेष्ठशील 164
- नीली का निर्मल शील 170
- रानी सिंहिका 171
- राजकुमार अभिराम 174
- अनंगविजयी अनंगसरा 175
- विजय सेठ और विजया सेठानी 177
- कुलभूषण-देशभूषण 178

आर्यिका श्री विशालमती माताजी का जीवन परिचय

पूर्व नाम	:	कुसुमबाई
पिता	:	श्री बापूलालजी चोरडिया
माता	:	मोहनीबाई
जन्म तिथि	:	आसोज वदी अमावस 2012
जन्म स्थान	:	निम्बाहेड़ा (राजस्थान)
प्रेरक	:	मुनि श्री 108 भव्यसागर जी महाराज
दीक्षा गुरु	:	मुनि श्री 108 विवेकसागरजी महाराज
दीक्षा दिवस	:	7 मार्च 1984, पिड़ावा ग्राम
व्यक्तित्व	:	मधुर शैली, अमृतमयवाणी, हृदयस्पर्शी प्रवचन, कठोर तपस्या, दृढ़संयम व रत्नत्रय आराधना में लीन, मोक्षमार्ग पथिक आगामानुसार आचरण।

आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी का जीवन परिचय

पूर्वनाम	:	लीला
पिता	:	श्री बालूलाल जी
माता	:	श्रीमती कमला जी
जन्मतिथि	:	मिति आश्विन शुक्ला पंचमी, सन् 1963
जन्मस्थान	:	भीण्डर (उदयपुर-राजस्थान)
लौकिक शिक्षा:		हाईस्कूल
परिणय	:	भीण्डर में ही, 18 वर्ष की आयु में, सन् 1981
गृहत्याग	:	परिणय के 18 माह बाद
प्रतिमाधारण	:	अलोध में 5 प्रतिमा, कुचामन में 9 प्रतिमा के व्रत
दीक्षातिथि	:	2 फरवरी 1985, कूकनवाली (कुचामनसिटी-राजस्थान)
दीक्षागुरु	:	परम पूज्य आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी मुनिराज
रुचियाँ	:	स्वाध्याय, तप-त्याग, चिन्तन-मनन, लेखन
विशिष्टता	:	मधुर, गम्भीर पौराणिक शैली में प्रवचन

श्री शान्तिनाथाय नमः

आचार्यविद्यासागरगुरवे नमः **पूज्य विवेकसागराय नमः**

मंगलाचरण

सहस अष्टदश गुण सहित, पाल्यो शील महान।
बने निकल परमात्मा, करें सुधारस पान ॥
ऐसे श्री जिनराज को, नमन करूँ धर ध्यान।
जिनकी भक्ति-प्रसाद से, होवे मन अम्लान॥
देव-शास्त्र गुरु वन्दि करि, जिन आगम को देखि।
करूँ कथन संक्षेप में, भव्य जीव हित पेखि॥
शील सदा सुखकारक है, अतिचार विवर्जित निर्मल कीजे।
दानव-देव करे तसु सेव, विषानल-भूत-पिशाच पतीजे॥
शील बड़ो जग में हथियार जु, शील को उपमा काहे की दीजे।
'ज्ञान' कहे नहीं शील बराबर, तातैं सदा दृढ़ शील धरीजै॥

जिन्होंने रत्नत्रय आराधना के फल को प्राप्त किया तथा जो अठारह हजार गुणों से युक्त ब्रह्मचर्य व्रत को पालन करके शैलेषी अवस्था को प्राप्त हुए हैं, ऐसे अयोगी केवली और जो निर्दोष अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए भव्य जीवों को शील का माहात्म्य प्रकट कर रहे हैं, ऐसे गणधरादि महामुनीश्वरों को अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करके तथा द्वादशाङ्गमयी जिनवाणी की अत्यन्त श्रद्धापूर्वकभक्ति करते हुए जिनागम के अनुसार स्वान्तः सुखाय और भव्य जीवों के हितार्थ मैं शील (ब्रह्मचर्य)के स्वरूप और भेद-प्रभेदादि का आगम से संकलन करके संक्षेप में कथन करूँगी जिसका पठन और श्रवण कर भव्य जीव, शील की महिमा समझ, अपने शील-रत्न की सुरक्षा कर अपना जीवन सार्थक करें, यही मेरी भावना है।

1. ब्रह्मचर्य : लक्षण और भेद

संसार के सभी प्राणी आज भोगों की दौड़ में एक-दूसरे से आगे निकलने की कोशिश कर रहे हैं। वासना के वशीभूत होकर जिनमें सुख का वास/निवास/प्रवास नहीं है, मात्र आभास है, ऐसी अनेक प्रकार की पापात्मक क्रियाएँ करके अपने भीतर कषायों की आग जलाकर आकुलता के ताप को सहन कर रहे हैं। मोह और अविद्या के कुसंस्कारों से पाप-प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। बहुसंख्यक जीव तो भ्रान्तिवश यह भी सोचते हैं कि ''हम तो पाप करते ही नहीं हैं'' लेकिन उनका ऐसा सोचना गलत है क्योंकि यदि सूक्ष्मता से विचार करें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक प्राणी की प्रत्येक क्रिया में कितना वासनाओं का पुट लगा है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह, ये पाँचों पाप सर्वप्रथम वासना की आधारशिला पर ही कषाय-भावनाओं के द्वारा जन्म लेते हैं। इन कषायों ने आज मानव को सकल अंगों से पूर्ण होने पर भी विकलांग बना दिया है। जैसे -

1. क्रोध ने मानव की आँखें छीन ली हैं, क्योंकि क्रोध में अंधे व्यक्ति को माता-पिता, हित-अहित कुछ भी दिखाई नहीं देता है।
2. मान, अहंकार, घमण्ड, मद ने इस मानव को बहरा बना दिया है, कारण यह है कि मानी, अहंकारी व्यक्ति किसी की नहीं सुनता है।
3. माया कषाय ने वाणी अथवा जिह्वा (रसना) का अर्थ छीन लिया है क्योंकि मायावी व्यक्ति के वचनों पर माँ भी विश्वास नहीं करती है।
4. लोभी, लालची व्यक्ति को अपनी इज्जत (नाक) की परवाह नहीं रहती है। वह सबके सामने हाथ फैलाकर अपनी नाक कटवा लेता है। इस प्रकार घ्राणेन्द्रिय भी व्यर्थ हो गई।

सारतः कषायों ने चार इन्द्रियों को और वासना ने कायिक बल का हरण करके स्पर्शन इन्द्रिय तथा मन को मलिन कर प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा को विकलांग बना कर निज के हित में असमर्थ सा कर दिया है।

जब एक इन्द्रिय या एक अंग से हीन व्यक्ति को अपने व्यावहारिक कार्यों को करने में भी अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है तो कषायों और वासनाओं से ग्रस्त विकलांग मानव की दशा का वर्णन कौन कर सकता है?

हित की शिक्षा को ग्रहण करने की क्षमता से रहित एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय आदि अनेक विकसित अवस्था वाली सीढ़ियाँ पार करके यह पूर्ण विकसित, हित-अहित के ग्रहण-त्याग के सामर्थ्य से युक्त मनुष्य-

पर्याय मिली है। इस जीवन में शक्तिशाली प्रवाह है। इसमें मन, वाणी और शरीर तीन प्रमुख शक्तियाँ हैं। जिस प्रकार आज मानव ने जल, विद्युत, वायु, सूर्य आदि पदार्थों की प्राकृतिक शक्तियों को नियंत्रित करके भौतिक क्षेत्र की कई समस्याओं को हल कर दिया है, जैसे-बड़े-बड़े बाँधों के माध्यम से जल को एकत्र करके विद्युत की उत्पत्ति की जाती है, उसी प्रकार हम भी मन, वाणी और काया की शक्तियों को धर्म की दिशा देकर नियंत्रित करें तो स्व-पर कल्याण के अनेक सृजनात्मक कार्य कर सकते हैं अर्थात् ये तीनों शक्तियाँ जब अनुशासनबद्ध सही दिशा में प्रवर्तन करती हैं तो जीवन में सुख, समृद्धि और शान्ति की त्रिवेणी प्रवाहित होने लगती है। अनुशासन के अभाव में व्यक्ति की शक्तियाँ परिवार और देश के लिए अभिशाप बनकर बिखरती हैं, लक्ष्यविहीन, विवेकशून्य तथा असंयत प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुण्ठित बनाती हैं। यद्यपि स्थूल रूप से वाणी के द्वारा जो पाप और समाजविरोधी प्रयोग होते हैं, उन पर समाज, संस्कृति, सत् साहित्य, सभ्यता तथा इतिहास अंकुश लगाते हैं, शरीर के माध्यम से या अन्य भौतिक साधनों की मदद से जो पाप होते हैं, उनका कुछ अंशों में कानून, शासन, पुलिस आदि विरोध करते हैं तथा मन द्वारा जो पाप होते हैं उनको रोकने की बातें तो दूर रहीं, उन्हें समझने का भी सामर्थ्य न समाज में है, न पुलिस में है और न ही शासन के कानून में। मन पर अनुशासन करने का सामर्थ्य धर्म, संयम और दृढ़ संकल्प में ही है। आज वाणी और शरीर की अपेक्षा कई गुने पाप मन के आधार से हमारे जीवन में घटित हो रहे हैं। वाचनिक और शारीरिक चेष्टाओं को चाहे कुछ क्षण के लिए विराम मिल भी जाए परन्तु मन को किसी भी अवस्था में और किसी भी समय में एक क्षण के लिए भी विराम नहीं मिलता है, मात्र धर्म की शरण में ही उसे विराम मिल सकता है और वह पवित्र हो सकता है।

धर्म (अहिंसा) वास्तव में मानसिक पवित्रता का ही नाम है। इसका आचरण अंतरंग में समता और बाह्य में यत्नाचार से नियंत्रित प्रवृत्तियों के रूप में है। इसके व्यापक क्षेत्र में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सद्गुणों का समावेश है अतः आचार्यों ने अपने जीवन में अहिंसा का साक्षात्कार करने के लिए हिंसा के साथ-साथ झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन सब पापों का परित्याग करने की प्रेरणा दी है।

आज देश के कोने-कोने में व्यभिचार, भ्रष्टाचार और आतंकवाद दिखाई दे रहे हैं। भोगों को बढ़ावा देने वाले टी.वी., वी.सी.आर, वी.सी.पी., वीडियो और

अश्लील उपन्यास आदि साधनों के द्वारा कामोत्तेजक प्रवृत्तियों की और भक्ष्याभक्ष्य के विवेक से रहित नाना व्यंजनों को खाने-खिलाने की प्रेरणा दी जा रही है। फलस्वरूप विश्व में आज सदाचार और संयमित आचरण करने वाले व्यक्तियों का मिलना अत्यन्त दुष्कर हो गया है। युवक-युवतियों को कोर्ट-मैरिज के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है जिससे वे भी आज दुराचरण का सेवन करके धर्म, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था पर कलंक का टीका लगा रहे हैं। सीता, अंजना, राम आदि महान् आत्माओं जैसा व्यक्तित्व ढूँढ़ने पर भी आज देखने में नहीं आ रहा है। अतः आचार्यों द्वारा बतायी गयी ब्रह्मचर्य की महिमा को समझकर, अनुपम शीलरत्न को धारण करके अपनी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को पुनः जीवन्त रूप देकर अपने को कृतार्थ करना चाहिए।

❑ **ब्रह्मचर्य शब्द का निरुक्तिपरक अर्थ :**

ब्रह्म और चर्य, इन दो शब्दों से ब्रह्मचर्य शब्द की निष्पत्ति हुई है। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ है ज्ञान स्वरूप आत्मा। उस आत्मा में 'चर्य' आचरण करना, लीन होना, तल्लीन होना ब्रह्मचर्य है। इसके शीलव्रत, असिधाराव्रत आदि अनेक नाम हैं।

प्राचीन मनीषियों एवं दार्शनिकों ने 'ब्रह्म' शब्द के ईश्वर, ज्ञान का स्रोत, जिनवाणी और वीर्य आदि अनेक अर्थ किए हैं तथा 'चर्य' शब्द के उपासना, उपार्जन, रक्षण और सदुपयोग आदि अनेक अर्थ किए हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य शब्द से ईश्वर की उपासना, ज्ञान का उपार्जन, वीर्य का रक्षण तथा वीर्य का सदुपयोग आदि अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं। मन को वश में करना इन्द्रिय-निग्रह है और इन्द्रिय तथा वासना का निग्रह करना ब्रह्मचर्य शब्द का वास्तविक अर्थ है।

❑ **ब्रह्मचर्य का स्वरूप :**

1. चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से स्त्री-पुरुष के परस्पर शरीर-स्पर्श करने में सुख प्राप्ति की इच्छा से जो राग परिणाम होता है, उसका परित्याग करना ब्रह्मचर्य है।
2. जिसके परिपालन करने से अहिंसा आदि गुणों की अभिवृद्धि होती हो, वह ब्रह्मचर्य है।
3. अपने और स्त्री के शरीर संबंधी राग को जिसने नष्ट कर दिया है ऐसे-विरागी मुनि की अपनी आत्मा रूपी ब्रह्म में जो चर्या होती है, वह ब्रह्मचर्य है।
4. जननेन्द्रिय, इन्द्रियसमूह के निग्रह और मन की शान्ति को ब्रह्मचर्य कहते हैं।
5. स्वतंत्र वृत्ति का त्याग करने के लिए गुरुकुल में निवास करना ब्रह्मचर्य है।

(राजवार्तिक)

6. जिस मुनि का मन अपने शरीर के भी सम्बन्ध में निर्मल हो चुका है, उसी के ब्रह्मचर्य है। व्यवहार की अपेक्षा जो पुण्यात्मा स्त्रियों के सुन्दर अंगों को देखकर उनमें राग रूप बुरे परिणाम छोड़ देता है, वह दुर्द्धर ब्रह्मचारी है।
7. जिसकी रक्षा की जाने पर अहिंसा आदि गुण वृद्धिंगत होते हैं उसे अध्यात्म विद्या में प्रवीण आचार्य ब्रह्म कहते हैं। अतः काम की वृद्धि करने वाले कार्यों, रसों एवं कामवर्द्धक शास्त्रों का श्रवण-पठन आदि करके अपनी आत्मा में काम के मद को जागृत नहीं करना चाहिए।
8. दस प्रकार के अब्रह्म का त्याग करना ब्रह्मचर्य है। अर्थात् अनुज्ञात स्त्री के स्मरण, स्त्रियों की कथा सुनने का, स्त्रियों के संयुक्त शयन आदि का और स्वच्छंद प्रवृत्ति का त्याग करना अथवा गुरु के संघ में वास करना ब्रह्मचर्य है। **(मूलाचार)**

ब्रह्म :

1. अहिंसादिगुणबृंहणाद् ब्रह्म। अहिंसादयो गुणाः यस्मिन् परिपाल्यमाने बृंहन्ति वृद्धिमुपयन्ति तद्ब्रह्मेत्युच्यते। (त.वा. 7,16,10)
2. अहिंसादिगुणा यस्मिन् बृंहन्ति ब्रह्म तत्त्वतः। (ह.पु. 58-132)
3. दिव्यौदारिकामानां, कृतानुमतिकारितैः।
   मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टादशधा मतम्।
   -योगशास्त्र 1-23, शि.पु.च.1,3,625
4. बृंहन्ति अहिंसादयो गुणा यस्मिन् सति तद् ब्रह्म ब्रह्मचर्यम्।
   -त. वृत्ति श्रुतः 7-1,16 ।

ब्रह्मचर्य :

5. व्रतपरिपालनाय ज्ञानाभिवृद्धये कषायपरिपाकाय च गुरुकुल वासो ब्रह्मचर्यम्।
   -त.भा. 9-6, पृ. 207
6. अब्रह्मसेवननिवृत्तिः ब्रह्मचर्यम्-त.भा. सिद्ध. वृ. 7, 3।
   तच्च ब्रह्मचर्यं गुरुकुलवासलक्षणम्। -त.भा. सिद्ध. वृ. 9-6।
7. बंभं मेहुणवज्जणं- गु. गु. षट् स्वो. वृ.13, पृ. 38।
8. ब्रह्मचर्य मैथुनविरतिः। -जम्बूद्वी. शा. वृ. 162।
9. सव्वंगं पेच्छंतों इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।

सो बम्हचेरभावं सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि। -द्वादशानुप्रेक्षा- 80।

10. जीवो बंभा जीवम्मि चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो।
    तं जाण बंभचेरं विमुक्कपरदेहतित्तिस्स। - भ.आ., 878
11. मैथुनाद्विरतिर्ब्रह्म। - भ.आ. विजयो., 57
12. निरस्तांगांगरागस्य स्वदेहेऽपि विरागिणः।
    जीवे ब्रह्मणि या चर्या ब्रह्मचर्य तदीर्यते। - भ. आ., अमित 890।
13. ज्ञानं ब्रह्मदया ब्रह्म कामविनिग्रहै।
    सम्यगत्र वसन्नात्मा ब्रह्मचारी भवेन्नरः। -उपासकाध्ययन 872
14. आत्मा ब्रह्म विविक्तबोधनिलयो यत्तत्र चर्यं परं,
    स्वांगासंगविवर्जितैकमनसस्तद् ब्रह्मचर्यं मुनेः।
    एवं सत्यबलाः स्वमातृ-भागिनी-पुत्रीसमाः प्रेक्षते,
    वृद्धाद्या विजितेन्द्रियो यदि तदा स ब्रह्मचारी भवेत्। -पद्म. पंच. 12-2
15. या ब्रह्मणि स्वात्मनि शुद्धबुद्धेश्चर्या परद्रव्यमुचः प्रवृत्तिः।
    तद् ब्रह्मचर्यं व्रतसार्वभौमं ये पान्ति ते यान्ति परं प्रमादम्।
    -भ. आ. मूला. 878। अ.ध. 4-59-60

❑ **ब्रह्मचर्य के भेद :**

ब्रह्मचर्य के तीन भेद हैं :-

1. मन से ब्रह्मचर्य 2. वचन से ब्रह्मचर्य 3. काय से ब्रह्मचर्य।

अथवा ब्रह्मचर्य दो प्रकार का होता है-

1. द्रव्य ब्रह्मचर्य और 2. भाव ब्रह्मचर्य

अथवा ब्रह्मचर्य नौ प्रकार का होता है- संसार में (1)मानुषी (2) तिर्यंचिनी (3) देवी, ये तीन प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं। इनका तीनों योगों की शुद्धतापूर्वक त्याग करना, नौ प्रकार का ब्रह्मचर्य है, अथवा मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना को सर्वथा रोककर जितेन्द्रिय पुरुष को नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक स्त्री के सम्बन्ध में नौ भेद हो सकते हैं। (मूलाचार)

ब्रह्मचर्य दो प्रकार का भी होता है- (1) ब्रह्मचर्य अणुव्रत (2) ब्रह्मचर्य महाव्रत।

1. ब्रह्मचर्य अणुव्रत :

1. कुशील का एकदेश त्याग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

2. न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
   सा परदारनिवृत्तिः, स्वदारसन्तोषनामापि।-र.श्रा., 3-13।
   जो पापों से भयभीत है, वह परस्त्री-सेवन न तो करता है और न दूसरों को करने की प्रेरणा देता है, उसके परदारनिवृत्ति या स्वदारसन्तोष नामक अणुव्रत होता है।
3. अपनी ही स्त्री में सन्तोष रखना, अपनी स्त्री से भी मनमाना कामसेवन न करना अर्थात् अपनी स्त्री में भी कामवासना का भाव अधिक नहीं रखना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।
4. अपनी विवाहित स्त्री को छोड़कर शेष सभी स्त्रियों को माँ, बहिन और बेटी के समान समझना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।
5. दम्पति एक दूसरे में सन्तुष्ट और प्रसन्न रहें, दाम्पत्य की मर्यादा के बाहर आकर्षण का अनुभव न करें, गृहस्थों के लिए यही ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।
6. दूसरे गृहस्थ के द्वारा स्वीकार की हुई अथवा बिना स्वीकार की हुई परस्त्रीसेवन का भी त्याग करना और सदैव अनंग-क्रीड़ा का त्याग करने वाले जीवों को जिनप्रवचन में स्थूल ब्रह्मचारी कहा गया है।
8. जो गृहस्थ स्त्री के शरीर को अशुचिमय, दुर्गन्धित जानकर तथा उसके रूप-लावण्य को मोहित करने वाला मानकर स्वस्त्री को छोड़कर शेष सम्पूर्ण स्त्रियों का अथवा स्व-पर सभी स्त्रियों का त्याग करता है, उसके ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।
9. जो मल के बीजभूत, मल को ही उत्पन्न करने वाले, मलप्रवाही दुर्गन्धित लज्जाजनक व ग्लानियुक्त अंग का विचार करता हुआ काम सेवन से विरत होता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी श्रावक है।
10. अवैध, अनुचित और अप्राकृतिक कामसेवन का परित्याग करके स्वास्थ्य-रक्षा और धार्मिक नियमों का पालन करते हुए अपनी स्त्री में संतुष्ट रहना स्वदारसन्तोषव्रत है।
11. जिसमें वेश्या, परस्त्री, कुमारी तथा लेपादि निर्मित स्त्री स्वीकार नहीं की जाती है, केवल स्वकीय स्त्रीसेवन में सन्तोष होता है, उसे मुनिराज चतुर्थ ब्रह्मचर्य अणुव्रत कहते हैं।

❋ उपात्ताया अनुपात्तायाश्च परांगनायाः संगान्निवृत्तरतिगृहीति चतुर्थमणुव्रतम्। -स. सि.-7-20, त.वा.7-20-4, चा.सा.पृ. 6।

❋ परदारसमागमात (विरतिः)-पद्मपुराण 14-194।
❋ दारेषु परकीयेषु परित्यक्तरतिस्तु यः।
स्वदारेष्वेव सन्तोषस्तच्चतुर्थमणुव्रतम्।-ह. पु. 58-141
❋ उपात्तानुपात्तान्यांगनासंगाद् विरतरतिः। - त. श्लो., 7-201
❋ ये निजकलत्रमात्रं परिहर्तुं शक्नुवन्ति न हि मोहात्।
निःशेषशेषयोषिन्निषेषणं तैरपि न कार्यम्। - पु.सि., 110
❋ असुइमयं दुग्गंधं महिलादेहं विरच्चमाणो जो।
रूवं लावण्णं पि य मण-मोहणकारणं मुणइ।
जो मण्णदि परमहिलं जणणी-बहिणी-सुआइसारिच्छं।
मणवयणे काएण वि बंभवई सो हवे थूलो। -कार्तिकेया. 337-338
❋ मातृ-स्वसृ- सुता-तुल्या निरीक्ष्य परयोषितः।
स्वकलत्रेण यस्तोषश्चतुर्थ तदणुव्रतम्। -सुभा.सं. 778
❋ पब्बेसु इत्थिसेवा अणंगकीडा सया विवज्जंतो।
थूलयडबंभाचारी जिणेहिं भणिओ पवयणम्मि। -वसु.श्रा. 212
❋ षण्ढत्वमिन्द्रियच्छेदं वीक्ष्याब्रह्मफलं सुधीः।
भवेत् स्वदारसन्तुष्टोअन्यदारान् विवर्जयेत्। - योग. शा. 2-76
❋ परस्त्रीमरणं यत्र न कुर्यान्न च कारयेत् ।
अब्रह्मवर्जनं नाम स्थूलं तुर्यं तु तद्व्रतम् ।-धर्मसं. श्रर. 6-63
❋ परेषां योषितो दृष्ट्वा निजमातृ-सुतासमाः।
कृत्वा स्वदारसन्तोषं चतुर्थं तदणुव्रतम्।-पू.उपासका. 26
❋ चतुर्थ ब्रह्मचर्य स्याद् व्रतं देवेन्द्रवन्दितम्।
देशतः श्रावकैर्ग्राह्यं सर्वतो मुनिनायकैः। -लाटी सं. 6, 59
❋ स्वकीयदारसन्तोषी वर्ज्जनं वान्योषिताम्।
श्रमणोपासकानां तच्चतुर्थमणुव्रतं मतम्। -धर्मसं. मान 2-28, पृ. 67

ब्रह्मचर्य प्रतिमा :

❋ मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सम्।
पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः।-र.क.,143
❋ संसारभयमापन्नो मैथुनं भजते न यः।
सदा वैराग्यमारूढो ब्रह्मचारी स भण्यते। - सुभा.सं., 849

❋ यो मन्यमानो गुणरत्नचौरीं विरक्तचित्तस्त्रिविधेन नारीम्।
पवित्रचारित्रपदानुसारी स ब्रह्मचारी विषयापहारी।-अमित.श्रा., 7-73
❋ यः कटाक्षविशिखैर्न वधूनां जीयते जितनरामवर्गेः।
मर्दितस्मरमहारिपुदर्पो ब्रह्मचारिणममुं कथयन्ति। -धर्मपरीक्षा, 20-59
❋ सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी।
मण-वाया-कायेण य बंभवई सो हवे सदओ। - कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 384
❋ पुव्वुत्तणवविहाणं पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहाइणिवित्तो सत्तमगुणबंभयारी सो। -वसु.श्रा., 297
❋ स्त्रीयोनिस्थानसम्भूतजीवघातभयादसौ।
स्त्रियं नो रमते त्रेधा ब्रह्मचारी भवत्यतः। - भावसंग्रह, वामदेव कृत, 539
❋ सूक्ष्मजन्तुगणाकीर्णं योनिरन्ध्रं मलाविलम्।
पश्यन् यः संगतो नार्याः कष्टादिभयतोऽपि च।
विरक्तो यो भवेत्प्राज्ञस्त्रियोगैस्त्रिकृतादिभिः।
पूर्वषड्व्रतनिर्वाही ब्रह्मचर्यात्र स स्मृतः। -धर्मसं. श्रा., 8, 26-27
❋ सप्तमी प्रतिमा चास्ति ब्रह्मचर्याह्वया पुनः।
यत्रात्मयोषितश्चापि त्यागो निःशल्यचेतसः। - लाटी सं. 7-24।

2. ब्रह्मचर्य महाव्रत :

1. मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदना इस प्रकार नवकोटि से सम्पूर्ण प्रकार की स्त्रियों का आजीवन त्याग करना, ब्रह्मचर्य महाव्रत है।
2. जो अपने शरीर से विरक्त हो चुका है वह इन्द्रियविजयी होकर वृद्ध, स्त्री को माँ, समान वय वाली को बहिन और अपने से छोटी स्त्री को पुत्री के समान समझता है, वह मुनि ब्रह्मचारी है।
3. स्त्री के रूप को देख उसके प्रति वांछाभाव-निवृत्ति अथवा मैथुन संज्ञा रहित परिणाम चौथा महाव्रत है।
4. जो चित्र आदि अचेतन स्त्री और देवी, मानुषी, तिर्यंचिनी आदि सचेतन स्त्री इन चार प्रकार की स्त्रियों का मन, वचन, काय से सेवन नहीं करता तथा प्रयत्नपूर्वक मन से ध्यानादि में लगा हुआ है, उसके ब्रह्मचर्य महाव्रत है।
5. जिस व्रत का आलम्बन करके योगी गण परमब्रह्म परमात्मा को जानते हैं और जिसको धीर-वीर पुरुष ही धारण कर सकते हैं, सामान्य मनुष्य

धारण नहीं कर सकते, वह ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

❋ तुरियंअबंभविरई। चारित्र प्राभृत, 29

❋ दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभाव णिवत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं। -नियमसार, 59

❋ मादु-सुदा-भगिणीवय दट्ठूणित्थित्तियं च पडिरूवं।
इत्थिकहादिणियत्ती तिलोयपुज्जं हवे बंभं। -मूलाचार, 8

❋ अच्चिततदेव-माणुस-तिरिक्खजादं च महुणं चदुधा।
तिविहेण तं ण सेवादे णिच्चं पि मुणी हि पयदमणो। -मूलाचार, 5-95

❋ स्त्री-पुंसंगपरित्यागः, कृतानुमतकारितैः।
ब्रह्मचर्यामिति प्रोक्तं,चतुर्थं तु महाव्रतम्। -हरिवंश पुराण,120

❋ विन्दति परमं ब्रह्मयत्समालम्ब्य योगिनः।
तद् व्रतं ब्रह्मचर्यं स्याद् धीर-धौरेयगोचरम्।-ज्ञानार्णव1, पृ.133

❋ रागलोककथात्यागः, सर्वस्त्रीस्थापनादिषु।
माताअनुजा तनूजेति, मत्या ब्रह्मवतं मतम्। -आ.सा., 1-21

❋ दिव्यमानुष-तैरश्च मैथुनेभ्यो निवर्तनम्।
त्रिविधं त्रिविधेनैव तद् ब्रह्मव्रतमीरितम्। - धर्मसंग्रह श्रावकाचार, 3-43

❑❑❑

2. विवाह स्वरूप और प्रयोजन

❑ विवाह क्या है ?

जो व्यक्ति अपने आपको कामवासना पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करने में असमर्थ पाता है, आचार्यों ने उसे स्वदार-सन्तोष व्रत का उपदेश दिया है। अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़कर शेष स्त्रियों को माँ-बहिन और पुत्रीवत् मानता है, किसी के साथ-यद्वा-तद्वा आचरण नहीं करता है, यही स्वदार सन्तोष व्रत है।

विवाह का अर्थ मात्र भोग का समर्थन नहीं है किन्तु विवाह भोग को नियन्त्रण में रखने की प्रक्रिया है। कामवासना को सीमित करने और धीरे-धीरे उसे जीतने का सच्चा सीधा सरल उपाय है विवाह। जो व्यक्ति विवाह के बिना रहने में सक्षम हैं, उसके लिए योगाभ्यास चलता है। इस पद्धति के माध्यम से जीवन-प्रवाह ऊर्ध्वगमन को प्राप्त होता है, फिर वह जीवनकाल में किसी प्रकार पीछे मुड़कर नहीं देखता है लेकिन इस प्रकार के साधकव्यक्ति बहुत अल्प हैं और विवाह पद्धति बहुसंख्यक जीवों के लिए बताई गई है।

जब लड़की या लड़का किशोर अवस्था को प्राप्त होते हैं तो उनके बारे में माता-पिता यह तो अवश्य सोचते हैं कि इनका विवाह करना है, किसके साथ करना है ? कहाँ करना है ? इत्यादि। परन्तु विवाह से पूर्व इन्हें कि स प्रकार प्रशिक्षण देना है, किस प्रकार उन्हें शील की रक्षा की शिक्षा देना है, इस विषय में नहीं सोचते हैं। विवाह-सम्बन्ध एक बंधन है। बाँध के समान इससे विश्व को प्रकाश देने वाली विद्युत् उत्पन्न कर सकते हैं, सदाचार, प्रेम, वात्सल्य का आदर्श प्रस्तुत कर सकते हैं इसलिए विवाह के बाद वर-वधू में जो सम्बन्ध होता है, उसे दाम्पत्य सम्बन्ध कहते हैं, वे दोनों दम्पति कहलाते हैं। यदि इनमें कुछ गड़बड़ हो जावे तो वे गम-पति बन जाते हैं। बाँध यदि थोड़ा-सा भी टूट जाता है तो वहाँ विद्युत् उत्पत्ति की बात तो दूर रही,पानी भी नहीं मिल सकता है, आस-पास के सभी ग्रामवासियों को भारी हानि होती है। बाँध का पुनः निर्माण कठिन होता है उसी प्रकार एक बार उस दाम्पत्य जीवन के बाँध में दरार (खटपट) हो जावे तो उसमें पुनः मेल करना अत्यन्त मुश्किल हो जाता है।

❑ विवाह की आवश्यकता क्यों ?

आधुनिक विचार के लोगों का कहना है कि विवाह की क्या आवश्यकता है? वह तो एक बंधन है और बंधन से मुक्त रहना मानव का ध्येय है, फिर जानबूझकर बंधन में पड़ने की क्या आवश्यकता है? स्त्री और पुरुष को दाम्पत्य

जीवन से विहीन होकर सर्वथा स्वतंत्र रहना चाहिए। उनका यह कहना ठीक है, क्योंकि विवाह वास्तव में एक बंधन है, परन्तु विचार यह करना है कि उससे मुक्त रहने वाला जायेगा कौन से मार्ग में ? यदि वह ब्रह्मचर्य से रहता है, तब तो बहुत श्रेष्ठ है, उसे विवाह करने के लिए कौन बाध्य करता है? किन्तु ऐसा सभी स्त्री-पुरुष तो कर नहीं सकते। ऐसा तो जिसने अपनी वासना पर नियंत्रण पा लिया हो ऐसा कोई विरला व्यक्ति ही कर सकता है। बाकी स्त्री-पुरुष तो अपनी वासना की पूर्ति के लिए इधर-उधर दौड़ते हैं, फिर उनमें और पशुओं में अन्तर ही क्या रहेगा? बल्कि पशुओं का तो एक तरह से निर्वाह और मर्यादा भी है क्योंकि वे यद्यपि विवाह के बंधन में नहीं बँधे हैं तथापि प्राकृतिक बंधन से तो बँधे ही रहते हैं। इस बारे में वे अपनी सीमा के बाहर कभी नहीं होते, परन्तु मनुष्यों में ऐसी बात नहीं है।

❑ विवाह की आवश्यकता किसे ?

'काम' यह शब्द संस्कृत भाषा में इच्छा का पर्यायवाची माना गया है। वैसे तो मनुष्य का मन नाना प्रकार की इच्छाओं का केन्द्र है किन्तु उन इच्छाओं में से तीन तरह की इच्छायें प्रसिद्ध हैं- 1. खाने की 2. सोने की 3. स्त्री-पुरुष प्रसंग की।

इनमें से दो इच्छाओं का तो बालकपन से ही प्रादुर्भाव हो जाता है, परन्तु स्त्री-प्रसंग की इच्छा युवावस्था में विकसित होती है। पहली और दूसरी इच्छा का सम्पोषण करना एक प्रकार से शरीर के लिए होता है किन्तु स्त्री-प्रसंग को कार्यान्वित करना केवल वासना का पोषण करना है। अतः पूर्व की दो इच्छाओं को हमारे महर्षियों ने काम न कहकर आवश्यकता कहा है एवं कुछ हद तक उन्हें पूर्ण करना भी अभीष्ट बताया है। इसलिए गृहस्थ की तो बात ही क्या, साधुओं तक को उनकी (खाने और शयन की) पूर्ति के लिए यथोचित आज्ञा प्रदान की है, परन्तु तीसरी इच्छा स्त्री-प्रसंग /पुरुष-प्रसंग को तो सर्वथा नियंत्रण योग्य ही कहा है। यह बात दूसरी है कि प्रत्येक आदमी उसका पूर्ण नियंत्रण करने में असमर्थ है। उस कामेच्छा को नियंत्रित करना इसलिए आवश्यक कहा गया है कि कोई भी मरना नहीं चाहता है। हर समय अमर रहने की ही सोचता है। काम पर जय पाना बुद्धि के विकास हेतु आवश्यक है। काम पर जय पाना मृत्यु पर विजय पाना है। काम-सेवन बुद्धि के विध्वंस में हेतु होकर मृत्यु को निमंत्रित करता है, इस प्रकार व्यक्ति स्वतः ही अपने मरण का मार्ग निर्मित करता है।

हमारे हित-चिन्तक महात्माओं ने उपर्युक्त तथ्य को लक्ष्य में रखकर ही हम लोगों के लिए ब्रह्मचर्य का विधान किया है। जो मनुष्य अपने विचारों में स्त्री को

स्त्री नहीं समझता, चित्त में उसकी कभी याद ही नहीं आने देता, ऐसे पूर्ण ब्रह्मचर्य को यदि धारण नहीं कर सके तो उसे धार्मिक पद्धति के अनुसार विवाह करके एकदेश ब्रह्मचर्य का पालन तो अवश्यमेव करना चाहिए।

जीवन की अवस्थाओं का सामंजस्य :

स्पष्ट (प्रकट) युवावस्था आने से पूर्व कुमार-काल में कभी बालक-बालिकाओं को स्त्री-पुरुष प्रसंग का नाम तक नहीं लेना चाहिए तथा भावी जीवन सुन्दर-से-सुन्दर बने, इसकी साधन-सामग्री बटोरने में ही समय व्यतीत करना चाहिए। वृद्धावस्था आ जाने पर यदि स्त्री विद्यमान हो तो भी उसका त्याग कर सिर्फ परमात्म-स्मरण में अपना समय बिताना चाहिए और युवावस्था होने पर भी स्त्री को आराम देने की मशीन न मानकर अपने शरीर में उत्पन्न अवस्थोचित विकार का शमन करने के लिए भोजन और दवा के समान उसका सेवन करना चाहिए। जिस प्रकार भोजन और दवा का अतिमात्रा में सेवन हानिकारक ही होता है, उसी प्रकार स्त्री का अतिमात्रा में सेवन दुःख उत्पन्न करने वाला ही है। हमारे आचार्यों ने काम को पशु-कर्म बताया है। इसका अर्थ यह है कि नर-पशु ऋतुकाल में एक बार ही मादा-पशु का सेवन करता है फिर नहीं, तब मनुष्य तो संयमित है यदि वह इस नियम का उल्लंघन करता है तो वह पशु से भी गया-बीता है।

❑ विवाह के भेद :

विवाह के आठ भेद हैं - ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस विवाह।

1. **ब्राह्म विवाह** -जिसमें कन्या के पिता आदि संरक्षक अपनी शक्ति अनुसार कन्या को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके वर के लिए कन्या प्रदान करते हैं, वह ब्राह्म विवाह है।
2. **दैव विवाह**-जिसमें यज्ञकर्ता के लिए यज्ञ के निमित संरक्षकों द्वारा दक्षिणा रूप में कन्या दी जाती है, वह दैव विवाह है।
3. **आर्ष विवाह**-जिसमें गोमिथुन (गाय-बैल का जोड़ा) आदि दहेज में देकर कन्या दी जाती है, वह आर्ष विवाह है।
4. **प्राजापत्य विवाह**-तू इस महाभाग्यशाली की सहधर्मचारिणी (व्यवहार धर्म में सहायता पहुँचाने वाली धर्मपत्नी) हो, इस प्रकार नियोग करके जहाँ पर कन्या प्रदान की जाती है, वह प्राजापत्य विवाह है। 'गुरु विद्वान्' ने धनिक पुरुष द्वारा धनिक के लिए अपनी कन्या दी जाने को प्राजापत्य

विवाह कहा है।

ये पूर्वोक्त चारों विवाह धर्म रूप और न्यायसंगत हैं।

5. **गान्धर्व विवाह**-जिसमें वर-कन्या अपने माता-पिता व बंधुजन का प्रमाण न मानकर पारस्परिक प्रेम-वश मिल जाते हैं और दाम्पत्य-प्रेम कर लेते हैं, वह गान्धर्व विवाह है।
6. **आसुर विवाह**-जिसमें कन्या के संरक्षक लोभ-वश वर पक्ष से धनादि लेकर अयोग्य वर के लिए कन्या प्रदान करते हैं, उसे आसुर विवाह कहते हैं।
7. **पैशाच विवाह**-जिसमें सोयी हुई व बेहोश कन्या का अपहरण किया जाता है, वह पैशाच विवाह है।
8. **राक्षस विवाह**-जिसमें कन्या बलात्कार पूर्वक ले जाई जाती है या अपहरण की जाती है, वह राक्षस विवाह है।

यदि वर-वधु का दाम्पत्य प्रेम निर्दोष है तो उक्त चारों विवाह जघन्य श्रेणी के होने पर भी उन्हें अन्याय युक्त नहीं कहा जा सकता है। (नीतिवाक्यामृत)

❑ **विवाह पद्धति** :

भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह के पूर्व माता-पिता लड़के-लड़की को देखते हैं, उनके आचरण और व्यक्तित्व के बारे में जानकारी लेते हैं। फिर आसपास के पड़ोसियों से उनके बारे में पूछताछ करने के बाद सम्बन्ध करते हैं। सम्बन्ध का अर्थ-समीचीन प्रकार से (बंध)विवाह करना है। समीचीन विवाह नदी के दो तटों पर बाँध बाँधने जैसा कर्म है और उसमें विद्युत् उत्पन्न करने के समान है। थोड़ी सी भी चूक हो जाये अथवा पूर्वापर का विचार नहीं किया जाये तो सम्बन्ध बिगड़ जाता है। जो सम्बन्ध माता-पिता द्वारा तय किया जाता है, वह लड़के-लड़की दोनों को मंजूर होता है क्योंकि ''माता-पिता ने हमारे हित के लिए ही यह किया है'' ऐसा उनका दृढ़ विश्वास रहता है।

आज भारतीय संस्कृति टूटती-सी जा रही है। आज भी यदि भारतीय संस्कृति से संस्कारित होकर विवाह किया जाय तो पति-पत्नी कुछ ही दिनों में भोगों से विरक्त होकर घर से निकलने का प्रयास करेंगे। भोगों को त्यागने की भावना उनके अन्दर आ जायेगी और वे दोनों ही आत्मोद्धार करके अपने जीवन का निर्माण कर लेंगे।

आज भी भारतीय पद्धति से होने वाले विवाह में कुछ शर्तें मंजूर करायी

जाती हैं- वर-वधू को। वर को संकल्प दिलाया जाता है कि इस वधू को छोड़कर अब तुम्हारे लिए संसार में जितनी महिलायें, बालिकाएँ आदि हैं, वे माता-बहिन और पुत्री के समान हैं तथा वधू से भी कहा जाता है कि इस वर को छोड़कर सभी पुरुष, बालक आदि पिता, भाई और पुत्र के समान हैं। इसके अलावा अन्य पुरुषों में कोई (गलत) भाव नहीं आना चाहिए। आगे प्रत्येक कार्य आप दोनों को मिलजुल कर करना चाहिए। अपनी दिशा को और अपनी आत्मा के अस्तित्व को नहीं भूलना चाहिए। आत्मा को उन्नत बनाने का लक्ष्य बनाना, अवनत बनाने का नहीं।

वर्तमान युग की युवा पीढ़ी ''दूसरे की थाली में घी ही घी दिखना'' वाली कहावत को चरितार्थ करती हुई भारतीय पद्धति को छोड़कर हर कार्य पाश्चात्य पद्धति से करने में तत्पर है। आधुनिक युवक-युवतियाँ पाश्चात्य पद्धति को ही अपने जीवन का सहायक मान रहे हैं। लेकिन उनकी यह धारणा भ्रामक है। पाश्चात्य पद्धति से किया गया हर कार्य अपनी परम्पराओं के प्रतिकूल होने के कारण जीवन के विकास के लिए नहीं, अपितु विनाश के लिए ही होता है। चाहे उसका प्रतिफल तत्काल नहीं दिखाई पड़े लेकिन कुछ महीनों अथवा कुछ वर्षों में अवश्य अनुभव में आता है। भारत के नागरिकों ने अनेक पाश्चात्य पद्धतियाँ अपनाई हैं। उनमें से 'विवाह पद्धति' भी एक है। भारतीय विवाह पद्धति को आडम्बरपूर्ण या निरर्थक क्रियाओं का पुंज समझकर छोड़ा जा रहा है एवं कोर्ट मैरिज अथवा लव मैरिज को अपनाया जा रहा है। आधुनिक युवक-युवतियाँ शायद यह सोचने लगे हैं कि हमारे माता-पिता हमारे योग्य पढ़ी-लिखी, रंग-रूप वाली, सुन्दर हाइट हेल्थ वाली एवं हमारे पद के योग्य रहन-सहन वाली लड़की / लड़का नहीं खोज सकते हैं, अतः हमें स्वयं अपने लिए पति /पत्नि चुन लेना चाहिए। उसमें यदि माता-पिता कुछ मार्गदर्शन देते हैं या बाधा डालते हैं तो कोर्ट में जाकर विवाह कर लेना चाहिए। उनकी इन सब क्रियाओं को देख /सुनकर कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि जो लड़के /लड़की अपनी वासना पर इतनी रोक भी नहीं लगा सकते कि जब तक माता-पिता विवाह न करवा दें तब तक वे अपनी सीमा का उल्लंघन न करें तो वे भविष्य में अपनी वासना को काबू में रखते हुए ''ये मात्र मेरे ही बने रहेंगे या मेरी ही बनी रहेगी, अन्य किसी की नहीं'', इस प्रकार की कल्पना कैसे कर लेते हैं? यदि इस प्रकार सोच लें तो स्थिति भिन्न हो सकती है वास्तव में देखा भी जाता है कि जिनकी लव मैरिज हुई है उनका गृहस्थ-जीवन और दाम्पत्य प्रेम अधिक काल तक नहीं टिकता। वे या तो हमेशा घर में खटपट

(मनमुटाव) करते हुए दुःखी होते हैं या फिर तलाक की नौबत आ जाती है।

किसी व्यक्ति ने समाचार-पत्र के माध्यम से बताया था कि लगभग 25 करोड़ की अल्प जनसंख्या वाले, सबसे वैभवशाली देश अमेरिका में प्रतिदिन 1440 तलाक दिये जाते हैं। इसका कारण अधिकांशतः 'लव मैरिज' ही है क्योंकि लड़का/लड़की एक दूसरे के स्वभाव, विचार, कुल, संस्कारों को तथा अन्दर छिपी गठीली बातों को गहराई से नहीं समझ पाते और ऊपरी दिखावटी प्रेम में आकर भावुकता (बिना सोचे-समझे) में विवाह कर लेते हैं। फलतः जीवन भर के लिए अपने आपको दुःख के गर्त में धकेल देते हैं।

मुझे एक घटना याद आती है उस लड़के के दुःखी जीवन की जिसने एक लड़की के प्रेम में फँसकर, अपने कुलीन माता-पिता को रोते-बिलखते छोड़कर 'कोर्ट मैरिज' कर ली और जीवन भर के लिए दुःखी बन गया।

लगभग पाँच-छह वर्ष पूर्व पूज्य आचार्यश्री के आशीर्वाद से हम लोगों का ग्रीष्मवास जबलपुर जिले के किसी एक नगर में हो रहा था। वहाँ छोटी-छोटी दो सुन्दर बालिकाएँ प्रतिदिन हमारे पास आती एवं नमस्कार करके चली जाती। उनका चेहरा भोला-भाला एवं दुःखी सा लगता था। एक दिन हमने किसी अन्य बालिका से पूछा-''ये दोनों बालिकाएँ कौन हैं एवं ऐसी गुमसुम सी क्यों नजर आती हैं ?'' उसने कहा-''आर्यिकाजी! ये दोनों बालिकाएँ सामने वाले मकान में रहती हैं तथा माँ के होते हुए भी माँ नहीं होने के समान हो गयी हैं, इस कारण ये दुःखी हैं।'' मैंने फिर पूछा-''इसका क्या कारण है?'' उसने कहा-'' घटना बहुत रहस्यमयी है एवं गृहस्थों की है, उसे आपको क्या बताऊँ। फिर भी इसलिए बता रही हूँ कि प्रेम-विवाह करने वालों के साथ अक्सर यही सब होता है। घटना इस प्रकार हुई- इन बालिकाओं के माता-पिता ने पारस्परिक आकर्षण के वशीभूत हो विवाह करने का निश्चय कर लिया और अपने-अपने माता-पिता को बताया। लड़की के पिता ने होने से उसकी माँ ने सहज स्वीकृति दे दी, लेकिन लड़के के माता-पिता आदि ने उसको बहुत समझाया और यह भी कहा कि इससे भी अधिक सुन्दर एवं सुयोग्य लड़की के साथ हम तुम्हारा विवाह शीघ्र ही करा देंगे और भविष्य में होने वाली बर्बादी को भी समझाया, लेकिन लड़का जब किसी प्रकार से भी अपने विचारों में परिवर्तन लाने को तैयार नहीं हुआ तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हम ऐसी लड़की से तुम्हारा विवाह नहीं करवा सकते और यदि तुम स्वेच्छा से उससे विवाह करोगे तो आज से हमारा-तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। तुम हमारे घर में

प्रवेश भी नहीं कर सकोगे। लड़के ने पूर्वापर का विचार किये बिना ही उस लड़की से विवाह कर लिया एवं अपनी ससुराल में रहने लगा। कुछ समय तक तो ठीक-ठाक चलता रहा। उसके 2-3 बच्चे भी हो गये, लड़का (पति) व्यवसाय भी अच्छा करता था। लेकिन बाद में वह विवाहिता लड़की एक सुनार के लड़के से प्रेम करने लगी जो उससे पाँच-सात वर्ष छोटा था। उसने ऐसी चाल चली कि माँ की पूरी सम्पत्ति अपने नाम करवा ली और सोने-चाँदी के अपने आभूषण पहन कर वह आज से सात दिन पहले उस सुनार के लड़के के साथ भाग गई। इसलिए ये भोली-भाली बालिकाएँ दुःखी लगती हैं। इनके घर में भोजन आदि की व्यवस्था करने वाला भी अब कोई नहीं है। आगे क्या होगा यह भगवान् जाने। ऐसे अनेक उदाहरण आपको सुनने को, पढ़ने को या देखने को मिले होंगे।

एक छोटा-सा उदाहरण और सुनिये सागर जिले की बात है। एक लड़की नित्य बस में बैठकर कॉलेज जाती थी। उस बस के कण्डेक्टर से वह धीरे-धीरे परिचित हो गई और कुछ दिनों में उसका परिचय प्रेम में परिवर्तित हो गया और उस धनिक बाप की लड़की ने बिना विचारे उसके साथ विवाह करने का निश्चय किया। एक दिन छिप कर किसी को बिना बताये उसने उस लड़के के साथ कोर्ट-मैरिज भी कर ली। जब वह कण्डेक्टर उसे लेकर घर गया तो घर के सभी सदस्यों ने उसे स्वीकार करने से मना कर दिया परन्तु लड़के के बहुत समझाने के बाद वे उसे एक शर्त पर स्वीकार करने को राजी हुए कि-एक गिलास पानी में घर के सभी सदस्य थूकेंगे और उस पानी को यदि यह पी जावे तो हम इसे स्वीकार कर लेंगे। प्रेम में अंधी उस लड़की ने यह भी स्वीकार कर लिया, वह गिलास का पानी पी गई। लेकिन स्वयं के किये हुए दुराचार के कारण भाग्य ने भी उसका साथ नहीं दिया, जिससे कुछ दिन पश्चात् ही वह लड़का अपनी माँ आदि के पक्ष में हो गया और उसने लड़की को मारना-पीटना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार के तिरस्कार आदि को सहन करते हुए भी वह वहाँ रहती थी। इसके बाद क्या हुआ वह मुझे भी मालूम नहीं है।

तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति भले ही बाह्य में नारियल के समान कठोर एवं कुरूप हो, परन्तु भीतर से तो मधुर, सुन्दर, मुलायम एवं रुचिकर ही है, जबकि पाश्चात्य संस्कृति 'बेर' के समान बाह्य में सुन्दर एवं मुलायम लगती है लेकिन भीतर से (फल के समय) बेर के समान निस्सार, अतृप्तिकारक एवं दोष रूपी कीड़ों से भरी हुई है। जिस प्रकार बेर की गुठली निगल जाने पर पेट में कष्ट

होता है, तो चबाने पर दाँतों की क्षति होती है और कितने ही बेर खा लेने पर भी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने पर जीवन रूपी उदर में कष्ट होता है। अर्थात् पूरा जीवन कष्टमय बन जाता है। पाश्चात्य संस्कृति अपनाने वालों के साथ रहने पर भी धन, धर्म और शरीर तीनों की क्षति निश्चित होती है। भोग-भोगते हुए जीवन भर भी तृप्ति नहीं हो सकती है। जिस प्रकार नारियल की जटाएँ एवं अन्दर की कठोर परत निकाले बिना उसके गोले का आनन्द नहीं लिया जा सकता है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति के रहस्यों को समझे बिना भारतीय संस्कृति के पालन से मिलने वाले फलों का भी सही आनन्द नहीं लिया जा सकता है।

❑ **भारतीय विवाह-पद्धति का रहस्य :**

भारतीय विवाह पद्धति में अनेक क्रियायें होती हैं। वे सभी क्रियायें सार्थक हैं। आइये, हम उनमें से कतिपय के प्रतीकार्थ या रहस्य को समझें :

1. बराती : वर सदाचारी है, सद्गृहस्थ बनने के योग्य है। इस कन्या का जीवन इसके साथ सुख-शान्ति पूर्वक व्यतीत होगा।

यह वर इस कन्या की धार्मिक भावनाओं को नहीं ठुकराता हुआ स्वयं भी धार्मिक अनुष्ठानों में सहयोगी बनेगा और इस अपूर्व मानव-जीवन को कुछ अंशों में सफल बनायेगा। इस बात के हम सब साक्षी हैं अर्थात् वर सप्तव्यसनादि दुराचारों से दूर एवं श्रेष्ठ आचार-विचारों वाला है, इसलिए हम इसके पाणिग्रहण संस्कार में सम्मिलित हुए हैं। लड़की के आपत्तिकाल में हर समय हम सहयोगी बनेंगे।

2. वरमाला : वर कन्या के द्वार पर एक वीर सेनापति के रूप में जाता है, मानो सब पीछे सैनिकों के रूप में सहयोगी हैं। वह स्वयं हाथ में तलवार लिए, वीर योद्धा की वेशभूषा पहने जाता हुआ कन्या पक्ष को यह बता रहा है कि मैं कायर नहीं वीर हूँ। कन्या उसकी वीर मुद्रा को देख कर सोचती है, ''अहो! ये वीर वेशभूषा में आये हैं, लेकिन कामशत्रु ने तो इनके मन पर अभी पूर्ण अधिकार जमा रखा है। यदि इन्होंने काम को जीत लिया होता तो यहाँ क्यों आते ? आप काम से हार गये हैं मानों यह कहती हुई कन्या वर के गले में हार (वरमाला) पहना देती है। वर भी उसकी भावात्मक मुद्रा को समझ जाता है एवं मन-ही-मन मुस्कुराते हुए सोचता है कि मैं काम से हार गया तो क्या ? तुमने काम को जीत लिया है? वास्तव में तुमने भी काम पर विजय प्राप्त नहीं की है। इसलिए मैं भी तुझे हार पहनाता हूँ। अरे! काम के पूर्ण विजेता तो तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव और श्रमण संस्कृति के संरक्षक नग्न दिगम्बर साधु ही हैं।''

दादागुरु आचार्य ज्ञानसागर (महाराज जी) महासंत ने 'जयोदय महाकाव्य' ग्रन्थ में जयकुमार-सुलोचना के विवाह में वरमाला का रहस्य बताते हुए लिखा है- सुलोचना ने सोचा कि यह प्राणपति तो चिरकाल से प्राप्त हुआ है वह फिर बिछुड़ न जाये, इस विचार से परम प्रेमवश उसने बलवान जयकुमार को माला से बांध लिया अर्थात् जयकुमार के गले में माला डाल दी और उस वरमाला के बहाने जयकुमार के हृदय में जो लक्ष्मी एवं सरस्वती विराजमान थी, उसके बीच में स्वयं ने भी स्थान प्राप्त कर लिया। अर्थात् सुलोचना की माला से जयकुमार के हृदय के तीन भाग हो गये। जिसमें आजू-बाजू लक्ष्मी, सरस्वती एवं मध्य में सुलोचना विराजमान थी।

3. गठबन्धन : वर और वधू के वस्त्रों के छोर को बाँध दिया जाता है। यह गठबन्धन दृढ़ता से किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि सौभाग्य के भण्डार रूप उन दोनों के हृदयों को भी परस्पर बाँध दिया गया है। यह भी स्वदारसंतोष को ही बताता है कि इन दोनों के हृदय एक-दूसरे को छोड़कर अन्य किसी भी स्त्री-पुरुष में अनुरक्त नहीं होंगे।

4. हथलेवा (वर-वधू के हाथ) में मेंहदी : जयकुमार का हाथ तलवार को ग्रहण करने से कठोर था और सुलोचना का हाथ कमल के समान कोमल था। वह जयकुमार के हाथ का उपघात सहन करने में कहाँ समर्थ है, मानों इसलिए उसे मेंहदी के निर्दोष लेप से लिम्पित कर दिया। आज भी पुरुषों के हाथ में कठोरता एवं स्त्रियों के हाथ में कोमलता होने के कारण ही अनुमानतः वर-वधू के हाथों के बीच मेंहदी का लेप किया जाता है।

5. मंत्रों द्वारा आहुति : हवन के समय 'ॐ सत्यजाताय नमः' आदि मंत्रों में जो 'नमः' शब्द बोला जाता है, वह अभंग (अखण्ड) मंगल (सौभाग्य) के लिए होता है। जो 'ॐ सत्यजाताय स्वाहा' आदि मन्त्रों के साथ 'स्वाहा' शब्द बोला जाता है, वह सन्तर्पण (तृप्ति) करने वाला है तथा 'ॐ षट्परमस्थानं भवतु' 'अपमृत्यु-विनाशनं भवतु' आदि जो काम्य मन्त्र बार-बार बोले जाते हैं, ये यजमान के लिए तीन लोक में मंगल, उत्तम तथा शरणभूत जिनेन्द्र भगवान् के प्रसाद के समान होता है। अर्थात् वर-वधू की जीवन यात्रा मंगलमय बने, इस भावना से होते हैं।

6. सात प्रदक्षिणा (फेरे) : सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय इस प्रकार से सात प्रकार का संसार है। गृहस्थ में रहते हुए सात प्रकार के संसार को सीमित तो किया जा

सकता है परन्तु अभाव नहीं किया जा सकता है। यदि तुम सात प्रकार के संसार में भ्रमण नहीं करना चाहते हो तो अब भी यति धर्म अंगीकार कर सकते हो, नहीं तो सात चक्कर लगाओ। गृहस्थ रूपी पर्वत के शिखर पर सात परमस्थान (पद) भूतकाल के समान हमारे लिए भविष्यकाल में भी निर्दोष बने रहें। इस बात की सूचना देने के लिए ही दोनों वर-वधू सात प्रदक्षिणा देते हैं। सात परमस्थान इस प्रकार हैं :-1. सज्जातित्व 2. सद्गृहस्थत्व 3.परिव्राजकत्व 4.सुरेन्द्रत्व 5.चक्रवर्तित्व 6. तीर्थंकरत्व 7. परिनिर्वाणत्व।

7. लाल साड़ी : जिस प्रकार चौराहे पर लगी लाल बत्ती पथिक को सावधानी एवं खतरे की सूचक होती है उसी प्रकार वधू भी लाल साड़ी पहन कर वर को मौन रूप में वह सूचना देती है कि सावधान, आप अपने इस स्वतन्त्र जीवन में एक खतरा मोल ले रहे हो। वह भी मन-ही-मन यह सोच कर कि मैं वीर हूँ कायर नहीं। मार्ग में आने वाली बाधाओं से डरने वाला नहीं, इस प्रकार साहस करके आगे बढ़ जाता है अर्थात् उसे स्वीकार कर लेता है। साड़ी के चारों ओर सफेद किनारी होती है वह मानो यही कह रही है कि तुम भोगों की ओर बढ़ रहे हो लेकिन अपने कुल और धर्म की मर्यादा का उल्लंघन मत करना। भोगों में भी आत्मा की उज्ज्वलता को मत भूलना। अपने जीवन को अनुशासित रखना, आदि।

8. वधू की मांग भरना : वधू वर से मांग में सिंदूर भरवाते हुए मौन मुद्रा में मानो कह रही है कि आपको जीवन भर मेरी मांगों अर्थात् आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। वर उसे भी वासना के वश हो स्वीकार कर लेता है।

9. पंचरंगी कंगन (डोड़ा) : पंच परिवर्तन रूप संसार में भ्रमण करते हुये आज तुम लोग मुनि/ आर्यिका न बनकर पुनः गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर रहे हो। इस प्रवेश के पूर्व बन्धन की स्वीकृति के रूप में ही मानो यह पंचरंगी कंगन बँधवाना स्वीकार कर रहे हो। खैर, कोई बात नहीं, तुम पूर्ण रूप से वासना को नहीं जीत पाये हो इसलिए इस बन्धन से बँध रहे हो। लेकिन इस बन्धन को तुम्हें खोलना भी सीख लेना चाहिए। इस अभिप्राय को मौन रूप से व्यक्त करती हुई महिलाएँ वर-वधू से कहती हैं कि वर एक हाथ से वधू के हाथ में बँधे कंगन को खोलेगा क्योंकि वह पुरुष है। इसी भव में मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता रखता है एवं वधू दोनों हाथों से वर के हाथ में बँधे कंगन को खोलेगी क्योंकि वह दो भव में मुक्ति प्राप्त कर सकती है। कभी-कभी वधू वर से यह बन्धन न खुले, इस दृष्टि से बहुत कसकर गांठे लगा देती है। लेकिन जब वर से वे गाँठें नहीं खुलतीं हैं तो वह कंगन

को तोड़ देता है अर्थात् गृहस्थाश्रम में रहते हुए वह धर्मपत्नी के साथ समझौता करने का प्रयत्न करता है और पत्नी यदि समझौता नहीं करती (यानि मुनि बनने के लिए प्रसन्नता व्यक्त नहीं करती और न स्वयं आर्यिका बनना चाहती है) तो वर गाँठ तोड़कर अर्थात् गृहस्थ जीवन छोड़कर अकेला ही मुनि बन जाता है। अतः कंगन खोलने की बेला को याद करके प्रत्येक गृहस्थ को गृहस्थ जीवन में रहकर शनैः शनैः मुनि-आर्यिका बनने का अभ्यास करना चाहिए।

10. अंगूठी आदि का खेल : महिलाएँ एक बड़े बर्तन में हल्दी, छाछ आदि मिले हुए रंगीन पानी में कुछ सुपारियाँ, कुछ बादाम और चाँदी या सोने की एक अंगूठी डालकर वर-वधू से कहती हैं कि वर एक हाथ से एवं वधू दोनों हाथों से इस पानी में से अंगूठी ढूँढ़ेंगे। जो पहले अंगूठी निकालेगा वह विजेता माना जायेगा और उसके गीत महिलाएँ गायेंगी। इस खेल का आशय यह है कि इस राग-रंग, भोग रूप संसार में जो अपनी आत्मा रूपी स्वर्णमय अंगूठी को निकाल लेगा /ढूँढ़ लेगा /खोज लेगा, वही संसार-विजेता मोक्षगामी होगा और उसके गीत तीन लोक के भव्य जीव गायेंगे। जिस प्रकार तुम लोग इस पात्र में अंगूठी खोजने के लिए तत्पर हो, उसी प्रकार भविष्य में अपनी आत्मा की खोज में भी तत्पर रहना, भूल नहीं करना।

नोट : यहाँ पर वर द्वारा एक हाथ से एवं वधू द्वारा दोनों हाथों से अँगूठी ढूँढ़ने का रहस्य पूर्ववत् जाना चाहिए।

11. जिनमन्दिर गमन : पति गृह में प्रवेश करने के पूर्व वर-वधू को किसी तीर्थक्षेत्र अथवा नगर के मुख्य जिनालय में दर्शनार्थ ले जाया जाता है। इसका आशय यह है कि जिनालय में प्रवेश कर जिनेन्द्र देव के सामने दोनों यह विचार करें कि हे भगवान् ! हमारा गृहस्थ जीवन मंगलमय हो अर्थात् हम दोनों जीवन निर्माण करने के लिए गृहस्थ के षट् आवश्यकों का पालन करते रहें तथा जीवन-निर्वाह के लिए न्यायनीति पूर्वक धनोपार्जन करके जीवन सफल बनावें तथा अन्त में आपके द्वारा बताये हुए मोक्षमार्ग पर चलकर आपके समान ही निर्विकार बनकर मोक्ष प्राप्त करें।

हे भगवान्! आपके सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों में हम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेंगे। आपके आशीर्वाद से हम स्वदारसंतोष व्रत का पालन निर्विघ्न पालन करते रहेंगे।

विशेष : विवाह के दिन से सात दिन तक निरन्तर ब्रह्मचर्य का पालन

करना चाहिए (महापुराण)। वही विवाह के बाद भी काम पर विजय प्राप्त करने का सुगम साधन हैं।

❑ विवाह किस कन्या से करें ?

जो कन्या वर के बराबर या उससे बड़ी हो, क्षीण आयु वाली हो, बीमार, व्यभिचारिणी, कलहप्रिय एवं कटु शब्द बोलने वाली हो, कुटुम्बियों को उजाड़ने वाली तथा मर्यादा में न रहने वाली अर्थात् जिसे अनुशासन में रहना अच्छा नहीं लगता हो, ऐसी कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए। समान ऐश्वर्य व कुटुम्बयुक्त तथा विषम गोत्र वाले वर-कन्याओं में विवाह सम्बन्ध माना गया है क्योंकि ऐसा न होने पर जब धनाढ्य की कन्या दरिद्र वर प्राप्त करती है, तब वह अपने पिता के ऐश्वर्य से उन्मत्त होकर अपने दरिद्र पति को नीचा दिखाने लगती है। यदि निर्धन की कन्या धनाढ्य वर के साथ ब्याही जाती है तो वह अपने पिता की दुर्बलता के कारण अपने धनाढ्य पति के द्वारा तिरस्कृत होती है। जब छोटा (साधारण पैसे वाला) बड़े (धनाढ्य) के साथ विवाह सम्बन्ध आदि व्यवहार करता है तो उसमें उसका ज्यादा खर्च व आमदानी थोड़ी होती है। अतः समान ऐश्वर्य वालों के साथ ही विवाह सम्बन्ध उचित है। इसी प्रकार कुल, शील, माता-पिता आदि कुटुम्ब का सद्भाव, बहुपक्षकार, विवाह की इच्छा, सघनतावश वय, विद्या, शरीर, आरोग्यता आदि गुण युक्त वर को ही कन्या देनी चाहिए। सप्त व्यसनी, बहरे, अंधे, नपुंसक, जिसकी पहली पत्नी हो, विद्या रहित एवं जिसके पास आजीविका का साधन नहीं हो, ऐसे वर को कभी कन्या नहीं देनी चाहिए।

(**विशेषः** यदि वर या कन्या में कोई गुप्त कमी अथवा बीमारी हो तो स्वयं लड़के-लड़की को विवाह नहीं करना चाहिए और उनके माता-पिता को उनका जबरन विवाह नहीं कराना चाहिए। दुर्भाग्य से यदि ऐसा हो जाये तो महासतियों सन्तों के जीवन को आदर्श रूप रखते हुए धैर्यपूर्वक शान्ति से जीवन बिताना चाहिए।)

योग्य कन्या से विवाह के लाभ : धर्मपरम्परा अक्षुण्ण चलते रहना अथवा धार्मिक सज्जाति-सन्तान का लाभ, कामोपभोग में बाधा न आना, गृहस्थ व्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन, कुलीनता व आचार-शुद्धि, अतिथि, बन्धुजनों का निर्दोष सम्मान आदि अनेक प्रकार के लाभ योग्य धर्मपत्नी के मिलने से होते हैं।

योग्य धर्मपत्नी के मिलने पर गृहस्थ के धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की निर्विघ्न सिद्धि होती है। योग्य स्त्री के कारण स्वदार संतोषादि व्रत का पालन सहज होता है, जिससे वह वेश्यागमन, परस्त्रीसेवन आदि पापों से प्राप्त नरकादि के

भयंकर दुःखों से बच जाता है एवं धीरे-धीरे अपनी वासनाओं को सीमित करता हुआ वृद्धावस्था आने के पहले ही पुनः बाल्यावस्था के समान निर्विकार बन जाता है अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर लेता है। योग्य कन्या के साथ विवाह करने से जिनेन्द्रभगवान् की पूजा, मण्डलविधान पूजा आदि में सहयोग मिलता है, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आदि में इन्द्र-इन्द्राणी अथवा भगवान् के माता-पिता बनकर सातिशय पुण्य का अर्जन करने में सफलता मिलती है। यदि पत्नी धार्मिक है, गुरु के प्रति आस्था रखने वाली है, तो जब कभी नगर में गुरुओं का समागम हो तो उनको आहारदान, औषधदान, शास्त्र आदि उपकरण दान देकर अपने हाथों को तथा अपने घर को पवित्र किया जा सकता है एवं अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करके सम्पत्ति को प्राप्त करने में जो पापार्जन हुआ है उसे हल्का किया जा सकता है। योग्य पत्नी के मिलने पर ही निर्विकल्पता पूर्वक तीर्थयात्रा, गुरुदर्शन, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आदि से दर्शनों का लाभ लिया जा सकता है। यदि घर में पत्नी धर्मात्मा, योग्य नहीं है तो स्वदारसंतोष व्रत, जिनेन्द्र पूजन, सत्पात्रदान, तीर्थयात्रा आदि धर्म पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो पाती है और योग्य कन्या के साथ विवाह करने से इन सब कार्यों को करके संसार को सीमित किया जा सकता है।

योग्य स्त्री के घर रहने पर वेश्यागमन, परस्त्री-सेवनादि व्यसनों से निवृत्ति हो जाती है। योग्य स्त्री के कारण एक प्रकार से आकुलता का अभाव होता है, जिससे गृहस्थ निराकुल होकर धन कमाता है, रखता है, बढ़ाता है और अपने भाग्यानुसार सुवर्णादि सम्पत्ति का अधिकारी होता है। योग्य पत्नी के होने पर यदि पति व्यापारादि आजीविका के साधनों में सफलता प्राप्त नहीं करता है अथवा कम सफल होता है तो पत्नी कम-से-कम खर्च करके सम्पत्ति की रक्षा करती हुई स्वयं भी धनोपार्जन में पूरा सहयोग देती है। आज भी सैंकड़ों स्त्रियाँ धनोपार्जन में पति का सहयोग देती हुई देखी जा सकती हैं। अतः योग्य पत्नी के मिलने पर अर्थ पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।

परस्त्री-सेवन से धर्म का एवं वेश्यागमन से धर्म और धन का नाश होता है। अतः वह काम पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता है। नैतिक पुरुष उक्त दोनों अनर्थों को छोड़कर कुलीन सन्तान की उत्पत्ति के आदर्श से स्वस्त्री में सन्तुष्ट रहता है, यह काम पुरुषार्थ है। इन्द्रियों को सन्ताप उत्पन्न करके कामसेवन करना काम पुरुषार्थ नहीं है। यह तो अंधे के सामने नाचना एवं बहरे के सामने गीत गाने के समान व्यर्थ है। योग्य स्त्री के मिलने पर योग्य सन्तान की प्राप्ति होती है। यह सन्तान भविष्य में

माता-पिता, कुल, जाति, परिवार, धर्म आदि की कीर्ति को जगत् में व्याप्त करती है। यदि कन्या होती है तो चन्दना, अनन्तमती आदि के समान अपने माता-पिता के यश को उजागर करती है एवं यदि वह विवाहित होकर पतिगृह में प्रवेश करती है तो महारानी चेलना के समान अपने पति को सुमार्ग में नियोजित कर तथा मदालसा आदि के समान अपनी सन्तान को सुसंस्कारित कर दोनों प्रकार के (परम्परा और साक्षात्) मोक्षमार्ग में आदर्श उपस्थित करती है। **क्षत्रचूड़ामणि** में **वादीभसिंहसूरि** ने कहा है कि यदि मनुष्यों के द्वारा धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ परस्पर बाधारहित सेवन किये जायें तो इससे उन्हें बिना रुकावट के स्वर्गलक्ष्मी प्राप्त होती है और क्रम से मोक्ष-सुख भी प्राप्त होता है।

इस प्रकार योग्य कन्या के साथ विवाह करने से काम-पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। अतः धार्मिक संस्कारों से संस्कारित, सुयोग्य एवं योग्य वय आदि गुणों से युक्त कन्या के साथ ही विवाह करना चाहिए।

जो कन्या सामुद्रिक शास्त्र में कहे गये दोषों से रहित हो, जो कुलवती, शीलवती, विद्या, धन, सौरूप्य, योग्य वय वाली हो तथा जिसमें धार्मिक संस्कार हों, ऐसी कन्या के साथ विवाह करने से तीनों पुरुषार्थों की सिद्धि सरलता से होती है। प्राचीन काल में स्वयंवर की प्रथा थी परन्तु ऐसी प्रथा भी सभी जगह प्रचलित नहीं थी। अधिकांश कन्याओं को तो उनके माता-पिता कन्या के समान ही शील-स्वभाव देखकर योग्य वर के साथ विवाह कर देते थे। कन्या विवाह के बारे में एक दृष्टान्त दादागुरु आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपनी 'कर्तव्य पथ प्रदर्शन' नामक पुस्तक में दिया है।

बादशाह की लड़की (कन्या) :

एक बहुत बड़ा बादशाह था। उसकी एक कन्या पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण जनता की सेवा करने वाली, सन्तोषी, सदाचारी और सादगी से अपना जीवनयापन करने वाली थी तथा अपने सहज सौन्दर्य से सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाली थी। जब वह विवाह योग्य हुई तो बड़े-बड़े बादशाहों ने उसे अपनी अर्धांगिनी बनाने की इच्छा बादशाह के सामने प्रकट की। लेकिन बादशाह ने सबको मना कर दिया। उसने सोचा कि इस कन्या के वर की प्रकृति भी इसके समान होनी चाहिए। वह वर की खोज में लगा था। एक दिन वह घूमने के लिए जंगल में गया तो उसने वहाँ एक नवयुवक को देखा जो अपने खेत में कुटिया में रहता था। उसके खेत के कुछ भाग में आम-अमरूद आदि के वृक्ष थे, बाकी

जमीन में खेती करके वह अपनी गुजर-बसर करता था और आये हुए लोगों की सेवा भी करता था। उसने बादशाह का स्वागत किया। बादशाह स्वागत से प्रसन्न होकर युवक से बोले- ''मैं अपनी लड़की का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ।'' युवक ने उत्तर दिया-''प्रभो ! आप अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ कैसे करेंगे ? मैं तो मेहनत करता हूँ तथा रोज कमाता हूँ और रोज खाता हूँ।'' बादशाह बोले- ''मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं, तुम मेरे साथ चलो।'' युवक उनके साथ चला गया। बादशाह ने उस युवक के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। वर-वधू दोनों जब कुटिया के समीप आये तो वधू कुटिया मैं प्रवेश करने के पहले रुक गई। युवक ने पूछा-''प्रिये! क्या बात है ? '' जवाब मिला कि ''सामने चूल्हे पर क्या रखा है?'' युवक बोला-''चार रोटियाँ सुबह बनायी थीं, उनमें से दो तो मैंने सुबह खा लीं थीं और जो दो रोटियाँ बच गयी थीं तो मैंने सोचा सायंकाल खा लूँगा वे ही रखी हैं।'' इस पर वधू बोली ''हे प्रभो! शाम के भोजन की फिक्र (चिन्ता) अभी से ? ये दो रोटियाँ तो किसी गरीब भाई को दे देनी थी। सायंकाल तक जीवन रहता तो और रोटियाँ बना लेते। यदि ऐसी संग्रहकारिता ही मुझे पसन्द होती तो मैं किसी बादशाह के साथ ही विवाह क्यों नहीं कर लेती। आपके पीछे क्यों लगी ?'' यह सुनकर युवक बहुत खुश हुआ।

सारांश : बादशाह ने अपने राजघराने की लड़की का विवाह भी एक गरीब के साथ किया क्योंकि वह नवयुवक गरीब होते हुए भी अपने मन से राजकुमारी के समान ही उदारदिल, समाजसेवी, दयालु एवं सर्वगुण सम्पन्न था। वह देखने में भले ही गरीब लगता था, लेकिन संग्रहवृत्ति की भावना से रहित होने के कारण सम्पत्ति का संचय न करके उसे परोपकार में ही लगाता था और राजकुमारी भी ऐसी ही थी। दोनों के एक स्वभाव होने से दोनों का जीवन धर्मादि तीनों पुरुषार्थों की सिद्धि करने वाला प्रसन्न, सुखी, शान्तिप्रिय एवं आदर्श रूप था। अतः योग्य वर के साथ योग्य कन्या का विवाह ही श्रेयस्कर है। विवाह का मूल उद्देश्य अपनी वासनाओं पर पूर्ण रूप से विजय पाने का धीरे-धीरे अभ्यास करना है। वासना पर विजय पाने के लिए अनेक सीढ़ियाँ (उपाय) हैं। विवाह करके सर्वप्रथम किसी तीर्थक्षेत्र या नगर के जिनालय में दर्शन कर जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में भावना करें ''हे भगवन्! हमारा गृहस्थ जीवन सदाचार तथा देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा और निष्ठापूर्वक व्यतीत हो, हम भी क्रमशः बढ़ते-बढ़ते आपके समान बनने का प्रयास करके जीवन को कृतार्थ करें।''

❑ **विवाह का मूल उद्देश्य :**

1. जो पूर्ण रूप से अपनी वासना पर विजय पाने में असमर्थ है, वह अपनी वासना पर धीरे-धीरे विजय प्राप्त करके अन्त में पूर्ण ब्रह्मचारी बनें, यह विवाह का एक उद्देश्य है।
2. गृहस्थ धर्म का परिपालन करते हुए अपने आपको वारिषेण, सुदर्शन आदि के समान आदर्श बनाने के लिए योग्य कन्या के साथ धार्मिक विधि से विवाह करना, यह दूसरा उद्देश्य है।
3. गृहस्थ में रहते हुए भी मोक्ष-पुरुषार्थ की सिद्धि करने की भावना रखते हुए न्याय-नीतिपूर्वक धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ को सिद्ध करना, यह तीसरा उद्देश्य है।
4. योग्य कन्या से विवाह करने से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, सत्पात्र में दान, साधर्मी का आदर-सत्कार तथा व्रत-संयम का पालन करने में सहायता मिलती है, जिससे धर्म पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।
5. योग्य पत्नी के मिलने पर परस्त्री, वेश्या आदि में मन नहीं मचलता है, धन को वेश्या आदि व्यसनों में समाप्त नहीं करता और योग्य पत्नी के द्वारा धन का अपव्यय नहीं करने के कारण अर्थ-पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।
6. योग्य पत्नी के मिलने पर भोग में सन्तोष रखते हुए योग्य पुत्र की प्राप्ति कर अपने कुल एवं धर्म की परम्परा को अक्षुण्ण रूप से चलाता है, जिससे काम पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।
7. सामाजिकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए तथा दुराचार से दूर रहकर वैषयिक इच्छा पूरी हो और दाम्पत्य जीवन में किसी प्रकार का विसंवाद न हो, गृहस्थ जीवन शान्ति से बीते। यही विवाह का मूल उद्देश्य है।

पाणिग्रहण प्राणग्रहण का कारण बना :

गृहस्थ-जीवन रूपी गाड़ी में पति-पत्नी रूपी दो बैल हैं, यदि दोनों बैल भिन्न दिशा में जाने लगें तो गाड़ी की स्थिति खतरनाक हो सकती है। आज विवाह-सम्बन्ध में भी पैसे का प्रलोभन बढ़ता जा रहा है। दहेज देने में असमर्थ होने से तीस वर्ष तक की कन्यायें घर में कुँवारी अवस्था में अपना समय काट रही हैं। कई कन्यायें आत्महत्या कर अपने अमूल्य मनुष्य-जीवन को व्यर्थ नष्ट कर रही हैं। कई जगह सगाई का दस्तूर (सम्बन्ध) आदि सभी क्रियाएँ होने के पश्चात् भी मात्र लेने-देने के कारण पुनः सम्बन्ध छोड़ दिया जाता है। लड़के लाखों रुपयों की

कीमत पर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यवसाय के रूप में बिक रहे हैं। पाणिग्रहण आज प्राणग्रहण के रूप में दिखायी दे रहा है। प्रेम-बन्धन के स्थान पर बैर-बन्धन दिखायी दे रहा है। इस दहेज के फलस्वरूप नगर-नगर, गली-गली और घर-घर में शिशु हत्या (भ्रूण हत्या) का नग्न नृत्य दिखाई दे रहा है।

दया की मूर्ति में निर्दयता :

आज विज्ञान ने सुख-सुविधाओं के अनेक उपाय मानव जाति को प्रदान किये हैं, परन्तु भोगों में अंधे बने मानव के लिए वे साधन अभिशाप हो गये हैं। परिवार नियोजन के लिए एक उपाय निकाला गया गर्भपात और दूसरा उपाय गर्भस्थ शिशु बेटा है या बेटी ? इस जानकारी हेतु दम्पति गर्भस्थ शिशु का लिंग परीक्षण करवा लेते हैं और यदि शिशु उनकी अभिलाषा के अनुकूल नहीं है तो गर्भपात के माध्यम से उसकी हत्या कर देते हैं। कितनी बड़ी विडम्बना है कि अपनी विलासवृत्ति पर अंकुश लगाने के बजाय आज नारी कितनी निर्दय, निर्मम और अविवेकी हो गयी है कि नारी जाति और मातृत्व को कलंकित करने में भी नहीं हिचकती है। आज ''सत्तर रुपये में सुरक्षित गर्भपात'' जैसे विज्ञापनों से प्रेरित हुई महिलाओं के लिए गर्भपात कराना नाई की दुकान जाकर बाल कटाने के समान सुगम और ब्यूटी पार्लर में जाकर शृंगार कराने जैसा सस्ता शौक हो गया है। पशुओं को काटने वाले देवनार कत्लखाने के समान आज (एर्बोशन सेंटर) हर नगर, हर ग्राम में खुल चुके हैं। भारत में प्रतिवर्ष इन कत्लखानों में 57 लाख बच्चों की क्रूर हत्या कर दी जाती है। बच्चों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके गटरों (नालियों) में बहा दिया जाता है। 70, 80 या 90 वर्ष तक जीने के योग्य जिस शरीर की रचना हुई है उस शिशु की जीवन लीला दुनिया को देखने के पूर्व ही तीक्ष्ण औजारों के माध्यम से अथवा जहरीले क्षार पदार्थों के माध्यम से समाप्त कर दी जाती है। कसाई तो बकरे को एक झटके में मार डालता लेकिन इस गर्भपात प्रक्रिया में तो अनेक बार तीक्ष्ण औजारों से उन कोमल अवयवों को काट-काटकर गिराया जाता है। यह कितना पैशाचिक कृत्य है, जरा सोचो ''गर्भपात शिशु पूरा मनुष्य ही है।'' गर्भपात के पक्ष में प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि गर्भस्थ शिशु (भ्रूण) मात्र मानव निर्माण की अविकसित दशा है। गर्भपात कराने में निर्जीव शरीर का विनाश होता है, परन्तु ऐसा नहीं है। धार्मिक ग्रंथों के आधार से तो गर्भ-धारण के प्रथम समय में ही जीव वहाँ आ जाता है, क्योंकि जीव के बिना गर्भ का विकास संभव नहीं है। मनुष्य की पूर्ण आयु के जोड़ में गर्भस्थ काल को भी सम्मिलित किया

जाता है।

महाभारत की कथा में अभिमन्यु का ज्वलन्त उदाहरण है कि अर्जुन ने एक बार अपनी पत्नी सुभद्रा को चक्रव्यूह में प्रवेश की विधि बतायी थी, उस समय गर्भस्थ अभिमन्यु ने यह विवरण सुना था। चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि सुनते समय सुभद्रा को नींद आ गयी थी। इसलिए चक्रव्यूह से बाहर निकलने की कला अभिमन्यु के पास नहीं थी, उसी कारण से वीर अभिमन्यु युद्ध में मारा गया था।

जैनधर्म की स्पष्ट मान्यता है कि आत्मा की मनुष्य या पशु-पक्षी की पर्यायें माता के पेट में गर्भाधान के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है सभी पोत (जो जन्म लेते ही दौड़ने, भागने लगते हैं) और अण्डज प्राणियों की भी ऐसी प्रक्रिया है। इसलिए अण्डा भी जीव ही है, आप और हम जितने समय में एक बार श्वास लेते हैं, उससे भी कम समय में वह भ्रूण एक बार श्वास लेता है वह भी लोगों के समान भूख, निद्रा, भय आदि का संवेदन करता है। आज के वैज्ञानिक भी शोध करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गर्भपात के समय शिशु की चेष्टाओं में अनेक परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं, उसके हृदय की धड़कन और श्वास की गति असामान्य रूप से बढ़ जाती है। उसके शरीर में एक विशेष प्रकार की सिहरन होने लगती है। वह एक अशक्त और असहाय प्राणी है। आज संसार में वात्सल्य और ममता की मूर्ति मानी जाने वाली माँ अपने लाल (बच्चे) के प्राणों की प्यासी हो गयी है। तब वह बालक किसकी शरण में जाकर रक्षा की कामना कर सकता है। विदेश में 'द साइलेंट स्क्रीम'(गूंगी चीख या शान्त कोलाहल) नाम की एक फिल्म तैयार की गई है, उसमें बारह आदि सप्ताह का गर्भ एर्बोशन के समय किस ढंग से रहता है, इसकी जानकारी करायी गयी है। अमेरिका और यूरोप में इस फिल्म के दर्शकों ने एर्बोशन के कानूनों को बदलने के लिए जबरदस्त आंदोलन छेड़ा है। इस फिल्म में दर्शकों ने देखा है कि जब वह कच्चा बच्चा या भ्रूण अपनी हत्या करने के लिए औजारों को निकट आते देखता है या उनका स्पर्श करता है तब उसमें निम्नलिखित क्रियायें होती हैं -

जब संक्शन पम्प भ्रूण के नजदीक जाता है कि तब बालक में प्रति मिनट 140 बार होने वाली हृदय की धड़कन बढ़कर 200 बार प्रति मिनट हो जाती है, अपने जीवन रूपी दीपक को बुझाने के लिए आ रहे औजारों से बचने के लिए वह कुछ पीछे हट जाता है परन्तु तत्काल ही उसका आवरण शस्त्रों से छिद्र बनाकर उसके बाहर निकालने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, बालक के मस्तक और धड़

को झटके से अलग कर दिया जाता है तब वेदना से वह चीख उठता है, यह है ''गूंगी चीख'' फिर फोरसेप से दबाकर कठिन खोपड़ी को तोड़कर चूर-चूर कर दिया जाता है। यह ''द साइलेंट स्क्रीम'' सच्ची फिल्म है अतः अब मानवों को जानना चाहिए और अपने में से इस दानवीय वृत्तियों का त्याग करना चाहिए। भारत की नारी के लिए अपनी सन्तान को गर्भाशय से दूध की मक्खी के समान निकाल फेंकना निन्दनीय और अमानवीय कार्य है। अपने हाथ से अपनी सन्तान का गला घोंटने वाली वह माँ नहीं है वह राक्षसी है।

यदि आपको राक्षसी माँ नहीं बनना है तो इस निन्दनीय कार्य का आज से संकल्प लेकर त्याग कर देना चाहिए तथा अपने सम्पर्क में आने वाली अन्य महिलाओं को भी उस कुकृत्य से बचने का मार्ग दिखाना चाहिए। आज हर महिला का सोचना है कि जिस संतान की दुनिया में आने के पहले ही हम विदाई (मारना) करना चाहते हैं, वह सन्तान देश की उन्नति के लिए गाँधीजी, लालबहादुर शास्त्री, शिवाजी, रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, सुभद्रा और धर्म का उद्धार करने के लिए महावीर, अकलंक, निकलंक, आचार्य विद्यासागरजी, अंजना, सीता, द्रौपदी आदि जैसा आदर्श उपस्थित कर सकती हैं।

कल्पना कीजिये यदि आपके माता-पिता ने आपके साथ भी ऐसा (भ्रूण हत्या) ही व्यवहार किया होता तो क्या आप इस दुनिया को देख सकते थे? दुनिया के भोगों को भोग सकते थे ? तथा अपनी आत्मा के लिए कुछ कर सकते थे ? सोचो! आज आप कहाँ होते ?

आपने कभी विचार नहीं किया है कि गर्भस्थ शिशु के भी मन होता है। वह एक वृद्ध मानव से भी अधिक अच्छे परिणाम (भाव) वाला हो सकता है। आप जैसे विकसित प्राणी अपने भोगों के लिए अपने ही बच्चे को मारने जैसा क्रूर कर्म करके नरक-निगोद की यात्रा करते हुए सुअर, कुतिया, बिल्ली आदि जैसी नीच योनि (पर्यायों) को प्राप्त करते हैं परन्तु वह गर्भस्थ शिशु जो अभी कुछ ही घण्टों का है, सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग की आयु को बाँध सकता है। जो कुछ दिनों का है, वह मरकर पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्ग में जा सकता है, जो तीन मास से लेकर सात-आठ मास का है, वह नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें स्वर्ग में जा सकता है। अर्थात् बारहवें स्वर्ग तक के देवों की आयु बंध के परिणाम उसमें हो सकते हैं और मरकर आयु बंध के अनुसार उन स्वर्गों में भी जा सकता है। उसे निर्जीव मानना कहाँ तक सत्य है ? जब अविकसित अवस्था में भी वह देवायु के

बंध योग्य परिणाम कर सकता है तो विकसित अवस्था (जन्म के बाद) में क्या मोक्षादि पुरुषार्थ करने में समर्थ नहीं होगा ?

धवला पुस्तक 7 में आचार्य वीरसेन स्वामी ने निम्न प्रकार लिखा है-

भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष, सौधर्म तथा ऐशान स्वर्ग के देव मरकर मनुष्य या तिर्यञ्च के गर्भ में आकर अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् पुनः भवनत्रिक एवं सौधर्म, ऐशान स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं। सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग के देव मुहूर्त पृथक्त्व के पश्चात् पुनः सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं, 5, 6, 7, 8 वें स्वर्ग के देव पक्ष पृथक्त्व के पश्चात् पुनः 5, 6, 7, 8 वें स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं। 9, 10,11,12 वें स्वर्ग के देव मास पृथक्त्व के पश्चात् पुनः 9,10,11,12वें स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं, 13,14,15,16वें एवं ग्रैवेयक, अनुदिश तथा अनुत्तर स्वर्ग के देव मनुष्य स्त्री के गर्भ में आकर वर्ष पृथक्त्व के पश्चात् पुनः तेरहवें आदि स्वर्गों में उत्पन्न हो सकते हैं।

विशेष : 48 मिनट तक का एक मुहूर्त, 48 मिनट में एक समय कम का एक अन्तर्मुहूर्त, पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है, पृथक्त्व से तीन से ऊपर और नौ के बीच का समय समझना चाहिए। जैसे मुहूर्त पृथक्त्व का अर्थ सात-आठ मुहूर्त।

जरा शान्त होकर सोचो, सुअर, कुतिया आदि तिर्यंच भी असह्य भूख से व्यथित हो असमर्थ अवस्था में ही बच्चे का भक्षण करते हैं। थोड़ी-सी चलने-फिरने की शक्ति आने के बाद कभी ऐसा (स्वयं के बच्चों को मारने जैसा) कुकृत्य नहीं करते हैं। गली-गली में अपने भोजन के लिए भटकने वाली वह असहाय शूकरी एक साथ बारह बच्चों तक का दूध पिलाकर पोषण करती है तो क्या आप इतनी असमर्थ हैं कि एक सन्तान को दूध पिलाकर नहीं पाल सकती हो? अतः यदि आपने अपने को समझा है तो आगे कभी ऐसा कार्य नहीं करेंगे। ऐसा संकल्प अभी लो। मुझे आशा है कि यदि आप दया की मूर्ति हैं तो ऐसी निदर्यता का कार्य कभी नहीं करेंगे और वैज्ञानिक युग में प्राप्त साधनों का भोग-विलासिता में फँसकर दुरूपयोग नहीं करके विज्ञान को अभिशाप बनने से बचा लेंगे।

प्रश्न : गर्भ गिराने से क्या-क्या हानियाँ हैं ?

उत्तर : गर्भ गिराने से निम्न हानियाँ हैं :-

1. गर्भ गिराने वाली महिला कुतिया, शूकरी, नागिन एवं कसाई से भी गई बीती होती है, क्योंकि कुतिया आदि अपने भोग के लिए कभी अपनी सन्तान की हत्या नहीं करती है, न किसी से करवाती है।

2. गर्भपात करवाने से औजार आदि के कारण कैंसर, गुप्त बीमारियाँ, टिटनस आदि भयंकर रोग होने की सम्भावना बनी रहती है।
3. रक्तस्राव के कारण कभी-कभी खून चढ़ाने की नौबत आ सकती है।
4. गर्भवात के समय शिशु के शरीर का कटा हुआ भाग गर्भाशय में रह जाने के कारण या आपरेशन में कुछ कमी रह जाने पर वह जीवन भर बाँझ हो सकती है।
5. औजार से बच्चेदानी में छेद हो जाने पर उसे निकलवाना ही पड़ता है, जिससे स्त्री बाँझ हो सकती है।
6. गर्भपात के बाद स्त्रियों का (RHO-gam) नहीं मिल पाता, जिससे उनकी भावी सन्तान मृत अथवा अपंग होने की सम्भावना रहती है।
7. गर्भपात कराने से स्त्रियों को जब कभी रक्तस्राव होने की सम्भावना रहती है।
8. गर्भपात कराने के कारण व्यभिचार अधिक फैलता है। स्वदारसन्तोषव्रत का पालन भी नहीं होता है क्योंकि उसका भय समाप्त हो जाता है।
9. गर्भपात कराने से स्त्रियों का शरीर रोगों का म्यूजियम बन जाता है। वे जीवन भर दुःखी रहती हैं।
10. गर्भपात कराने वाली एक तिहाई महिलाओं को ऐसी बीमारी हो जाती है जिससे वे जीवन भर सन्तान प्राप्त करने की योग्यता खो देती हैं।
11. गर्भपात से प्रति वर्ष 2 लाख स्त्रियाँ मरण को प्राप्त होती हैं। लगभग 80 लाख आजीवन बीमार रहती हैं एवं 5 लाख गैरकानूनी गर्भपात से उत्पन्न समस्याओं के कारण मर जाती हैं।
12. गर्भपात कराने वाली महिलाओं को मानसिक बीमारियाँ होने की सम्भावना अधिक रहती है।
13. गर्भपात से होने वाले पाप की जानकारी होने पर जीवन भर पश्चात्ताप के आँसू बहाती हुई दुःखी होती हैं।
14. जीवन भर माँस का ही भक्षण करने वाली व्याघ्री और सबको भय उत्पन्न करने वाली प्रचण्ड विषधारी नागिन भी कभी छठवे नरक में नहीं जाती और स्त्रियाँ छठे नरक चली जाती हैं। इसका सम्भवतः एक कारण गर्भपात भी है।
15. गर्भपात कराने वाली स्त्रियाँ नरकों में असंख्यात वर्षों तक दुःख भोगती हैं। देवगति में तो कभी जाती ही नहीं हैं और यदि कभी मनुष्य-तिर्यंच बन

भी जाती हैं, तो अल्पायु वाली ही बनती हैं। अर्थात् दुनिया देखने के पहले ही मरण को प्राप्त हो जाती हैं।

16. गर्भपात कराने वाली महिला, इसकी सलाह देने वाले, अनुमोदना (अच्छा मानना) करने वाले, अस्पताल ले जाकर कराने वाले पुरुष को भी कभी अपने इष्ट भगवान् की पूजन, आहारदान, साधु की वैय्यावृत्य, जिनवाणी (शास्त्र) का स्पर्श करना, पढ़ना आदि धार्मिक अनुष्ठान नहीं करने चाहिए क्योंकि वह एक असहाय मानव की हत्या करने वाला महापापी है।

विशेष : यदि अनजाने में आपने ऐसा नीच कार्य कर लिया है तो शीघ्र गुरु के पास आकर अपने इस जघन्य अपराध की आलोचना कर लीजिए, जिससे आपका पाप भार हल्का अवश्य हो जायेगा।

❑ वासना पर विजय प्राप्त करने की सीढ़ियाँ :

प्रथम सीढ़ी-अष्टमी, चतुर्दशी, दशलक्षण और तीनों (आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन) अष्टाह्निका पर्व में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें।

द्वितीय सीढ़ी-कुछ वर्षों के बाद पूर्वोक्त नियम के साथ (दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी) पाँच तिथियों को और भादों, माघ, चैत्र माह में आने वाले तीनों दशलक्षण पर्व में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें।

तृतीय सीढ़ी-पूर्वोक्त नियम के साथ शुक्लपक्ष में अर्थात् महीने में 20 (शुक्लपक्ष के 15 दिन तथा 5 दिन कृष्ण पक्ष के) दिन का तथा तीनों सोलहकारण पर्व (भादों, माघ, चैत्र) में व्रत का निर्दोष पालन करें।

चतुर्थ सीढ़ी-पूर्वोक्त नियम के साथ एक माह में 28 या 29 दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें।

पाँचवीं सीढ़ी- इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास में सफलता प्राप्त करते हुए एक वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें।

छठी सीढ़ी-अपना मनोबल प्रबल हो तो गुरु की साक्षी में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा करें। अगर असमर्थ समझें तो पाँच वर्ष का नियम लेकर पुनः जीवन भर का नियम लेवें।

❑❑❑

3. सन्तान और संस्कार

❑ योग्य सन्तान की प्राप्ति किसे ?

योग्य सन्तान की प्राप्ति के लिए स्वदार-सन्तोष व्रत के साथ-साथ स्वस्त्री में भी अति आसक्ति का त्याग करना आवश्यक है। श्रेष्ठ सुसंस्कारित सन्तान के इच्छुक गृहस्थ को अपने छोटे-छोटे बच्चों के सामने अश्लील मजाक, कुचेष्टायें आदि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे बच्चों में अच्छे संस्कार नहीं बनते हैं। इसके विषय में एक राजा का कथानक इस प्रकार है-

वीर का वीरत्व- गुजरात के राजा पर मुगलों द्वारा चढ़ाई करने पर उनसे युद्ध करने राजकुमार गया था। वीरता से युद्ध करते हुए राजकुमार का सिर कट गया, फिर भी उसके हाथ की तलवार ने बहादुरी से 10-12 मुगलों को मृत्यु की गोद में सुला दिया। यह देख मुगलों के राजमंत्री ने सोचा जब यह राजकुमार ही इतना बहादुर है तो इसका पिता कितना बहादुर होगा ? यह बात उससे मुगल बादशाह ने कही। बादशाह ने कहा-''उस राजा को अपने राज्य में लाओ जिसकी यह सन्तान है ताकि हम उसका विवाह अच्छी लड़की से कर देंगे, जिससे ऐसी ही बहादुर सन्तानें हमारे राज्य में भी हों।'' मंत्री उस राजा के पास गया और बोला - ''महाराज! आपको हमारे बादशाह ने बुलाया है।'' राजा ने बुलाने का कारण पूछा। तब मंत्री ने कारण बताते हुए कहा- ''आपके पुत्र के शौर्य की प्रशंसा सुनकर हमारे राजा ने आपको अपने राज्य में बुलाया है वहाँ आपकी शादी किसी श्रेष्ठ कन्या से कर देंगे और आप उनके राज्य में रहकर ऐसी (राजकुमार जैसी) ही बलवान सन्तान पैदा करें।'' राजा बोला-''भाई! वहाँ हमारे लायक कोई लड़की भी मिलेगी?'' मुगल मंत्री बोला-''हमारे राज्य में एक से एक सुन्दर रूपवती एवं गुणसम्पन्न लड़कियाँ हैं।'' तब राजा बोला -''मुझे सुन्दर लड़की नहीं चाहिए।'' मंत्री- ''महाराज! आपकी रानी कैसी थी।''राजा ने कहा- जो राजकुमार युद्ध में मारा गया है वह केवल छह माह का था और पालने में सो रहा था। मैं रानी के कमरे में गया और कुछ राग भरी बातें रानी से कहने लगा। तब रानी ने टोका कि इस बच्चे के सामने राग भरी बातें मत बोलो। यह पर-पुरुष है।'' मैंने कहा- ''इतने छोटे से बच्चे के रहने से क्या होता है।'' ऐसी हम बातें कर रहे थे कि उस बच्चे ने शर्म से अपना मुँह बिस्तर से ढ़क लिया। यह दृश्य रानी ने देख लिया और बोली- ''देखो! आप इसके सामने राग भरी बात करते थे इसलिए इसको भी शर्म आ गई और इसने अपना मुँह चादर से ढ़क लिया।'' यह कहकर रानी भोगों से विरक्त हो गयी।

यह उसके शील की थोड़ी सी कहानी है। उसके जीवन की सारी चर्या का तो कहना ही क्या? यदि आपके राज्य में ऐसी शीलवती कन्या हो तो मैं विवाह कर सकता हूँ। यह सुनकर मंत्री उदास होकर चला गया।

सारांश :

गुजरात के राजा को ऐसे वीर राजकुमार की प्राप्ति रानी के शील के कारण हुई थी। अतः जिन माता-पिता को श्रवणकुमार भरत, बाहुबली, रामचन्द्र के समान नीतिज्ञ, पितृभक्त एवं अंजना, सीता, अनन्तमती, चन्दना के समान श्रेष्ठ सन्तान की इच्छा हो तो उन्हें जब से बच्चा गर्भ में आवे तभी से अपना आचरण, मानसिक भावनाएँ एवं वचनों का व्यापार श्रेष्ठतम रखना चाहिए। सिनेमा, चित्रहार आदि न देखकर जिनेन्द्र देव, निर्ग्रन्थ गुरु और तीर्थ आदि के दर्शन करने चाहिए। अश्लील उपन्यास आदि न पढ़कर शास्त्र का अध्ययन व स्वाध्याय करना चाहिए कठोर, कर्कश, गाली आदि भण्ड वचन न बोलकर शिष्ट मृदुवचन बोलने चाहिए। अच्छे परिणामों के साथ रहने से योग्य संतान की प्राप्ति होती है। बच्चे के जन्म के बाद भी माँ को अपने कर्त्तव्य का भली प्रकार से पालन करते हुए उसे सुसंस्कारों से संस्कारित करना चाहिए। इस सन्दर्भ में परमपूज्य आचार्य श्री 108 ज्ञानसागरजी महाराज के शिष्य साहित्य-मनीषी दिगम्बराचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज ने हिन्दी साहित्य की अप्रतिम कृति 'मूकमाटी' महाकाव्य में लिखा है -

सुत को प्रसूत कर
विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने मात्र से
माँ का सतीत्व वह
विश्रुत- सार्थक नहीं होता
प्रत्युत
सुत-सन्तान की सुषुप्त शक्ति को
सचेत और
शत-प्रतिशत सशक्त
साकार करना होता है सत् संस्कारों से।
सन्तों से यही श्रुति सुनी है
सन्तान की अवनति में
निग्रह का हाथ उठता है माँ का

और
सन्तान की उन्नति में
अनुग्रह का माथ उठता है माँ का। (पृष्ठ 148)

❑ संस्कारों का चमत्कार :

संस्कार-रसायन से सुषुप्त शक्तियों के जागरण का एक जीवन्त उदाहरण आज भी इतिहास के पन्नों पर अपना अमर सन्देश सुनाते हुए सुषुप्त जन-जन को जागृत कर रहा है।

राजप्रसाद में आपस में वार्तालाप करते हुए राजा पत्नी से बोला- ''मदालसे! अभी भी अपनी गोद सूनी है।'' मदालसा विनयावनत हो बोली-''स्वामिन्! आप चिन्तित न होइये, आपकी इच्छा शीघ्र ही पूरी होने वाली है। मेरी इच्छा है कि मैं आपके साथ धर्मचर्चा करूँ। लोक में सबसे बड़ा अन्धकार सबसे बड़ी आग और सबसे बड़ा विष क्या है, एक शब्द में उत्तर चाहती हूँ।'' राजा बोले ''शुभे! सुनो, मिथ्यात्व सबसे बड़ा अन्धकार है जिसको सूर्य का प्रकाश भी नहीं हटा सकता है, यही सबसे बड़ी आग है जिसको मेघ भी नहीं बुझा सकता है तथा यही सबसे बड़ा जहर (विष) है जो जन्म-जन्मान्तर से प्राणियों को विषाक्त कर रहा है।'' मदालसा- ''अहा कितना सुन्दर उत्तर है, स्वामिन् ! अब विश्राम करें।'' हे आर्य ! 'द' है आदि में जिसके ऐसे वे पाँच दकार कौन से हैं जिनका जीवन में पालन करने से यह आत्मा दुर्गति के दुःखों से बच जाता है तथा सांसारिक सुखों को प्राप्त कर परम्परा से निर्वाण सुख को प्राप्त करता है।

राजा-प्रिये! दान, दया, दमन, दर्शन तथा देव-पूजन ये पाँच दकार जिसके जीवन में होते हैं वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा सन्त-महात्मा कहते हैं क्योंकि **दान** देने वाला कभी अधिक परिग्रह का संचय नहीं करता, जिससे कि वह बहुपरिग्रही बनकर नरकादि दुर्गतियों को प्राप्त हो। **दया** परिणाम रखने वाला कभी किसी जीव को सताना, मारना, पीड़ित करना आदि कार्य नहीं करता है जिससे उसके अहिंसा धर्म की रक्षा होती है तथा पाप का आस्रव नहीं होता है। अहिंसक मरकर नियम से सद्गति को प्राप्त करता है तथा परम्परा से निर्वाण को भी प्राप्त होता है। **दमन**-इन्द्रियों का दमन करने वाला और इन्द्रियों को जीतने वाला इन्द्रिय लोलुपी नहीं बनता, अभक्ष्य का भक्षण नहीं करता, सदाचार में तत्पर रहता है। वह अपने इन्द्रिय विषयों की पूर्ति के लिए हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापों का आश्रय नहीं लेता है जिससे वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता अर्थात् इन्द्रिय-दमन

करने वाला नियम से स्वर्गादिक सुगति को प्राप्त कर परम्परा से निर्वाण सुख को प्राप्त होता है। **दर्शन**-सम्यग्दर्शन को धारण करने वाला आत्मा कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल से अधिक संसार में भ्रमण नहीं करता है। महासन्त दिगम्बर जैनाचार्य स्वामी समन्तभद्र महाराज ने अपने रत्नकरण्डक-श्रावकाचार ग्रन्थ में बताया है-

सम्यग्दर्शनशुद्धाः, नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः।

अर्थ : सम्यग्दर्शन से शुद्ध आत्मा व्रतों से रहित होने पर भी नरक, तिर्यंच, नपुंसक, स्त्री, दुष्कुल, विकृत (अंगोपांग से हीन अथवा विकृत अंगों वाला), अल्पायु तथा दरिद्रता को कभी प्राप्त नहीं होता है। (सम्यग्दृष्टि प्रथम नरक में जा सकता है आगे नहीं) **देवपूजन** करने वाला परिणामों की विशुद्धि, प्रभु की भक्ति तथा दया, दानादि श्रेष्ठ गुणों से विभूषित होता है। वह देवपूजन करता हुआ अपने अनन्त भवों के पापों का क्षय कर देता है तथा ऐसे अतिशय पुण्य का आस्रव करता है जिसके प्रभाव से वह देवादि श्रेष्ठ गतियों को प्राप्त कर परम्परा से निर्वाण को प्राप्त करता है।

मदलसा-नाथ! आपके उत्तर से मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ तथा भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि हे भगवन्! मेरी होने वाली सन्तान परम्परा से मोक्ष को देने वाले इन पाँच दकारों को धारण करें।

कृपालु! सम्पूर्ण व्रतों का नाश करने वाला, घर में नरक दिखाने वाला, काले नाग के समान भयंकर तथा परमपूज्य देव, गुरु, शास्त्र का अपमान कराकर अनन्त भव को बढ़ाने वाला कौन है?

राजा- हे कल्याणरूपिणी! तेरा प्रश्न अति उत्तम है। संसार में क्रोध ही सम्पूर्ण व्रतों को नष्ट करने वाला है। यह आपस में कलह, लड़ाई-झगड़ा पैदा कर घर में नरक दिखाने वाला है। यही सबको भयभीत करने वाला भयंकर जहरीला नाग है तथा यही परमपूज्य देव, गुरु, शास्त्र का अपमान कराकर अनन्त भव को बढ़ाने वाला पाप है।

मदालसा- हे प्रभो! मेरी होने वाली सन्तान कभी इस क्रोधरूपी चाण्डाल के वशीभूत न हो। हे पुण्यात्मा! यदि आपको इस चर्चा से किसी प्रकार की बाधा न हो तो मेरी एक जिज्ञासा और है, यदि आज्ञा हो तो पूँछू।

राजा-हाँ, हाँ, अवश्य कहो। ऐसी धार्मिक चर्चा में किसे आनन्द नहीं

आयेगा ?

मदलसा- क्षय, मूर्च्छादि रोग किस कारण उत्पन्न होते हैं, तेज, वीर्य, बल आदि का नाश किस कारण होता है तथा किस कारण मनुष्य की संसार में सबसे अधिक अपकीर्ति होती है।

राजा - प्रियवादिनी! सुनो! संसार में 'वासना की तीव्रता' (अब्रह्म) ही मनुष्य को क्षय, मूर्च्छादि रोगों से दुःखी करने वाली है। यही तेज, वीर्य, बलादि का नाश करने वाली है तथा यही मनुष्य की संसार में सबसे अधिक अपकीर्ति कराने वाली है।

मदालसा- वाह! आपके इन समाधानों से मानो मेरा मन मयूर आनन्दविभोर हो नृत्य कर रहा है। हे प्रभो! संसार के किसी प्राणी के हृदय में वासना की तीव्रता न हो। हम सदैव इस वासना रूपी नागिन से बचते रहें।

इसी प्रकार धर्मचर्चा करते हुए उसके नौ माह सानन्द व्यतीत हुए।

मदालसा हर क्षण सावधान रहती हुई गर्भस्थ शिशु पर सत् संस्कारों का बीजारोपण करने लगी। नौ माह के बाद शुभ बेला में एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया। रानी ने बालक के जीवन निर्माण का दायित्व धाय के हाथ में न सौंपकर अपने हाथ में ले लिया। माँ की निर्मल भावना शिल्पी के हाथवत् बालकरूपी घट को घढ़ने में संकल्पित हुई। वह नवजात शिशु को घुट्टी के साथ धर्मसंस्कार पिलाने लगी।

वह संवेगवती मदालसा बच्चे को दूध पिलाते समय अन्य सभी कार्यों से निवृत्त होकर भावना करती थी कि हे पुत्र! तू कभी मेरे दूध को मत लजाना। मेरे दूध की अर्थात् मातृवंश एवं पितृवंश की रक्षा करने के लिए न्यायनीति के कार्यों में सदैव मन, वचन, काय से तत्पर रहना। इस दूध का प्रभाव तेरे शरीर में रक्त, रसादि के रूप में जीवन पर्यन्त रहेगा एवं इसके संस्कार आत्मा में रहेंगे। तू भविष्य में एक आदर्श श्रमण बनकर आदिब्रह्मा ऋषभदेव भगवान् से लेकर भगवान् महावीरस्वामी पर्यन्त चली आयी श्रमण-परम्परा को चलाने में एक कड़ी बनना।

इस प्रकार वह मदालसा श्रेष्ठ विचारों के साथ दूध पिलाती हुई अपने पुत्र को सुसंस्कारित करती थी। उसे हर समय ऐसा लगता था कि मानो मैं एक भावी श्रमण का पोषण कर रही हूँ। जब वह बच्चे को झूले में झुलाती तो आज की महिलाओं की तरह रागात्मक लोरी न सुनाकर वैराग्यप्रद लोरी सुनाती थी-

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,संसारमाया-परिवर्जितोऽसि।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टा, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थ : हे पुत्र ! तुम सिद्ध हो, बुद्ध हो, निरंजन हो, संसारी माया से रहित हो और शरीर से भिन्न हो। तुम मदालसा की बात मानते हो न? तो सर्वचेष्टाओं को छोड़ दो।

ज्ञातासि द्रष्टासि परात्मरूपोऽखण्ड स्वरूपोऽसि गुणालयोऽसि
जितेन्द्रियस्त्वं त्यज मानमुद्रां, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थ : हे पुत्र! तुम ज्ञाता हो, द्रष्टा हो, परमात्मस्वरूप हो, अखण्ड स्वरूप हो, गुणों के आलय हो और इन्द्रिय विजेता हो। तुम मदालसा की बात मानते हो न? मानमुद्रा को छोड़ दो।

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीनः, सिद्धस्वरूपोऽसि कलंकमुक्तः।
ज्योतिस्वरूपोऽसि विमुञ्च मायां, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थः हे पुत्र! तुम शान्त हो, दान्त अर्थात् इन्द्रियनिग्रह में तत्पर साधु हो, अविनाशी हो, सिद्धस्वरूप हो, कलंकमुक्त हो और ज्योतिस्वरूप हो। तुम मदालसा की बात मानते हो न ? माया को छोड़ दो।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि चिद्रूपभावोऽसि चिरन्तनोऽसि।
अलक्ष्यभावो जहि देहमोहं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थ : हे पुत्र! तुम एक हो, मुक्त हो, चिदात्मक हो, चिद्रूपभाव(पारिणामिक भाव)हो, चिरन्तन हो और अलक्ष्यभाव अर्थात् अतीन्द्रिय हो। तुम मदालसा की बात मानते हो न ? शरीर का मोह छोड़ दो।

निःकामधामासि निःकर्मरूपो, रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रः।
वेत्तासि चेतासि विमुञ्च कामं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्रः!।

अर्थ : हे पुत्र! तुम निष्कामधाम हो, कर्मरूप नहीं हो, रत्नत्रयमयी हो, परम पवित्र हो, वेत्ता हो और चेतन हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न? काम को छोड़ दो।

प्रमादमुक्ताऽसि सुनिर्मलोऽसि, अनन्तबोधादिचतुष्टयोऽसि।
ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरूपं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थ : हे पुत्र! तुम (4 विकथा, 4 कषाय, 5 इन्द्रिय, निद्रा और स्नेह आदि पन्द्रह) प्रमाद से रहित हो, अत्यन्त निर्मल हो, अनंतज्ञानादि-चतुष्टय वाले हो

और ब्रह्म हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न ? अपने चिद्रात्मरूप की रक्षा करो।

कैवल्यभावोऽसि निवृत्तयोगो, निरामयो ज्ञातसमस्ततत्त्वः।
परात्मवृत्तिः स्मर चित्स्वरूपं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थ : हे पुत्र! तुम कैवल्यभाव हो, योगमुक्त (मन, वचन और काय की प्रवृत्ति से रहित हो) रोगमुक्त हो, सर्वतत्त्ववेत्ता हो और उत्कृष्ट आत्म-स्वरूप हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न ? चित्स्वरूप का स्मरण करो।

चैतन्यरूपोऽसि विमुक्तमारो, भवादिकर्त्तासि समग्रवेदी।
ध्याय प्रकामं परमात्मरूपं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र!।

अर्थ : हे पुत्र! तुम चैतन्यरूप हो, कामवासना मुक्त हो, ज्ञानभावादि के कर्त्ता हो और सर्वज्ञ हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न ? अभीष्ट परमात्मरूप का ध्यान करो।

जब थोड़ी-थोड़ी समझ आने लगी तब वह उसे स्नानादि करवाने के पश्चात् नौ बार णमोकार मन्त्र सुनाती तथा कहती बेटा! तुझे भी इन पंचपरमेष्ठी भगवान् के समान ही बनना है। तुम जीवन में हर क्षण इनका स्मरण करना क्योंकि लोक में ये ही मंगल, उत्तम तथा शरणभूत हैं। जब वह कुछ बड़ा हो गया, बोलने लगा तो सर्वप्रथम उसने बच्चे को पंचपरमेष्ठी वाचक 'ॐ' शब्द का उच्चारण सिखाया। उसके बाद, 'सिद्ध', 'अरहन्त' आदि मंगलसूचक शब्दों का उच्चारण सिखाया। सायंकाल जब वह सब कार्यों से निवृत्त हो जाती तब बच्चे का चौबीस तीर्थंकरों के नाम, णमोकारमन्त्र तथा छोटी-छोटी स्तुतियाँ सिखाती एवं संक्षेप में महापुरुषों के जीवन की कथाओं को सुनाकर उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करती तथा भगवान् भक्त मेंढ़क, धनञ्जय आदि की कहानियाँ सुनाकर प्रभु के प्रति भक्ति के संस्कार डालती। जब वह सोने लगता तब उसे नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करवाकर समझाती बेटा! सोने के पहले नौ बार णमोकार मन्त्र का स्मरण करने से रात्रि में खोटे स्वप्न नहीं आते, कभी किसी से डर नहीं लगता तथा निद्रा भी जल्दी आ जाती है। अतः हर व्यक्ति को नित्य णमोकारमंत्र का जाप करके ही सोना चाहिए। जब वह उठता तो भी णमोकारमंत्र का जाप करवाकर समझाती-जो प्रातःकाल उठते ही णमोकारमंत्र का स्मरण करता है, जाप करता है, उसका दिन बहुत अच्छा सुख-शान्ति से निकलता है। किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं होता तथा उसका किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता। तुम्हें प्रातःकाल माता-पिता, दादा-दादी

आदि बड़े सदस्यों को प्रणाम करना चाहिए, जिससे बड़ों का आशीर्वाद मिलता है। इस प्रकार प्रेरणा देती थी तथा जब वह स्वयं माँ को प्रणाम करता तो वह उसे श्रवण बनने का आशीष देती। कुछ दिनों के बाद बच्चा स्वयं भी सोते समय एवं उठते समय णमोकार मंत्र का स्मरण करने लगा।

जब वह चलता तब उसे कहती-बेटा! तुझे श्रवण बनना है न, नीचे देखकर चलो, देखो-देखो चींटी आदि कोई छोटे-छोटे जीव मर नहीं जायें। जीवों को मारने में बड़ा पाप लगता है। नरक में जाना पड़ता है। जिस प्रकार अपने को कोई मार देता है, कुचल देता है तो अपने को दुःख होता है वैसे ही इन छोटे-छोटे जीवों को भी दुःख होता है। तुमने मंदिर में मुनिराज के दर्शन नहीं किये, वे कैसे नीचे देख-देखकर भगवान् की प्रदक्षिणा लगा रहे थे। वे किस प्रकार जीवों की रक्षा करते हैं। उनमें कितनी दया है, इसलिए तो उनको पाप का बंध नहीं होता है और देखो-क्या तुम्हारे अध्यापकजी ने नहीं सिखाया कि नीचे देखकर चलना चाहिए। कहा भी है -

नीचे देखे तीन गुण, पड़ी वस्तु मिल जाय।
ठोकर भी लागे नहीं, जीव-जन्तु बच जाय।

नीचे देखकर चलने में तीन लाभ होते हैं-1. कोई वस्तु अपनी या अपने से आगे जाने वाले की गिर गई हो तो वह मिल जाती है। आगे जाने वाले की हो तो उसकी जानकारी देने से परोपकार हो जाता है। 2. पत्थर, कांटे आदि रास्ते में पड़े हों तो उनसे पैरों में पीड़ा नहीं होती। 3. छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं की रक्षा हो जाती है।

तुम्हें भी रास्ते में काँच के टुकड़े, केले के छिलके, पत्थर, कांटे आदि पड़े हों तो उन्हें उठाकर एक तरफ रख देना चाहिए, जिससे चलने वालों को किसी प्रकार की पीड़ा न हो। अब देखकर चलोगे न!

पुत्र- ''हाँ! माँ! अब मैं भी महाराज के समान नीचे देख-देखकर चलूँगा, तो क्या मैं महाराज बन जाऊँगा?'' माँ बच्चे की बात सुन मन ही मन प्रसन्न होती।

जब वह भोजन करता तो समझाती ''बेटा! भोजन करते समय इधर-उधर नहीं देखना चाहिए क्योंकि इधर-उधर देखते हुए भोजन करने से बाल, मक्खी, मच्छर आदि नहीं खाने योग्य पदार्थ पेट में चले जाते हैं, जिससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तथा पाप का बन्ध भी होता है। तुझे नहीं मालूम कल अपने यहाँ मुनिराज का आहार हुआ था, तूने देखा नहीं ? वे किस प्रकार आहार करते हैं। ये तो

भोजन करते समय बोलते भी नहीं हैं। इधर-उधर भी नहीं देखते हैं, क्रोध भी नहीं करते, माँगते भी नहीं हैं और न किसी प्रकार का संकेत (इशारा) करते हैं। उनकी अंजुलि में नमक का या बिना नमक का, घी का या बिना घी का, जैसा रूखा-सूखा श्रावक रख देते हैं, वैसा वे निर्विकल्प होकर सन्तोषपूर्वक बिना हर्ष-विषाद (राग-द्वेष) ग्रहण कर लेते हैं। इसलिए तो दिन में एक बार एक ही स्थान पर भोजन-पानी आदि करने पर भी उनके शरीर की स्थिति बनी रहती है। ऐसे महासन्त ही तो अशुचिमय विनश्वर शरीर से विरक्त होकर ध्यान के द्वारा परम निर्वाण को प्राप्त करते हैं।''

वह भोजन कराते समय उसे (बच्चे को) अच्छे-अच्छे आध्यात्मिक, भक्तिप्रद एवं वैराग्यवर्धक भजन सुनाती अथवा प्रेरणास्पद छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाती थी।

नोट-यद्यपि भोजन करते समय भजन सुनना आदि अन्य कार्य नहीं करना चाहिए। एकाग्रता से मौनपूर्वक ही भोजन करना चाहिए, गपशप करते हुए टी. वी. आदि देखते हुए भोजन आदि नहीं करना चाहिए परन्तु बाल्यावस्था में यह सम्भव नहीं। अतः मदालसा वैराग्यप्रद भजन गुनगुनाते हुए भोजन कराती थी।

जब वह बोलता तब समझाती- ''बेटा बिना विचारे नहीं बोलना चाहिए। अधिक भी नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि अधिक बोलने वाला न गुरु आदि पूज्य पुरुषों का विनय कर सकता है और न ही झूठ आदि पापों से बच सकता है। उसका मस्तिष्क भी कमजोर हो जाता है, जिससे वह अच्छे कार्यों को सरलता से नहीं कर पाता है। तुमने नहीं सुना, उस दिन आचार्य महाराज कितनी मधुर वाणी से उपदेश दे रहे थे, कितना धीरे-धीरे प्रेम, वात्सल्य और करुणा से समझा रहे थे। तुम भी अब धीरे-धीरे और मीठे-मीठे बोलोगे न ?''

पुत्र- हाँ! माँ! मैं भी अब धीरे-धीरे और मीठे-मीठे हितकारी वचन बोलूँगा। जब कभी वह कुछ कार्य प्रारम्भ करता अथवा घर से बाहर निकलता तब उसे णमोकारमंत्र स्मरण करने को कहती, क्योंकि कार्य के प्रारम्भ में अपने इष्टदेव का स्मरण करने से कार्य निर्विघ्नता से पूर्ण होता है।

जब उसकी वर्षगाँठ (जन्मगाँठ) का अवसर आता तो भी वह उसे अवश्य संस्कारित करती। उस दिन वह उसे विशेष रूप से उम्र के अनुसार जिनेन्द्रभक्ति आदि करने की प्रेरणा देती। उसके हाथों से गरीबों को वस्त्र, अनाज, पुस्तकें आदि योग्य आवश्यक सामग्री दिलवाकर परोपकार के संस्कार डालती।

जिनालय में सोने-चाँदी के सिक्के भण्डार में डलवाकर तथा छत्र, चँवर, चावल, बादाम आदि द्रव्य रखवा कर दान के संस्कार डालती। उसकी जन्मगाँठ पर उसे किसी श्रेष्ठ पदार्थ से तौल कर उतनी सामग्री गरीबों को उसके हाथ से दिलवाती। (राजा तो राजकुमार की जन्मगाँठ पर मनवांछित दान देता ही था।) कुमार के योग्य वय का हो जाने पर चावल, बादाम, सुपारी आदि का पुंज देकर देवदर्शन के संस्कार नियमित रूप से डालती थी।

नोट-रात्रिभोजन, अचार, आलू आदि जमींकंद का भक्षण, बिना छना पानी पीना आदि सद्गृहस्थ के अयोग्य कार्यों को तो बच्चा जानता ही नहीं था, क्योंकि इन कार्यों को राजा-रानी राजमाता आदि कभी नहीं करते थे।

दूज के चाँद के समान बढ़ते हुए बालक की सुलभ चेष्टाओं, अलौकिक चिन्तन एवं अध्यात्म के मैदान की क्रीड़ा को देख पिता (राजा) के संदेह की खाई दिन-प्रतिदिन गहरी होती गई। राग-संवर्धक साधनों से बालक को जकड़ने की राजा की चेष्टा निष्फल रही।

एक दिन राजा ने सुना कि नौ वर्षीय सुकुमार कल उद्यान में दिगम्बर सन्त का अनुचर (दीक्षित) हो गया। यह सुनकर तो मानो राजा पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। रानी ने राजा को बहुत समझाया और द्वितीय सन्तान की आशा की डोर में बाँध धैर्य दिलाया और आश्वस्त किया। कुछ दिनों पश्चात् रानी के उदर पर गर्भ के चिह्न उभर आये। राजा की खोई खुशियाँ लौट आईं। रानी ने द्वितीय पुत्र को जन्म दिया। राजा पहले से अधिक सावधान था पर विरागी को बाँधने वाला बन्धन क्या आज तक कहीं देखा गया है। माँ की सद्भावना एवं सुसंस्कारों से बालक की सुषुप्त चेतना जागृत हो गई, वह भी अल्पवय में ही बड़े भाई का अनुचर बन गया। समय का चक्र चलता रहा और एक, दो, तीन, चार, पाँच और छहों राजपुत्र मोक्षमार्ग में बढ़ गये। इन प्रतिकूल घटनाओं से राजा अत्यन्त निराश हुआ। राज्य के उत्तराधिकरी की चिन्ता में दिनोंदिन उदास रहते हुए विचार करने लगा क्या राज्य की चिंता से मुक्त हुए बिना में आत्मकल्याण के मार्ग में बढ़ पाऊँगा ? इस प्रकार विचार करते-करते राजा के मन में एक युक्ति निकल आई। उसने निश्चय किया कि इस बार होने वाली सन्तान को मैं रानी से अलग रखकर कहीं अन्यत्र पोषण करूँगा, जिससे मेरा मनोरथ निश्चित सफल होगा। इस विचार से जन्म के प्रथम दिन ही राजा ने नवजात शिशु को माँ (रानी) से विलग कर दिया और उसके पोषण की व्यवस्था योग्य धाय को सौंप दी। बालक ने शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त होते हुए

यौवन के आँगन में प्रवेश किया। तभी किसी शत्रु के दूत ने राजा को युद्ध की सूचना दी। सूचना सुनते ही राजा को युद्ध में जाने के लिए तत्पर देख राजकुमार बोला-''पिताजी! मेरे रहते हुए आप युद्ध में जावें, यह शोभा की बात नहीं है। आप यहीं सुख-शान्ति से रहें, मैं युद्ध में जाऊँगा और शत्रु को परास्त कर लौटूँगा।'' राजा ने बालक को उत्साहित देख युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी एवं शुभ शकुनों के साथ आशीर्वाद देते हुए बोला- ''बेटा! एक बार जाकर अपनी माँ से भी आशीर्वाद ले लो।'' पिता की आज्ञा लेकर राजकुमार आशीर्वाद लेने माँ के पास पहुँचा। जन्म के 25 वर्ष पश्चात् प्रथम बार माँ ने पुत्र को और पुत्र ने माँ को देखा। माँ आशीर्वाद देते हुए बोली-''बेटा! युद्ध में तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो। इसके साथ मैं तुम्हें एक बात और कहना चाहती हूँ।'' राजकुमार बोला-'माँ! अवश्य कहिए, आपकी हर बात मेरे लिए शिरोधार्य है।'' माँ बोली- ''बेटा! यह एक छोटा-सा पत्र है, इसे अपने गले में बाँध लो। जब कभी तुम्हारे ऊपर आपत्ति आवे तो खोल कर पढ़ लेना, सुख-शांति मिलेगी। बालक ने माँ की आज्ञा अनुसार पत्र को गले में बाँधकर युद्ध के लिये प्रस्थान किया।

अत्यन्त वीरता से युद्ध में लड़ते हुए भी शत्रुपक्ष का सेनाबल अधिक होने से राजकुमार की सेना यत्र-तत्र बिखर गई। उसके धैर्य का बाँध टूट गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसी समय उसकी दृष्टि माँ द्वारा प्रदत्त पत्र पर पड़ी। उसने तत्काल उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था- ''जिसके लिये तुम लड़ रहे हो वह राज्यलक्ष्मी बिजली की कौंध एवं जल के बुलबुले के समान चंचल/क्षणिक है.....।'' पत्र पढ़ते ही बालक के संस्कार (जो माँ ने गर्भावस्था में डाले थे) जागृत हो गये। उसे संसार की वास्तविकता समझ में आ गई। उसने तत्काल निर्ग्रन्थ मुनिराज के चरणों में केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली।

सार यह है कि ऐतिहासिक माँ का आदर्श लेकर यदि आज भी महिलाएँ अपने गर्भस्थ शिशु को ऐसे ही संस्कारों से संस्कारित करें तो श्रमण संस्कृति की रक्षा हो सकती है।

❑ वर्तमान में बच्चों को कैसे संस्कारित करें ?

1. प्रत्येक माँ को सद्भावना और सुसंस्कारों से बच्चे के मानस को सचेत, सशक्त और सुसंस्कृत करना चाहिए।
2. सर्वप्रथम ॐ सिद्ध, जय आदि शब्द का उच्चारण सिखाना चाहिए।
3. पाप से भयभीत करने वाली छोटी-छोटी पौराणिक कथायें सुनाना चाहिए ।

4. बाजार के बिस्कुट, टॉफी, चॉकलेट आदि खाद्य पदार्थ नहीं खिलाकर घर के बने योग्य पदार्थ खिलाने चाहिए।
5. बच्चों के सामने कभी भी किसी के साथ अपशब्द, गाली आदि का व्यवहार नहीं करना चाहिए।
6. लतावत् बालक के कोमल मानस को मोड़ने की जिम्मेदारी माँ पर ही है। बालक के सामने गोपनीय क्रिया कभी नहीं करनी चाहिए, ताकि वह भविष्य में खोटे संस्कारों से ग्रसित नहीं हो सके।
7. सप्त व्यसनों का स्वरूप और उनके दुष्परिणामों को अच्छे ढ़ंग से समझाते रहना चाहिए।
8. बच्चों में चौबीस घण्टे में एक बार जिनेन्द्र दर्शन (मंदिर), दान (भण्डार में पैसा आदि) एवं रात्रिभोजन त्याग के संस्कार अवश्य डालने चाहिए।
9. बच्चों को टी. व्ही., वी.सी.आर. देखने के संस्कारों से बचाने के लिए स्वयं को टी. व्ही. आदि नहीं देखना चाहिए। रागवर्धक कार्यक्रम तो कभी भी नहीं देखने चाहिए।
10. माँ को बच्चों की लौकिक पढ़ाई के साथ-साथ धार्मिक पढ़ाई (पहला भाग, दूसरा भाग) पर भी ध्यान देना चाहिए।
11. बच्चों की संगति (मित्रों) का ध्यान रखना चाहिए, जिससे वे खोटी संगति में फँसकर अपने भविष्य को अंधकारमय न बनावें।
12. बच्चों को जन्म दिवस, परीक्षा-परिणाम अथवा शादी के अवसर पर दीन-दुखियों के भोजन, औषधि, विद्यादान आदि की प्रेरणा देकर उनमें परोपकार के संस्कार आरोपित करने चाहिए।
13. बच्चों को सदैव मिलजुलकर रहने की प्रेरणा देनी चाहिए।

❑❑❑

4. वैधव्य : दशा और दिशा

❑ वैधव्य क्या है ?

संयोग और वियोग प्रत्येक प्राणी के जीवन में घटने वाली अवश्यंभावी स्थितियाँ हैं। ''जहाँ संयोग है वहाँ वियोग निश्चित रूप से है, परन्तु जिसका वियोग हुआ है उसका संयोग होना अनिश्चित है।'' दो भिन्न कुलों (परिवारों) में उत्पन्न और भिन्न प्रकार के वातावरण में पलने वाले बालक और बालिका जब विवाह-बंधन में बाँधे जाते हैं तो वे जीवन-भर के लिए एक-दूसरे को अनन्य समझते हैं दोनों एक-दूसरे के दुःख-सुख में सुखी-दुःखी होते हैं लेकिन दोनों का भाग्य, दोनों की आयु बराबर हो, यह कोई निश्चित नहीं है। इसलिए कभी तो दुर्भाग्य के कारण पति अकालमरण (दुर्घटना आदि) से अथवा अपनी आयु पूर्ण होने पर अपनी नवयौवना पत्नी को छोड़कर परलोक चला जाता है और कभी पत्नी अपने पति को छोड़कर परलोक चली जाती है। ऐसी स्थिति में पुरुष तो पुनः अन्य अविवाहित कुलीन कन्या के साथ विधिपूर्वक विवाह करके अपना जीवन बिता सकता है लेकिन स्त्री के लिए जिनेन्द्र भगवान् की यह आज्ञा नहीं है कि वह भी पुरुष के समान किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह कर ले, क्योंकि भारतीय नारी का हृदय एक (विवाहित) पुरुष के लिए ही समर्पित रहता है। उसके हृदय में अपने पति को छोड़कर किसी भी अन्य पुरुष का विचार तक नहीं आता। सती स्त्री अपने मन में अपने पति से रूप, गुण, ऐश्वर्य, धन आदि की अपेक्षा किसी अन्य पुरुष को अधिक नहीं समझती है, तभी तो वह सती कहलाती है।

पुराण ग्रन्थों में भी आता है कि जब सती मैनासुन्दरी का विवाह अत्यन्त दुर्गन्ध शरीर वाले राजकुमार श्रीपाल के साथ हो रहा था, उस समय सारी प्रजा राजा को धिक्कारते हुए कह रही थी कि श्रीपाल कोढ़ी है, इसके शरीर से दुर्गन्ध आ रही है। इसके साथ मैनासुन्दरी (राजकुमारी) कैसे रहेगी ? हाय! यह अनर्थ है। इस कोढ़ी के साथ मैना का विवाह क्यों कर दिया ? इस प्रकार बार-बार कहकर प्रजा रो रही थी, विलाप कर रही थी, उस समय अपने पति के लिए कोढ़ी कहना, उनकी निन्दा करना, मैनासुन्दरी से नहीं सुना गया वह गंभीर स्वर में बोली- ''हे मेरे माता-पिता तुल्य बन्धुओं! एवं अन्यान्य गुरुजनों! मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि आप लोग हमारे हितचिन्तक हैं और आज तक आप लोगों ने जो कुछ किया है, हमारे कल्याण के लिए ही किया है, परन्तु इस समय की बातों को सुनकर मेरे हृदय में शूल चुभाये जाने से भी कहीं अधिक क्लेश हो रहा है। मैं उनके (अपने पति

के) विषय में और अधिक कुत्सित शब्दों को सुनने में नितान्त असमर्थ हूँ। आप लोगों को यह जानना चाहिए कि स्त्री का सर्वस्व उसका पति है और उसके सम्बन्ध में ऐसे अपशब्द कोई भी पतिपरायणा सती स्त्री सुन नहीं सकती। उसका शील, कुल एवं सतीत्व एकमात्र पति पर ही निर्भर है। कर्मानुसार जैसा पति प्राप्त हो जाता है कुलीन कन्याएँ उसी को प्रिय एवं पूज्य समझती हैं। आप लोग मेरे पति को महाकुरूप एवं रोगग्रस्त देख गलित कुष्ठ रोगी कह रहे हैं। यह आपकी सांसारिक दृष्टि है। परन्तु मेरी दृष्टि में तो वे (श्रीपाल) कामदेव के समान सुन्दर हैं।'

धन्य हैं ऐसी आदर्श नारियाँ।

प्रश्न-यदि पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्रियों को दूसरा विवाह करने का निषेध क्यों ?

उत्तर-किसी भी स्थिति में किसी भी तर्क से स्त्रियों का दूसरा विवाह उचित नहीं है क्योंकि पुरुष भोक्ता (भोग करने वाला) होता है और स्त्रियाँ भोग्य (भोगने योग्य) होती हैं। जिस पदार्थ को एक बार भोग लिया जाता है, वह निश्चित रूप से उच्छिष्ट (जूठन) हो जाता है। वह पुनः भोगने योग्य नहीं रहता है। लोकव्यवहार में भी जो पदार्थ किसी के द्वारा भोग लिया जाता है उसे दूसरा कोई भोगना नहीं चाहता और न ही भोगता है। उसी प्रकार जो स्त्री किसी एक भोक्ता पुरुष के द्वारा भोग ली गई है, वह दूसरे पुरुष के द्वारा भोग्य कैसे हो सकती है? भोक्ता अनेक वस्तुओं का भोग कर सकता है। इसमें कोई बाधा नहीं है। लेकिन एक ही वस्तु का भोग अनेक भोक्ता पुरुष नहीं कर सकते हैं। अतः स्त्री के पुनर्विवाह का निषेध किया है। जो स्त्री विवाह नहीं करती वह ब्रह्मचारिणी है, जो एक पुरुष के साथ विवाह करती है, वह स्वदार संतोषी है। जो छिपकर एक विवाहित पुरुष को छोड़कर अन्य पुरुषों के साथ भोग करती है वह व्यभिचारिणी है एवं जो बिना लज्जा के खुलेआम अनेक पुरुषों के साथ गलत सम्बन्ध रखती है, वह वेश्या कहलाती है। आप ही सोचिए-स्त्रियों को अपनी पर्याय की सफलता के लिये क्या बनना उचित है? ब्रह्मचारिणी और स्वदारसन्तोषी अथवा व्यभिचारिणी एवं वेश्या। देव, नारकी और भोगभूमियाँ जीवों के तो न कभी इस प्रकार का प्रसंग ही आता है और न ये इस प्रकार का नियम ले ही सकते हैं। तिर्यंचों में विरले ही तिर्यंच हिताहित को जानते हैं। अतः उनमें भी काकतालीय न्यायवत् किसी-किसी के स्वदारसंतोष व्रत होता है। लेकिन मनुष्यों में विवेक भी है और नियम लेने का सामर्थ्य भी, अतः विवेक से कार्य करना चाहिए।

❑ वैधव्य का कारण :

जो स्त्री विधवा होकर व्यभिचार-सेवन करे अथवा वासना को उत्पन्न करने वाले कारणों को ग्रहण करे, जैसे-शरीर पर मन को लुभाने वाले सुन्दर वस्त्र, आभूषण, बहुमूल्य साड़ी आदि पहने, शरीर का शृंगार करे, केशों की अनेक प्रकार से रचना करे, नेत्र आदि में सुरमा-अंजनादि लगाकर कामोत्पादक वेश बनावे, पुष्ट-इष्ट रसयुक्त भोजन-पान का सेवन कर कामवासना जगावे, दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा के गान करे, मायाचार और मान को धारण करने का ढ़ोंग बतलावे, कुकथा और कुशिक्षा का पठन-पाठन और अभ्यास करे, जिससे कि सदैव कुबुद्धि बनी रहे और कुमार्ग की वृद्धि हो, वासना बढ़े, इत्यादि कारणों से स्त्री मर कर भव-भव में, जन्म-जन्मान्तरों में विधवा होती है क्योंकि उसने अपने धर्माचरण रूप वैधव्य दीक्षा का नाश किया।

❑ विधवा विवाह का निषेध :

विधवा स्त्री को वैधव्यदीक्षा लेना ही जरूरी है। धर्मशास्त्रों में विधवा के लिये वैधव्यदीक्षा का विधान बतलाया है। वैधव्यदीक्षा धारण करने पर उसे केशों का उत्पाटन, शृंगार का त्याग, सुन्दर वस्त्रों का जिन्हें सौभाग्यवती स्त्रियाँ पहनती हैं, त्याग करना चाहिए। श्रीपालपुराण में तो इतना तक लिखा है कि जब श्रीपालजी विदेश व्यापार के लिये गये थे तब सती मैनासुन्दरी ने बारह वर्ष तक श्वेत वस्त्र धारण किये अर्थात् वह अपने सभी वस्त्र सफेद ही पहनती थी, नीरस भोजन करती थी और व्रत-उपवास करती हुई घर में संवेग-वैराग्य से रहती थी। आभूषणों से शरीर को नहीं सजाती थी। किसी प्रकार के शृंगार (काजल, सुगन्धित पदार्थ, इत्र आदि) ताम्बूल-पान आदि का सेवन और कोमल बिस्तर, पलंग, शय्या आदि पर शयन नहीं करती थी। गरिष्ठ भोजन नहीं करती हुई सादगी से रहती थी, इसी प्रकार हरिवंशपुराण में भी आता है।

वसुन्धरपुर नगरी के राजा विंध्यसेन ने अपनी पुष्प के समान कोमल अंग वाली बसन्तसुन्दरी नाम की कन्या का युधिष्ठिर की प्रशंसा सुनकर मन में उसी के साथ विवाह का निश्चय किया था तब युधिष्ठिर के दग्ध होने की बात सुन बसन्तसुन्दरी अपने मन में पूर्वोपार्जित कर्म की निन्दा करती हुई आश्रम में उदासीनता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगी। उसके वैराग्य और तपस्या को देखकर आश्रम की अन्य महिलायें भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती थीं। इसी प्रकार त्रिश्रृंग नगर के राजा प्रचण्डवान ने अपनी गुणप्रभा, सुप्रभा, ह्री, श्री, रति,

पद्मा, इन्दीवरा, विश्वा, आचर्या और अशोका नाम की दस कन्याओं का युधिष्ठिर के साथ विवाह करने का विचार किया और उसी नगर के सेठ प्रियमित्र ने भी अपनी नयनसुन्दरी नाम की कन्या का युधिष्ठिर के साथ विवाह करने का निश्चय किया था। युधिष्ठिर के लाक्षागृह में जलने की बात सुनकर ये बारह ही कन्याएँ अणुव्रतों को धारण कर मंदिर में रहने लगीं। इन सबने भोगों से विरक्त होकर अपने मन में निश्चय किया था कि इस भव में युधिष्ठिर को छोड़कर कोई अन्य हमारा पति नहीं हो सकता तथा युधिष्ठिर के अभाव में हमें तप करना ही श्रेयस्कर है, यह सोच उन्होंने आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा देने की प्रार्थना की। आर्यिकाजी ने कहा-''कुछ दिन ठहर जाओ, यदि तुम्हारा पुण्य होगा तो पाण्डव अभी जीवित होंगे।'' वे आर्यिकाजी की आज्ञानुसार तपश्चरण करके अपने शरीर को कृश करने लगीं और बारह भावनाओं का चिंतन करती हुई वैराग्य को बढ़ाती थीं। उन्होंने अपने सब आभूषण उतार दिये। वे किसी प्रकार के सुगंधित उबटन आदि लगाकर स्नानादि से शरीर का संस्कार नहीं करती थीं और नीरस भोजन करके अपनी इन्द्रियों को वश में रखती थीं।

इसी प्रकार राजा उग्रसेन की कन्या सती राजुल का विवाह महाराज समुद्रविजय के इकलौते पुत्र राजकुमार नेमि के साथ निश्चित हुआ था। नेमिकुमार की बारात उग्रसेन महाराज के द्वार तक भी नहीं पहुँची थी और बीच में ही नेमिनाथ ने लौटकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। उस समय राजुल सहेलियों के आदि के द्वारा बार-बार समझाये जाने पर भी किसी भी राजकुमार के साथ विवाह करने को तैयार नहीं हुई थी, उसने सभी को एक ही उत्तर दिया कि, ''परिणय बंधन भले ही नहीं हुआ हो परन्तु प्रेमबंधन तो हो ही चुका।'' अर्थात् राजुल ने नेमिनाथ को छोड़कर सभी को अपने भाई के रूप में ही देखा और किसी के साथ विवाह नहीं करने का निश्चय करके नेमिनाथ के पथ पर चलकर आत्म-कल्याण का मार्ग अपनाया था। कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त नारियों ने विवाह के पहले ही मात्र विवाह करना ही उचित नहीं समझा अपितु वे वैराग्य के साथ रहने लगी थी, वस्त्रालंकार पर भी उनका मोह नहीं रहा तो जिनका विवाह हो चुका है, जो अपना हृदय किसी एक पुरुष के प्रति समर्पित कर चुकी हैं, उन्हें क्या पुनः अन्य पुरुष के साथ विवाह करना शोभा देता है? जिस प्रकार जिस शरीर में से प्राण निकल चुके हैं, उस शरीर को कोई बुद्धिमान नहीं सजाता अथवा जिस फूल में से सुगन्ध निकल चुकी हो, उसमें कोई सुगन्ध डालने में समर्थ नहीं हो सकता, उसी प्रकार जिस स्त्री

के जीवन से सुहागरूपी प्राण अथवा सुगन्ध निकल चुकी है, क्या वह पुनः अपने जीवन को शृंगारित कर मांग में सिंदूर भर सकती है ? और यदि यह कार्य करना गलत नहीं था तो उन सतियों और महान् नारियों ने युधिष्ठिर की मृत्यु का एवं नेमिनाथ की दीक्षा का समाचार सुनकर अन्य राजकुमारों से विवाह क्यों नहीं कर लिया?

❑ विधवा क्या करें ?

चाहे कितनी ही विपत्ति क्यों न हो, तो भी विधवा अथवा त्यक्ता महिला को पुनः विवाह करने का विचार नहीं करना चाहिए। जो स्त्री वैधव्यदीक्षा को धारण कर संयम से धर्माचरण पूर्वक रहती है। वह एक प्रकार से घर में रहने वाली आर्यिका के समान है, परम साध्वी है, उससे समस्त कुटुम्ब को शील की शिक्षा प्राप्त होती है, वह सबको पवित्र आचरण सिखलाती है और शील की रक्षा तथा माहात्म्य का आदर्श जगत् के सामने रखकर स्त्री समाज का और अपना ही कल्याण करती है, किन्तु जो विधवा महिला वैधव्य दीक्षा को स्वीकार नहीं करके शृंगार करती हैं, उत्तमोत्तम आभूषण पहनती हैं और ऐसी कुशिक्षा प्राप्त करती हैं कि जिससे समाज में व्यभिचार बढ़े और धर्माचरण का लोप हो, शीलव्रत नष्ट हो जावे, ऐसी विधवायें धर्म का लोप कर व्यभिचार को बढ़ावा देती हैं। अतः इन्हें चाहिए कि वे अपने शील की रक्षा के लिए निरन्तर सत्समागम में रहें, सत्शास्त्रों का अध्ययन करें अथवा वैराग्य वृद्धि के लिए किसी आश्रम में जाकर अपने जीवन का विकास करें, इसी में उनके जीवन की सफलता है। अपने पति का वियोग होने पर स्त्री का विचार करना चाहिए कि यदि मेरे भाग्य में सुहाग लिखा था तो पति का वियोग क्यों हुआ? क्या दूसरी शादी करने पर पति नियम से जीवित रहेगा ? सुख देगा ? यदि सुख लिखा था तो फिर वियोग क्यों हुआ? मुझे अपने सतीत्व को कलंकित नहीं करना है, यदि दूसरी शादी करने पर पुनः वियोग हो गया अथवा शराब आदि व्यसन सेवन करने वाला पति मिल गया तो क्या वह मुझे सुख दे पायेगा? क्या दूसरा विवाह करने से मेरी, मेरे कुल की, मेरे नारीत्व की इज्जत रह पायेगी ? अतः मुझे अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सादा जीवन एवं उच्च विचार अपनाने चाहिए। मर जाना अच्छा है लेकिन पर-पुरुष के साथ अपने शील को बेचना कभी अच्छा नहीं हो सकता है, इस प्रकार की मन में बार-बार धारणा बनाकर शांति से जीवन-निर्वाह करना चाहिए।

नोट-जिनको तलाक दे दिया गया हो उन महिलाओं को भी इसी प्रकार

विचार कर ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए।

प्रश्न–आज लोग कहते हैं कि लड़की के विधवा हो जाने पर वह अनेक पुरुषों के साथ व्यभिचार सेवन करेगी इसकी अपेक्षा तो उसका पुनः किसी एक पुरुष के साथ विवाह कर दिया जावे तो क्या हानि ?

उत्तर– लड़की के विधवा हो जाने पर लोगों का उसे पुनर्विवाह की सलाह देना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। लड़की अनेक पुरुषों के साथ व्यभिचार सेवन क्यों करेगी, क्या आपने इसके कारणों पर कभी विचार किया है? नहीं। इसके कारण निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. उसकी आजीविका का कोई साधन नहीं मिलना। अथवा
2. परिवारजन का बार-बार नित्य नये-नये भोगों को भोगते हुए देखना।
3. अथवा, उसमें धर्म के संस्कार नहीं होना।

इन कारणों को हटाने के लिए आज की समाज अथवा माता-पिता क्या विधवा लड़की के लिए आजीविका का साधन उपलब्ध नहीं करवा सकते या उसकी योग्यतानुसार उसे कोई नौकरी आदि दिलाकर उसको अपने पाँवों पर खड़ा नहीं कर सकते ? आप अपनी लड़की के शील की रक्षा के लिए अपने भोगों की प्रवृत्ति कम करेंगे तो कौन-सी हानि हो जायेगी। हाँ, भोजन किये बिना व्यक्ति मर सकता है। लेकिन अत्यधिक सज-धज कर रहना, रागवर्धक कार्यक्रम देखना, पति-पत्नी का बार-बार मजाक करना, इन कामों को न किया जाये तो भी कोई मरेगा नहीं। आज के युग का एक आदर्श उदाहरण इसी विषय में है कि भाई-भाभी ने कितना बड़ा त्याग करके बहिन को अपने वैधव्य का अनुभव नहीं होने दिया तथा उसे शीलधर्म में स्थिर किया।

भाभी का अपूर्व त्याग :

संसार की विचित्रता को दिखाते हुए किसी कवि ने कहा है–

काहू घर पुत्र जायो, काहू के वियोग आयो,
काहू राग-रंग काहू रोवा-रोवी करे है।
जहाँ सूर्य उदय उछाह, गीत-गान देखे,
साँझ समय वही जगह, हाय-हाय परी है।

संसार एक रंगमंच है। इसमें अनेक जीव नाना प्रकार के नाटक कर रहे हैं, किसी के घर पुत्र-उत्पत्ति की खुशियाँ मनाई जा रही हैं तो किसी के यहाँ पुत्रवियोग में शोक छाया हुआ है, एक ही घर में जहाँ उषाकाल में राग-रंग की

लालिमा से प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न दिखाई दे रहा है, नाना प्रकार के मांगलिक गीत-गानों से घर का कोना-कोना आपूरित हो रहा है, उसी घर में सायंकाल पुत्र के वियोग के कारण हृदयद्रावी विरह वेदना से युक्त रोने के करुण क्रन्दन सुनाई दे रहा है। घटना हिसार जिले की है-एक घर में विवाह के अवसर पर नाना प्रकार की खुशियाँ छायी हुई थीं। प्रेम और खुशी से दुल्हन के साथ बारात की विदाई हुई और उधर उसी समय दूल्हे की बहिन का पति अकस्मात् काल की गोद में सो गया। भाग्य की विचित्रता भाई के हाथ का मंगल सूत्र खुलने के पहले ही बहिन की चूड़ियाँ टूट गयीं। नव-वधू की मांग में सिंदूर भरने के पूर्व ही बहिन की मांग का सिन्दूर भाग्य ने पोंछ लिया, भाई का भाभी के साथ गठबंधन होने के पूर्व ही जीजी और जीजाजी का गठबंधन प्रस्थान कर चुका था। भाई ससुराल से दुल्हन को लेकर विदाई ले रहा था और इधर जीजाजी बहिन को छोड़कर संसार से विदाई ले गये।

एक ही समय में एक डाली के दो पुष्प हर्ष और शोक में लीन थे। भाई दुल्हन लेकर आया और बहिन उसी समय वैधव्य। एक दिन भाई अंधेरे में दुल्हन के निकट गया, दुल्हन ने साहस बटोरकर कहा-''अरे! बहिन की आँखों में आँसू छलके और आपकी आँखों में काम। तुम्हें सती के तेज की सौगन्ध है, मुझे हाथ न लगाना।'' यह सुनकर भाई की आँखें खुल गईं और भाई ने दुल्हन की बात स्वीकार ली। दुल्हन स्नेहभरी बातों से ननद का दुःख भुलाने लगी। पच्चीस वर्ष तक ननद-भाभी एक साथ सोई, उठी, हँसी और रोई, लेकिन भाई ने दुल्हन का कारा या गोरा मुँह तक नहीं देखा तथा बहिन वैधव्य को याद करके एक दिन भी न रोयी न दुःखी हुई। पैंतालीस वर्ष की उम्र में बहिन सतयुगी भाई को छोड़कर स्वर्ग-वासिनी हो गई। इसके दो वर्ष बाद उनके एक लड़का हुआ। वह आज बलवान, वीर अपने माता-पिता की श्रेष्ठ सन्तान के रूप में विद्यमान है। एक भाभी अपनी भर यौवन अवस्था में शादी के प्रथम दिन से ही अपनी ननद के लिये इतना बड़ा त्याग कर सकती है तो फिर आपकी तो अवस्था ढ़ल चुकी है, आप अपने जीवन में अनेक बार भोगों का सेवन कर चुके हैं। अतः विधवा को अपनी बेटी के समान समझें और कभी भी पुनर्विवाह या विधवा-विवाह को प्रोत्साहन न दें।

❑❑❑

5. मैथुन : स्वरूप, भेद और कारण

❑ **अब्रह्म अपरनाम मैथुन :**

1. मिथुन का कर्म मैथुन है।
2. स्त्री-पुरुष के शरीर के परस्पर स्पर्श करने में जो रागपरिणाम है, वही मैथुन है।
3. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय होने पर स्त्री और पुरुष के परस्पर शरीर का सम्मिलन होने की इच्छा से होने वाला जो रागपरिणाम है, वही मैथुन है।
4. स्त्री-पुरुष के शरीर के परस्पर स्पर्श से ही मैथुन नहीं है अपितु एक में भी मैथुन का प्रसंग है क्योंकि हाथ-पैर अथवा पुद्गल आदि के संघट्टनादि के द्वारा भी अब्रह्म का सेवन होने पर एक में मैथुन होता है।
5. जिस प्रकार चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में वेदना से पीड़ित स्त्री-पुरुष का कर्म मैथुन कहलाता है, वैसे ही चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से उद्विग्न रागी हस्तादि का संघट्टन (घर्षण) मैथुन है। जिस प्रकार स्त्री और पुरुष रति के समय शरीर का संयोग होने पर स्पर्श सुख होता है, उसी प्रकार एक व्यक्ति को हाथ आदि के संयोग से भी स्पर्श सुख का अनुभव होता है, दोनों मैथुन तुल्य हैं।
6. हस्तमैथुन- आज युवक-युवतियाँ जिस कुकृत्य को करने में सबसे ज्यादा लिप्त रहते हैं वह है हस्त-मैथुन क्रिया। इस कार्य में किसी साथी का होना जरूरी नहीं होता। इसलिए इस कुकृत्य का आदी व्यक्ति जब चाहे यह कार्य सकता है।

इस कारण अब्रह्म में सबसे ज्यादा की जाने वाली क्रिया हस्तमैथुन है। जो व्यक्ति कामुक विचार रखते हैं, कामवर्धक साहित्य पढ़ते हैं, कामुक फिल्में देखते हैं, कामुक फोटो, मूर्तियाँ और एलबम देखते हैं, वे कामोत्तेजित होने पर (कामुकता से प्रभावित होकर) उसे शान्त करने के लिए इस घृणित और गन्दे कार्य को करके वीर्यपात कर लेते हैं। इस क्रिया को हस्त-मैथुन कहते हैं।

पश्चिमी लोग हस्तमैथुन को स्वाभाविक मानते हैं और कहते हैं कि कामोत्तेजना शान्त करने के लिए कोई सहयोगी नहीं मिले तो फिर हस्तमैथुन के अलावा कोई उपाय नहीं। लेकिन यह कहना उनकी बड़ी गलतफहमी (धारणा) है आत्म-प्रवंचना और बहानेबाजी है। हस्तमैथुन करने वाले कामोत्तेजना के

कारणों को जबरदस्ती मिलाकर वासना उत्पन्न करके हस्तमैथुन करते हैं। यह भी मैथुन के समान पापास्रव कराने वाला है। हस्तमैथुन की आदत वाला गाय, भैंस आदि तिर्यंचों के साथ भी इस प्रकार का घिनौना कार्य कर लेता है।

7. कभी-कभी चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से एक पुरुष का दूसरे पुरुष के साथ भी मैथुन देखा जाता है। कहा है पुरुष-पुरुष में जो अनिष्ट प्रयोजन है वह सब तीव्र राग की चेष्टा है, इसी प्रकार स्त्री, स्त्री की अनिष्ट चेष्टा को भी जानना चाहिए।
8. अब्रह्म को ही मैथुन कहते हैं।

❑ **मैथुन के भेद :**

मैथुन दस प्रकार का होता है-

1. शरीर का संस्कार करना।
2. पुष्ट-रस का सेवन करना।
3. गीत, नृत्य-वादित्र का देखना, सुनना।
4. स्त्री का संसर्ग करना।
5. स्त्री में किसी प्रकार का संकल्प या विचार करना।
6. स्त्री के अंग देखना।
7. स्त्री के अंगों को देखने की बार-बार इच्छा करना।
8. पूर्व में किये गये संभोग का स्मरण करना।
9. आगामी भोग भोगने की चिन्ता करना।
10. शुक्र का क्षरण करना।

अष्टपाहुड में शील की दस विराधनाएँ बताई गई हैं -

1. स्त्री संसर्ग	2. सरस आहार
3. सुगन्ध संस्कार	4. कोमल शय्यासन
5. शरीर का मण्डन	6. गीत-वादित्र सुनना
7. अर्थग्रहण	8. कुशील संसर्ग
9. राजसेवा	10. रात्रि में संचरण करना

ये दस शील को नष्ट करने वाले हैं।

मरणकण्डिका ग्रन्थ में दस प्रकार के अब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

1. स्त्री के मनोहर रूप देखने की अभिलाषा होना।
2. वस्ति मोक्षण अर्थात् लिंग में विकार होना।

3. वृष्याहार सेवन-गरिष्ठ आहार का सेवन।
4. स्त्री के द्वारा संसक्त हुए शय्या आदि में राग होना।
5. स्त्री के सुन्दर अंगोपांगों का निरीक्षण।
6. स्त्री का सत्कार करना।
7. अतीत में भोगे हुए का स्मरण।
8. स्त्री का वस्त्रादि से सत्कार करने में आदर भाव होना।
9. आगामी काल में भोगने की अभिलाषा।
10. अपने को इष्ट लगने वाले विषयों का सेवन करना।

❑ **मैथुन प्रज्वलित होने के कारण :**

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्रजी ने जीवकाण्ड में मैथुन संज्ञा के चार

कारण बताये हैं -

1. कामोद्दीपक पदार्थ का (आहार का) सेवन करने से।
2. विषयोपभोग सम्बन्धी चिन्तन करने से।
3. कुशील व्यक्तियों की संगति करने से।
4. वेद नामक कर्म की उदीरणा होने से।

कामोद्दीपक आहार :

1. जिन पदार्थों का सेवन करने (खाने) से कामवासना उत्पन्न होती है, उसे कामोद्दीपक आहार कहते हैं।
2. इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला गरिष्ठ आहार ही कामोद्दीपक आहार कहलाता है।
3. अतिमात्रा में किया गया आहार भी कामोद्दीपक आहार कहलाता है।

1. कामोद्दीपक आहार का सेवन करने से :

ब्रह्मचर्य और भोजन का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। अधिक गरिष्ठ तामसिक भोजन करने वाले पुरुष का किसी भी हालत में वीर्य रुक नहीं सकता। उसका चित्त सदैव विषय-भोगों की ओर ही लगा रहता है। उसका मन और तन दोनों रागी बन जाते हैं। 'बुद्ध' का कहना है, एक बार हल्का सात्त्विक आहार करने वाला महात्मा है, दो बार संभल करके खाने वाला बुद्धिमान व भाग्यवान है और इससे अधिक बेखटक बार-बार खाने वाला महामूर्ख, अभागा और पशु का भी पशु है। मन को वश में करने का सच्चा सरल उपाय कम खाना है, क्योंकि आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि से बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है।

यदि मनुष्य दो साल पर्यंत लगातार सादा भोजन और अति अल्प आहार करे तो उसकी कुबुद्धि नष्ट होकर एक विशेष तेज प्रकट होने लगेगा।

आहार हमारे जीवन में स्वाभाविक क्रियाओं पर विशेष प्रभाव डालता है। इसे तीन भागों में विभाजित किया जाता है-

1. तामसिक आहार 2.राजसिक आहार 3.सात्त्विक आहार

1. तामसिक आहार- जो आहार विवेकशून्य हो निर्दयता से बनाया गया है, जिसके करने से व्यक्ति कर्त्तव्यविमुख तथा विवेकशून्य होकर व्यभिचार, अत्याचार, बलात्कार आदि क्रियाओं में लगा रहता है, राक्षस के समान क्रूर प्रवृत्तियाँ करने लगता है, सदा रोगी, दुःखी, बुद्धिहीन, क्रोधी, लालची, आलसी, दरिद्री, अधर्मी, पापी, अल्पायु बनकर अन्त में नरकगामी होता है, ऐसे मद्य, माँस, मधु, अण्डा, अंजीर, प्याज, लहसुन, कंदमूल इत्यादि से युक्त आहार को तामसिक आहार कहते हैं। इस आहार के सेवन से वीभत्स और रौद्रादि रस उत्पन्न होते हैं।

2. राजसिक आहार- जीवन में विलासिता लाता है, मन चंचल, कामी, क्रोधी, लालची और पापी होता है। रोग, शोक, दुःख, वैषम्य बढ़ते हैं और आयु, तेज, सामर्थ्य और सौभाग्य वेग के साथ घटते हैं, (ऐसे अतिउष्ण, कटु, नमकीन, खट्टे, तेलयुक्त, गरिष्ठ जैसे-पूड़ी, कचौड़ी, मालपुआ, पकौड़ी आदि तले हुए पदार्थ राजसिक आहार कहलाते हैं।) इनके सेवन से ब्रह्मचर्य सुरक्षित नहीं रह सकता। राजसिक आहार से शृंगार रस प्रस्फुटित होता है।

कई लोगों की ऐसी धारणा है कि अधिक हलवा-पूड़ी, चूरमा, मावा आदि गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है। लेकिन उनकी यह धारणा सर्वथा गलत है क्योंकि हलवा, पूड़ी आदि गरिष्ठ पदार्थ खाने से वीर्य (शक्ति) बढ़ता नहीं बल्कि रहा-सहा वीर्य भी उछल कर नष्ट हो जाता है। कारण कि भोजन सही ढ़ंग से नहीं पचता, उसे पचाने के लिए शक्ति का व्यय होता है।

सात्त्विक आहार- जो आहार त्रसजीवों से रहित हो, अन्नादि खाद्य पदार्थों से बनाया गया हो, जो विशुद्ध परिणामों की सुरक्षा करने वाला हो, जिसके करने से विवेक, सादगी, दया, अहिंसा आदि सुरक्षित रहते हों, ताजा, रसयुक्त, हल्का, स्निग्ध, मधुर एवं प्रिय हो जैसे गेहूँ, चावल, जौ, साठी, मूंग, अरहर, चना, दूध, घी, शक्कर, सैंधा नमक, पके फलादि सात्त्विक आहार कहलाते हैं।

विशेष-सात्त्विक आहार भी यदि बासी हो तो वह तामसिक आहारवत् प्रतिफलित होता है तथा सात्त्विक आहार गृद्धतापूर्वक अधिक मात्रा में किया गया हो तो वह राजसिक आहार के समान प्रतिभासित होता है। सात्त्विक आहार शांत

रस के रसिक साधकों के लिए साधना में सहयोगी होता है।

ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को अतिमात्रा में आहार तथा गरिष्ठ आहार भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि गरिष्ठ आहार शीघ्रता से नहीं पचता है, इसलिए वह कब्ज करता है। मल का अवरोध होने से वासना जागृत होती है और वीर्य का क्षय होता है। अतः पेट भारी रहे उतना नहीं खाना चाहिए और गरिष्ठ आहार भी नहीं करना चाहिए। ऐसा सन्तुलित और सात्त्विक आहार करो जिससे पेट साफ रहे, खाना जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक आवश्यक मलशुद्धि (पेट साफ होना) है। मल अवरोध से (गैस) वायु बनती है तथा पेट में मलमूत्र और वायु का दबाव बढ़ने से कामवाहिनी नाड़ियाँ उत्तेजित होती हैं, जिससे वासना उत्पन्न होती है। खान-पान और मलशुद्धि में सजग रहना ब्रह्मचर्य की बहुत बड़ी शर्त है।

महात्मागाँधी लिखते हैं- ''मैंने प्रयोग करके देख लिया कि हमारी खुराक थोड़ी (कम), सादी और बिना मिर्च-मसालों की होनी चाहिए और प्राकृतिक अवस्था में खायी जानी चाहिए। इसके विषय में छह वर्ष तक प्रयोग करके देख लिया कि ब्रह्मचारी का आहार वनपक्व फल है। फलाहार से ब्रह्मचर्य सहज था। दुग्धाहार से वह कष्टसाध्य हो गया। दुग्ध का आहार ब्रह्मचर्य के लिए विघ्नकारक है, अपने विकारों को शान्त करने के लिए घी-दूध का इस्तेमाल कम ही करना चाहिए। कच्चे वनपक्व फल अथवा साग-सब्जियों का सीधा आहार अहिंसा की दृष्टि से जैन-साधु के लिए वर्ज्य है। इसलिए जिनेन्द्र भगवान् ने अप्रासुक फल - सब्जी आदि को खाने का निषेध किया है।''

ब्रह्मचर्य से अस्वादव्रत बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाला है, दवा या पानी के समान। जिस प्रकार इन दोनों का भक्षण करते समय स्वाद नहीं लिया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी का भोजन बिना स्वाद के होना चाहिए। मनुष्य को युक्ताहारी एवं अल्पाहारी होना चाहिए। यदि कोई जीभ को जीत ले तो ब्रह्मचर्य सहज पल जाता है।

❋ गरिष्ठ भोजन ध्यान में बाधक :

ध्यान के लिए वीर्य-शुद्धि और ब्रह्मचर्य बहुत आवश्यक है। दूध, घी आदि रसों का प्रचुर मात्रा में सेवन करने से वीर्य पर्याप्त मात्रा में बढ़ता है, वह कामवासना को उत्तेजित करता है, उससे मानसिक चंचलता बढ़ती है और वीर्य दोष उत्पन्न होता है। यदि वीर्य संचित रहता है तो मन की चंचलता बनी रहती है और यदि उसका विसर्जन किया जाता है तो स्नायविक दुर्बलता बढ़ती है। स्नायविक दुर्बलता वाले व्यक्ति के मन का सन्तुलन नहीं हो सकता है। मानसिक सन्तुलन के

अभाव में ध्यान की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसलिए रसों का प्रचुर मात्रा में सेवन करना ध्यानाभ्यासी के लिए हितकर नहीं है।

वात और पित्त के शमन के लिए एक दिन में लगभग दो तोला घी लिया जा सकता है। किन्तु उसकी अधिक मात्रा अपेक्षित नहीं है। घी सर्वाधिक वीर्यवर्धक वस्तु है। उसके अधिक सेवन का अर्थ वासना को उभारना है।

शान्ति को (सुषुप्त) प्राप्त हुआ कामदेव भी कामवासना को उत्तेजित करने वाले शास्त्रों के पठन और गरिष्ठ रसों के सेवन से उद्दीप्त हो जाता है। इसलिए अपनी इच्छा से न वैसे शास्त्रों को पढ़ना चाहिए और न ही गरिष्ठ रसों का उपभोग करना चाहिए। गरिष्ठ भोजन करती हुई एक स्त्री ने अपने शान्त हुए कामदेव को उत्तेजित कर दिया, उसकी कथा-

❋ गरिष्ठ आहार का दुष्परिणाम :

नगर सेठ का एक पुत्र बहुत ही सुशील एवं विवेकवान् था। सेठ ने उसे विवाह के योग्य देख एक धर्मनिष्ठ लड़की के साथ उसका विवाह कर दिया लेकिन दुर्भाग्य से विवाह के कुछ ही दिनों के बाद सेठ के लड़के का देहावसान हो गया और सेठजी उसके वियोग का दुःख भूले नहीं थे कि उसके पहले ही सेठानी भी स्वर्गलोक को चली गई। अब घर में सेठ जी और बहुरानी दो ही सदस्य रह गये। सेठजी ने सोचा, बहू को अपने पति का वियोग बार-बार याद न आवे इसलिए भोजन-शृंगारादि की भरपूर सामग्री घर में लाकर रख दी। बहू भी हमेशा अच्छे-अच्छे मिष्ट और तले हुए गरिष्ठ भोजन बना कर खाने लगी। जिससे उसका मन वासना से ग्रसित होने लगा और वह वासना इतनी प्रबल हो गयी कि उसने एक दिन निर्लज्ज होकर सेठजी (ससुर) से कह दिया, पिताजी! अब मुझे अकेलापन अच्छा नहीं लगता (अर्थात् मेरी दूसरी शादी करवा दो, मैं अकेली नहीं रह सकती) सेठजी यह सुनते ही अवाक् रह गये। वे गहन चिन्ता में डूब गये। अब उन्हें खाना-पीना कुछ नहीं रुचने लगा। वे मात्र एक ही बात सोचते कि बहू के मन में ऐसा विचार क्यों आया और इसका निवारण कैसे हो? बहुत विचार करने के पश्चात् उन्हें समझ में आया कि बहू के मन में विकार आने का कारण गरिष्ठ भोजन और शृंगार की अधिकता है। इसका निवारण करने के लिए सेठ ने भोजन के समय बहू से कहा- ''बेटा! आज मेरा उपवास है।'' बहू को एक नियम था कि ''घर में बड़ों को भोजन कराये बिना भोजन नहीं करना''। इसलिए सेठजी के उपवास करने से बहू का उपवास भी निश्चित हो गया। पूरे दिन खाने-पीने वाली बहू ने बड़ी मुश्किल से अपना दिन-रात व्यतीत किया। दूसरे दिन प्रातः

सेठजी से भोजन के लिए कहा तो सेठजी ने कहा-''बेटा! मेरा तो आज भी उपवास है, तुम भोजन कर लो।'' बहू अपने नियम में दृढ़ थी। उसने भी दूसरा उपवास कर लिया, जिससे वह बहुत बेचैन हुई, शृंगार आदि करना भूल गयी। तीसरे दिन पुनः सेठजी ने उपवास किया तो बहू का भी तीसरा उपवास हो गया। अब बहू की इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, उसको कुछ भी (स्नान करना, शृंगार करना, दर्पण देखना, बार-बार वस्त्र बदलना आदि) अच्छा नहीं लगने लगा। क्योंकि यदि पेट में भोजन नहीं होता तो कोई भी कार्य नहीं रुचता है। चौथे दिन बहू ने सेठजी से कहा, ''पिताजी! यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हो तो पारणा कर लीजिये।'' सेठजी ने कहा- ''बेटा सुनो! तीन दिन पहले जो तुमने कहा था कि ''मुझे अकेलापन अच्छा नहीं लगता'' उसकी पूर्ति के लिए मैं कुछ कर लूँ, उसके बाद ही पारणा करूँगा।'' यह सुनते ही बहू को अपनी गलती का अहसास हो आया। वह तत्काल अपने बुरे विचारों की निन्दा करती हुई क्षमा मांगने लगी। उसने प्रतिज्ञा की कि आइन्दा कभी भी ऐसी गल्ती मेरे से नहीं होगी और आज से ही जीवन पर्यन्त के लिए मैं ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हूँ और मैं कभी गरिष्ठ भोजन नहीं करूँगी, सादा भोजन ही करूँगी। शृंगार नहीं करूँगी आदि। उसने उस दिन से शीलवती महिलाओं और आर्यिकाओं के समागम में रहकर अपने जीवन का नव-निर्माण कार्य प्रारम्भ करके कुछ ही वर्षों में आर्यिका बनकर अपने जीवन को कृतार्थ कर लिया।

सारांश-गरिष्ठ भोजन करने से बड़े से बड़ा धर्मात्मा, व्रती-त्यागी, दृढ़ संकल्पी भी अपने शील को दूषित कर लेता है। अतः गरिष्ठ भोजन अर्थात् घी, शक्कर दूध का अतिमात्रा में सेवन अब्रह्म का कारण है।

2. विषयोपभोग सम्बन्धी चिन्तन से :

विषयों को भोगने का विचार करना, पूर्व में मैंने ऐसी स्त्रियों को भोगा था, अथवा भविष्य में मैं ऐसी-ऐसी स्त्रियों को भोगूँगा, ऐसी स्त्री के साथ मैंने भोग किया था। मेरी पत्नी इतनी सुन्दर, रूपवती, गुणवती थी आदि करते रहने से कामवासना जाग्रत होती है।

जो मुनि, तपस्वी, मौनी, व्रती, संवर-स्वरूप तथा जितेन्द्रिय हैं वह भी यदि स्त्री के विषय में विचार मात्र करता है तो वह अपने ब्रह्मचर्य को खण्डित कर संयम को कलंकित कर देता है। जिनके स्त्रियों के संकल्प का लेशमात्र भी मन में हो तो वह मदनज्वर को बढ़ा देता है तो उसकी प्रत्यक्ष निकटता क्या चारित्र रूपी लक्ष्मी को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करेगी ? अवश्य करेगी। जिन पुरुषों ने शास्त्र-अध्ययन,

प्रशम भाव और संयम से अपने मन को स्वस्थ कर लिया है, वे भी स्त्रियों के रूपादि का चिंतन करने मात्र से भ्रष्ट हो गये। बड़े आश्चर्य की बात है कि अनेक प्रकार की तपस्या से जिनका शरीर कृश हो गया था, वन को ही जिन्होंने घर एवं दिशाओं को वस्त्र बनाया था, ऐसे गुरु-आज्ञा को पालने में तत्पर मुनि पुष्पडाल ने अपनी पूर्व विवाहिता स्त्री की चिन्ता तथा विचार मात्र से बारह वर्ष की मुनिदीक्षा निष्फल कर दी और वे मोक्षमार्ग को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाये। इसी प्रकार भावदेव भी अपनी स्त्री के स्मरण करने से अपने मन को ध्यान में स्थिर नहीं कर पाये। उनकी कथा शास्त्रों में इस प्रकार आती है-

❋ सती नागला की सीख :

सेठानी रेवती के भवदेव एवं भावदेव नामक दो पुत्र थे। भवदेव ने बालपने में ही अपने पिता के साथ दीक्षा धारण कर ली। कुछ वर्षों के पश्चात् पिता की समाधि हो जाने पर भवदेव मुनिराज विहार करते हुए अपनी देह की जन्मभूमि की तरफ आये। उन्हीं दिनों वहाँ भावदेव के विवाह का कार्यक्रम चल रहा था। भावदेव नागला नामक धर्मनिष्ठ कन्या के साथ विवाह करके लौट रहा था। रास्ते में उन्हें अपने भाई मुनि भवदेव के दर्शन हुए और उनके उद्बोधन से भावदेव को संसार से विरक्ति आ गई, परन्तु वह अपने मन में सोचने लगा इसने मेरे साथ विवाह किया और अपने माता-पिता को छोड़कर मेरे साथ यहाँ आयी, अगर में दीक्षा लूँगा तो इसका निर्वाह कैसे होगा? यह अपने मन में क्या सोचेगी, ऐसा विचार कर वह अपनी नवविवाहिता पत्नी के मोह में मोहित हो रागवश दीक्षा लेने से पीछे हट रहा था तब नवविवाहिता नागला ने अपने पति के मन की बात भाँप ली और दीक्षा लेने की भावना देखकर बोली- ''आप यदि अपने कल्याण पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं तो मैं आपके पथ में कंटक नहीं बनूँगी। मेरी ओर से दीक्षा लेने की सहर्ष स्वीकृति है।'' यह सुनकर भावदेव ने मुनिदीक्षा ले ली। मुनि बनने के पश्चात् भी उसका मन बार-बार नागला की चिन्ता में व्यग्र रहने लगा। उसने मुनि अवस्था के बारह वर्ष इसी प्रकार पत्नी की चिन्ता में बिता दिये। एक दिन मुनि भावदेव अपने गुरु भवदेव से अपनी जन्मभूमि की ओर विहार की आज्ञा लेकर विहार करते हुए और अपने मन में नागला के साथ गृहस्थी बसाने का विचार करते हुए अपनी जन्मभूमि के बाहर स्थित बगीचे में आये। वहाँ जिन चैत्यालय में गये जहाँ धर्मगोष्ठी करने वाली अनेक महिलाओं को देखा जो परस्पर धर्मचर्चा कर रही थीं। उन्होंने एक स्त्री (नागला) से नागला नामक स्त्री के बारे में पूछा तो नागला समझ गयी कि वे पूर्व में (मुनि बनने के पहले) मेरे पति थे और

इनको दीक्षा लेने के बाद भी मेरी चिन्ता अभी तक सता रही है। इसलिए में इनका निश्चित रूप से धर्म में स्थितिकरण करूँगी। इसी विचार से अनेक युक्तियों से स्वयं नागला ने मुनि भावदेव को समझाया और उनका स्थितिकरण किया। जिससे वे पुनः वन में गुरु के निकट जाकर प्रायश्चित लेकर आत्मकल्याण में संलग्न हो गये। अतः वासना से अपने चित्त को बचाने के लिए कभी स्त्री को पुरुष एवं पुरुष को स्त्री सम्बन्धी विषयभोगों का चिन्तन नहीं करना चाहिए।

स्वदारसन्तोष व्रतधारी को भी अपनी विवाहिता पत्नी को छोड़कर अन्य का चिन्तन कभी नहीं करना चाहिए तथा अपनी पत्नी या अपने पति के साथ भोगे गये भोगों का असमय में या पर्व आदि दिनों में तथा जिस दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है, उन दिनों में भी विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि भोगों की स्मृतियाँ एवं अनागत भोगों को भोगने का विचार भी वासना को उत्पन्न करने वाला होता है।

3. कुशील स्त्री-पुरुषों की संगति :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बीच रहते हुए उसे दुराचारी या सदाचारी, व्यसनी या साधु आदि अनेक प्रकार के व्यक्तियों का सम्पर्क मिलता है। यौवन के चौराहे पर स्थित व्यक्ति को दुराचारी व्यसनों में फँसे व्यक्ति से सावधान रहना अति आवश्यक है क्योंकि एक बार दुराचारी की संगति में पड़ (लग) जाने पर उसका जीवन पग-पग पर पतन की ओर बढ़ता है और भविष्य अंधकारमय बन जाता है। किसी कवि ने कहा है-

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसी ही फल लीन॥

अर्थ- स्वाति नक्षत्र के जल की बूँद यदि केले के पत्ते पर गिरती है तो कर्पूर रूप से, सीप के मुँह में गिरती है तो मुक्ता रूप से एवं भुजंग (साँप) के मुँह में गिरती है तो विष रूप में परिणमित हो जाती है, उसी प्रकार व्यक्ति जैसे लोगों की संगति में बैठता है, उसका वैसा ही आचरण बन जाता है। अतः ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के लिए व्यसनी पुरुषों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए। बहुत काल का दृढ़व्रती पुरुष भी परस्त्रीगामी अथवा वेश्यागामी व्यभिचारी पुरुषों का संयोग पाकर अपने व्रत को दूषित या नष्ट कर लेता है, जैसे अत्यन्त शीतल मिष्ट, तृषानाशक एवं प्राणदाता जल भी अग्नि का संयोग पाकर उष्ण रूप से परिणमित हो दाहक बन जाता है। चारुदत्त सदाचारी, शास्त्राभ्यासी, माता-पिता का आज्ञाकारी, मंदकषायी एवं अपने पिता का श्रेष्ठ पुत्र लेकिन वह वेश्या की संगति में पड़कर

अपने माता- पिता का सन्ताप देने वाला एवं सम्पूर्ण धन को नष्ट कर अपने जीवन को पतित करने वाला हो गया। उसकी कथा-

❋ शास्त्रज्ञ भी दिग्भ्रान्त (चारुदत्त) :

चम्पापुरी के प्रसिद्ध सेठ भानुदत्त की सेठानी सुभद्रा के चारुदत्त नामक इकलौता पुत्र था। चारुदत्त बचपन से ही मन लगाकर अध्ययन करता था। शास्त्र के अध्ययन, मनन, चिन्तन से वह अल्पायु में ही अनेक शास्त्रों में पारंगत हो गया और वह संसार, शरीर और भोगों से इतना विरक्त हो गया कि विवाह करने को मात्र जीवन की बर्बादी और बंधन ही मानने लगा। परन्तु माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर उसने अपने मामा की लड़की गुणवती नामक कन्या के साथ विवाह कर लिया लेकिन विवाह के बाद भी वह पत्नी से इतना विरक्त रहा कि यौवनवती, रूप-लावण्य और प्रेम की मूर्ति, अनेक गुणों से सम्पन्न गुणवती उसको अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पायी। वह इतना उदासीन था कि वह (गुणवती) उसके पास घण्टों बैठी रहती तो भी वह उससे बात करना तो दूर रहा, आँख उठाकर भी नहीं देखता था। पुत्र की इतनी विरक्तता देख माँ हर क्षण चिन्तित रहती थी। एक दिन सुभद्रा अपने देवर (चारुदत्त के चाचा) रुद्रदत्त को बुलाकर चारुदत्त की पूरी स्थिति बता दी। रुद्रदत्त और सेठानी सुभद्रा दोनों ने मिलकर एक युक्ति सोची कि यदि इसे भोगियों (कामी) की संगति में डाल दिया जाये तो अवश्य ही अपने कार्य की सिद्धि हो सकती है। षड्यन्त्र के अनुसार एक दिन रुद्रदत्त चारुदत्त को साथ लेकर बाजार में गया और वहाँ (षड्यन्त्र के अनुसार) हाथी को सामने आता देख डर कर रुद्रदत्त चारुदत्त के साथ एक वेश्या के घर में प्रवेश कर गया। वहाँ चारुदत्त ने अपना समय व्यतीत करने के लिए वेश्यापुत्री बसन्ततिलका के साथ जुआ खेलना प्रारम्भ किया एवं जुआ खेलते-खेलते वह बसन्ततिलका के साथ वहीं रहने लगा और घर से धन मंगवा कर वेश्या के साथ नाना प्रकार की क्रियायें (भोगोपभोग) करने लगा। उसने अपने घर से सोलह करोड़ दीनार की सम्पत्ति मंगवा ली। एक दिन पिता ने उसे घर बुलाने के लिए स्वयं के बीमार होने के समाचार भिजवाये। बीमारी का समाचार सुनकर भी वह घर नहीं आया। पिता के द्वारा किये गये और भी अनेक प्रयासों के बाद भी वह घर नहीं आया तो अन्त में अपने कार्य की सिद्धि के लिए सेठ भानुदत्त (चारुदत्त के पिता) ने अपने मरने के समाचार भिजवा दिये, लेकिन वेश्या में आसक्त चारुदत्त घर नहीं आया। अन्त में घर का पैसा समाप्त हो जाने के कारण बसन्ततिलका वेश्या की माँ ने चारुदत्त से प्रेम तोड़ने के लिए बसन्ततिलका से

कहा-लेकिन बसन्ततिलका ने उसके साथ प्रेम तोड़ने के लिए साफ-साफ मना कर दिया जिससे क्रोधित हो बसन्ततिलका की माँ बसन्तसेना ने चारुदत्त को भोजन में मूर्च्छित होने का द्रव्य खिलाकर मूर्च्छित कर दिया और रात्रि में उसे (चारुदत्त) एक कपड़े में बाँधकर एक गठरी बनाकर शौचालय में डाल दिया। क हने का भाव यही है कि चारुदत्त एक सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति होकर भी कुछ क्षण वेश्या के संसर्ग से मोहित हो अपने माता-पिता तक को भूल गया और बसन्ततिलका एक वेश्या की पुत्री होकर भी चारुदत्त जैसे धर्मात्मा का संयोग (संगति) पाकर एक पतिव्रता बनकर स्वदारसन्तोष व्रत का पालन करने वाली बन गयी। अतः हर व्यक्ति को अपने जीवन का उत्थान तथा अपने स्वदारसन्तोष व्रत या ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करने के लिए निरन्तर कुशील, दुराचारी व्यक्तियों की संगति छोड़नी चाहिए और शीलवान, सदाचारी धर्मात्माओं की संगति करनी चाहिए। महिला वर्ग को भी इसी प्रकार दुराचारिणी, व्यभिचारिणी, कुटिल महिलाओं की संगति छोड़कर सदाचारिणी, आर्य महिलाओं की संगति करके भारत के इतिहास को अजर-अमर बनाने में सहयोग करना चाहिए।

4. वेद नामक कर्म की उदीरणा होने से :

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों में से चौथा कर्म मोहनीय है। उसकी अट्ठाइस उत्तर प्रकृतियाँ उदय के योग्य हैं। उनमें दर्शनमोहनीय की तीन एवं चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ हैं। चारित्रमोह की पच्चीस प्रकृतियों में से सोलह कषायें तो अपने सम्यक्त्वादि, आत्मा के गुणों का घात करती हैं। लेकिन हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद कषायों को सहायता देती हैं। इन नौ कषायों में तीन वेदों में से किसी एक वेद के तीव्र उदय से या उदीरणा से मैथुन संज्ञा होती है। कामोत्पादक गरिष्ठ व स्वादिष्ट भोजन करने से, पूर्व में भोगे हुए विषयों को याद करने से, कुशील सेवन करने से, विट पुरुषों की संगति करने से, कुशील काव्य व कथादि सुनने से, कुशील नाटक (सिनेमा, टेलीविजन और चित्रादि देखने से) आदि कारणों से भी वेदकर्म की उदीरणा होती है और भी अनेक कारण ऐसे हैं जिनके मिलने पर वेदकर्म की उदीरणा सहज हो जाती है, जैसे पेट भरा भी हो तो अपना इष्ट भोजन देखकर सहज में भूख लग जाती है। वेद नामक कर्म की उदीरणा के कारणों में से कुछ कारण निम्नलिखित हैं-

1. स्त्री के चित्रादि को देखने से।
2. स्त्री के अंगों को स्पर्श करने से।
3. मधुर गान सुनने से।

4. एकान्त में स्त्री का सम्पर्क करने से।
5. स्त्री के अंगोपांग देखने से।

❋ स्त्री के चित्रादि को देखने से :

पुस्त (मिट्टी, दारू, चर्म, लौह और रत्न से निर्मित) पाषाण, काष्ठ, चित्र आदि से भी रची हुई स्त्रियों की आकृति को देखकर प्राणी मोह को प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर साक्षात् स्त्री को देखकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो मोहित नहीं होगा ? देवी, मानुषी और तिर्यंचनी इन चेतन स्त्रियों के देखने से तथा काष्ठनिर्मित, वस्त्रनिर्मित, पुत्तलिका आदि मिट्टी से निर्मित, लयनकर्म भित्ति से निर्मित, कैंची आदि से वस्त्र आदि को कतरकर निर्मित, गजदन्त पर उकेर कर निर्मित, देवी आदि के अचेतन रूपादिक को देखना वेदकर्म की उदीरणा का कारण होता है। देखो-जो त्रिखण्ड के अधिपति थे, सम्पूर्ण शत्रुसेना को पराजित करने में समर्थ थे, ऐसे पराक्रमी कृष्ण भी रुक्मिणी के चित्र मात्र को देखकर कामासक्त हो गये और उसकी प्राप्ति के लिए हरण जैसा तुच्छ कार्य किया अर्थात् रुक्मिणी को हरण करके ले आये तथा उसकी प्राप्ति में विघ्न डालने वाला राजा शिशुपाल के साथ युद्ध करके सैंकड़ों जीवों (प्राणियों) का संहार किया। इसी प्रकार जो राजगृही नगरी के महापराक्रमी नीतिज्ञ राजा थे, जिन्हें भगवान् महावीर के समवसरण में प्रमुख श्रोता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि एवं भावी तीर्थंकर होने वाले थे, ऐसे श्रेणिक महाराज भी चेलना के चित्र को देखकर सम्पूर्ण राज्य का काम-काज भूल गये। उसकी प्राप्ति के लिए (श्रेणिक-पुत्र) अभयकुमार ने जैनधर्म पालन करने का ढ़ोंग किया और मायाचारी से छलकर चेलना का हरण कर लाये। इसी के विषय में एक उदाहरण जिनदत्त का भी आता है।

❋ अचेतन रूप से भ्रमित जिनदत्त :

सेठ जीवदेव के पुत्र जिनदत्त थे जो जिनभक्त, धर्मात्मा, पुण्यवान तथा तेजस्वी थे, जिन्हें अपनी चढ़ती हुई यौवन अवस्था में भी कामवासना ने नहीं घेरा था, वे अनेक सुन्दर से सुन्दर रूपवती कन्याओं को देखकर भी कामासक्त नहीं हुए थे तथा माता-पिता, मित्र-बंधु आदि के अनेक प्रकार से समझाने के बाद भी किसी प्रकार किसी भी कन्या के साथ विवाह करने के लिये तैयार नहीं हुए। वे ही जिनदत्त एक दिन कोटिकूट चैत्यालय में दर्शन-पूजन-भक्ति के लिये गये थे। वहाँ मन्दिर के बाहर दरवाजे की सीढ़ियों पर बनी एक पुत्तलिका (पाषाण में उकेरी हुई कन्या) को देखकर कामबाण से बद्ध हो गये। उनके दर्शन-पूजन आदि के

पवित्र भाव तत्काल उसी प्रकार विलीन हो गये, जिस प्रकार वायु के निमित्त से बादल विलीन हो जाते हैं। वे कामरूपी अग्नि की दाह से संतप्त हुए जब पुत्तलिका रूपी चंद्रमा की शीतल किरणों की छाया में रहकर कामदाह को शान्त करने का प्रयास करने लगे और उसी के विषय में बार-बार चिन्तन करते हुए अपने जिनेन्द्रदेव की भक्ति के शुभ उद्देश्य को भूल गये। (इसकी विस्तृत कथा के लिए जिनदत्त का चरित्र पढ़ना चाहिए)

तात्पर्य यह है कि जिनदत्त मात्र अचेतन पाषाण से बनी कन्या में आसक्त होकर जिनेन्द्रभक्ति को भूल गया तो जो निरन्तर टी.वी. पर अश्लील पिक्चर एवं चित्रहार के चित्रों, हीरो-हीरोइन की फोटो आदि को देखते हैं, क्या वे ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट नहीं होंगे? अतः स्त्रियाँ पुरुषों के चित्रादि को तथा पुरुष स्त्रियों के चित्रादि को नहीं देखें।

❋ स्त्री के अंगों के स्पर्श से :

पुरुषों के द्वारा स्त्री के शरीर के स्पर्श से अथवा स्त्रियों के द्वारा पुरुषों के शरीर के स्पर्श से भी वासना उत्पन्न होती है। क्योंकि एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि नारीवेद (शरीर) के पुद्गलों का स्पर्श पुरुष में तथा पुरुषवेद (शरीर) के पुद्गलों का स्पर्श नारी में काम-विकार उत्पन्न करता है। इसको ध्यान में रखकर जिस स्थान पर नारी बैठ चुकी हो, वहाँ एक मुहूर्त तक व्रती या ब्रह्मचारी को नहीं बैठना चाहिए।

विनोबा जी लिखते हैं- ''पुरुष-पुरुष के बीच में भी शारीरिक सम्बन्ध होना गलत है। परिचय तो मानसिक होना चाहिए, शारीरिक परिचय तो सेवा के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही होना चाहिए। शारीरिक परिचय की जो एक सामान्य मर्यादा है वह स्त्री एवं पुरुष में ही नहीं होना चाहिए बल्कि पुरुष-पुरुष और स्त्री-स्त्री के बीच में भी वही मर्यादा अवश्य होना चाहिए।''

❋ विरक्त भी स्पर्श से आसक्त :

श्रीमान् दयाचरण ने बहुत समझाने के बाद भी शादी के बंधन को स्वीकार नहीं किया। फिर भी माता-पिता ने जबरन करुणा नाम की एक भोली-भाली युवती के साथ उसका विवाह करवा दिया। लेकिन दयाचरण के मन में कामवासना का भाव नहीं था। उसने एक दिन भी करुणा को पत्नी की दृष्टि से नहीं देखा। एक बार पिता के बहुत मना करने के बाद भी उसने विलायत में पढ़ने की स्वीकृति ले ही ली और विलायत पहुँचने पर भी वह कभी किसी स्त्री से बात

करना तो दूर किसी स्त्री के सामने तक भी नहीं देखता था। हमेशा नीची दृष्टि ही रखता था। उसकी इस चर्या से उसकी मालकिन बहुत प्रसन्न रहती थी। एक दिन एक युवती ने आकर कहा-''आज आपके मित्र नदी के उस पार बर्फ देखने जा रहे हैं, आपको भी निमंत्रित किया है, आप अवश्य आइयेगा।'' दयाचरण व्यवहारिकता के नाते बर्फ देखने चला गया। नदी के घाट पर बहुत भीड़ थी। उन्होंने (सब मित्रों ने) वहाँ एक नौका ली और उसमें एक-एक करके सब बैठ गये। अन्त में युवती ने कहा-''दयाचरणजी! जरा मेरा हाथ पकड़कर मुझे नौका पर चढ़ा दीजियेगा।'' दयाचरण ने हाथ पकड़कर उसे नौका पर चढ़ा दिया। नदी के उस पार भ्रमण (घूम) करके लौटते समय भी युवती दयाचरण से अपना हाथ पकड़वा कर ही नौका से उतरी। इस बार जैसे ही दयाचरण ने युवती का हाथ पकड़ा वैसे ही उसके शरीर में कम्पन सा दौड़ गया, घर आकर वह युवती के लिए तड़फने लगा, उसे कामज्वर आ गया। उसने युवती के साथ बिना कुछ विचारे भावुकता में आकर विवाह कर लिया। अब पिता के यहाँ से आने वाला पैसा कम पड़ने लगा। क्योंकि पैसा एक के खर्च के हिसाब से आता था और अब खर्चा दो व्यक्तियों का हो गया था। एक दिन दयाचरण ने भारतीय संस्कृति के अनुसार युवती को भोजन बनाने को कहा, तब युवती ने उसे निर्धन जान पूरे नगर, ऑफिस, पड़ोस आदि में यह हल्ला कर दिया कि दयाचरण नपुंसक है, पुरुषत्व के अयोग्य है। अतः मैं इसे तलाक देती हूँ। युवती के गर्भ में बच्चा था। उसको भी गर्भ में ही काल के गाल में सुला दिया। रात्रि में सोते हुए उसे (दयाचरण को) यह आवाज आयी कि ''मैं तुम्हारा पुत्र हूँ'' मैं सैकड़ों खण्ड-खण्ड करके फेंका गया हूँ। यह सुनकर वह डर गया और अपने घर लौट आया। घर आने के पश्चात् भी वह अपनी पत्नी (करुणा) को सामने नहीं देखता था। एक दिन करुणा ने उससे कहा कि आप विलायत की बातें सभी को सुनाते हैं थोड़ी हमें भी सुना दिया करो। इस प्रकार के मधुर वचन सुन, उसके रूप को देखकर तथा उसके कोमल स्पर्श से वह विषयासक्त हो गया। इससे सिद्ध है कि स्पर्श से भी कामवासना उत्पन्न होती है।

सारांश- दयाचरण स्त्री के स्पर्शमात्र से आसक्त हो गया तो आज जो स्त्रियाँ स्कूटर, मोटरसाईकिल, गाड़ी आदि पर अपने देवर, भाई, पिताजी आदि के साथ में सटकर (पास में ही) बैठती हैं, देवर व पति के मित्रों आदि से हाथ मिलाती हैं, एक ही सोफा, चटाई, पलंग आदि पर बैठती हैं, होली आदि त्यौहारों

पर एक दूसरे के मुँह पर रंग-गुलाल आदि लगाती हैं, पानी डालती हैं, एक थाली में (साली-जीजाजी आदि) भोजन करती हैं तो क्या उनका स्वदारसंतोष व्रत निर्दोष पल सकता है ? क्या ऐसा करते हुए उनका ब्रह्मचर्य व्रत सुरक्षित रह सकता है? इसी प्रकार पुरुषों का भी स्त्रियों के साथ पूर्वोक्त कार्यों को करने से शील नष्ट होता है। अतः स्त्री एवं पुरुष दोनों को एक-दूसरे के स्पर्श से बचने का पूर्णतः प्रयास करना चाहिए।

❋ मधुर गान सुनने से :

स्त्री के मधुर गान को सुन पुरुष उसमें आसक्त हो जाता है और पुरुष के मधुर वचन को सुनकर स्त्रियाँ उसमें आसक्त हो जाती हैं। वे उसके गान, मधुर वचन को सुनकर सब कुछ भूल जाते हैं। स्त्रियाँ अपने रूपवान, कुलवान, सम्राट जैसे पति को छोड़कर काने-कुबड़े, कुरूप, दरिद्री व्यक्ति से प्रेम करने लग जाती हैं। पर-पुरुष में आसक्त हुई मूर्ख स्त्रियाँ अपने प्राणप्रिय पति तक को मार डालती हैं। वे अपने पति के उपकार, गुण, स्नेह, सत्कार, सुख, लालन-पालन, मिष्ट वचनों को कुछ भी नहीं गिनती हैं। उसे यदि भोजन न मिले तो कोई चिन्ता नहीं रहती, लेकिन मधुर स्वरों को सुनने की एवं मधुर स्वर गाने वाले के संयोग को प्राप्त करने की चिन्ता हर समय लगी रहती है। महारानी अमृतमती ने इसी प्रकार का कार्य किया था। उसने पर-पुरुष में आसक्त हो अपने पति को मार्ग का काँटा समझकर उसे गला घोंटकर मार दिया था।

❋ प्राणप्यारी भी प्राणप्यासी :

यशोधर महाराज की महारानी अमृतमती अपने पति की प्राणप्यारी थी। विशाल साम्राज्य की स्वामिनी थी। यशोधर महाराज उसके प्रेम में पागल थे। वह सदैव सैंकड़ों दासियों से घिरी (सुरक्षित) रहती थीं। फिर भी वह एक दिन महावत द्वारा गाये गये गीत के मधुर स्वर को सुनकर उस पर आसक्त हो गई। जिस महावत के आठों अंग विकृत थे, जो हाथियों के खाने से बची घास के बिछौने पर सोता था, अन्य महावतों की जूठन का भोजन करता था, रस्सी से बना जिसका तकिया था, जिसके मुँह पर काँटों के समान केश (बाल) थे। हाथियों के मालिश को पोंछने वाले कपड़ों की लंगोट थी, कान जीर्ण चर्म के जूतों के समान थे, ललाट बन्दर के फैले हाथ के समान था, भाल वृक्ष के कोटर के समान था और अधजले वृक्ष के समान शरीर था। उस 'अष्टावक्र' नाम के महावत के पास वह (अमृतमती) उसके मधुर स्वर से आसक्त हुई रात्रि में जाती थी और जिस दिन

पहुँचने में कुछ देर हो जाती तब अष्टावक्र एक हाथ से उसके (अमृतमती के) केशों को पकड़कर खींचता हुआ दूसरे हाथ से हाथी के अंकुश की निष्ठुरतापूर्वक मार लगाता था। उससे बचने के लिये वह हाथ जोड़कर दीन शब्दों में प्रार्थना करती थी -

''हे प्राणनाथ! हे प्रभो! मैं क्या करूँ? मेरा भाग्य ही ऐसा खराब था जिससे मेरा विवाह आपके साथ न होकर उस निकम्मे राजा के साथ हो गया। हे नाथ! मुझे क्षमा कर दो। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है क्योंकि जब तक राजा सो नहीं जाता तब तक मैं वहीं आपके गुणों का स्मरण करती हुई आपके पास आने के लिए तड़फती रहती हूँ।'' मूर्ख अमृतमती यौवनयुक्त, ऐश्वर्यशाली, दानवीर, जितेन्द्रिय, कुचेष्टा से रहित, कर्त्तव्यपालन में तत्पर, पापाचार से दूर रहने वाले सम्राट के समान यशोधर महाराज को छोड़कर एक नीच कुलोत्पन्न पापी महावत पर आसक्त हुई थी। अपने कार्य में राजा यशोधर को कंटक के समान बाधक जान उसे मारने के षड्यंत्र से यशोधर और यशोधर की माँ को भोजन के लिए निमंत्रित करके विषाक्त भोजन कराया, जिससे माँ और पुत्र दोनों को विष चढ़ गया। तत्काल वैद्यों को बुलाया गया लेकिन उनके (वैद्यों के) आने के पहले ही अमृतमती छल से ''स्वामी को दृष्टि विष उत्पन्न हुआ है'' इस प्रकार कहती हुई सभी लोगों को वहाँ से दूर कर बाल बिखेरकर हाय नाथ! हाय नाथ! ऐसा करुण क्रन्दन करती हुई यशोधर महाराज के वक्षस्थल पर गिर पड़ी और गला दवाकर उन्हें मार डाला तथा अष्टावक्र महावत के साथ स्वच्छन्दता पूर्वक भोग करने लगी। अन्त में गलित कुष्ठ रोग से ग्रसित हो मरकर नरक में गई। इस प्रकार अमृतमती ने अपने शील रूपी अमृत को उगलकर नीच महावत के मधुर स्वरों से मोहित हो विषयरूपी विष का सेवन करके नारी जगत् को कलंकित किया।

❋ रानी रक्ता का छल :

अयोध्या नगरी में देवरति नामक राजा राज्य करता था। उसे रक्ता नाम की रानी अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। उसके अत्यधिक प्रेम के कारण वह राजकार्य छोड़कर अन्तःपुर में रहने लगा। जिससे मंत्रियों ने उसे राज्य से च्युत कर दिया। राजा रानी को लेकर अन्यत्र चला गया। वहाँ किसी पंगु के मधुरगान को सुनकर रानी रक्ता उस पर आसक्त हो गयी और अपने पति देवरति राजा को किसी बहाने से नदी में गिराकर खुद उस पंगु के साथ रहने लगी। वह पंगु को एक टोकरी में रखकर अपने मस्तक पर लेकर जगह-जगह भ्रमण करती थी। पंगु

मधुरगान सुनाता जिससे दोनों की आजीविका चलती थी। इधर राजा नदी के प्रवाह से किसी तरह निकल आया और पुण्योदय से मंगलपुरी का राजा बन गया। इधर-उधर घूमती हुई रक्ता वहाँ भी पहुँच गयी। राजा ने उसे पहचान लिया और स्त्री चरित्र से विरक्त होकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

सारांश- अमृतमती की कथा पढ़कर उन्हें सावधान होना चाहिए जो नित्य वेषभूषा से सुसज्जित कलाकारों के हाव-भाव सहित गाये गये गानों, मधुर स्वरों से युक्त गीतों को सुनते हैं। अमृतमती तो परोक्ष में मधुर गान सुनकर भी अपने मन को वश में रखने में आशक्त हो गयी तो साक्षात् हाव-भाव सहित कलाकारों के गाने को सुनकर कौन अपने शील की रक्षा कर सकता है? कायिक चेष्टा से भले ही उनका शील भंग न हो तो भी वचन और मन से तो नियम से शील-भंग हो ही जाता है। अतः स्वदारसन्तोषी एवं ब्रह्मचारी भाई-बहिनों से कहना है कि वे अपने मन को बहलाने के लिए भी (स्त्री-पुरुष एवं पुरुष-स्त्री के) मधुर गाने आदि को न सुनें एवं अपने शीलरत्न की रक्षा करें।

❋ एकान्त में स्त्री सम्पर्क से :

एकान्त में स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने, उनके यहाँ बार-बार आने-जाने तथा व्यापारादि सम्बन्ध रखने से ब्रह्मचर्य व्रत में दूषण उत्पन्न होता है। साधारण मनुष्यों की तो बात दूर रहे, मुनिराज तक को आचार्यों ने आर्यिकाओं के साथ उठने-बैठने, एकान्त में वार्तालाप करने, आर्यिकाओं की वसतिका में प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, आहार आदि कार्यों को करने का निषेध किया है। यहाँ तक कहा है कि-आर्यिका को यदि आचार्य के पास अपने दोषों की आलोचना, प्रायश्चित्त भी करना हो तो भी वह आचार्य के पास अकेली न जावे और आचार्य भी अकेली आर्यिका को प्रायश्चित्त आदि न देवें। मूलाचार में भी इस प्रकार कथन आया है कि हे साधो! तुम प्रमाद छोड़कर आर्यिका सहवास छोड़ो क्योंकि आर्यिकाओं का सहवास चित्त में संताप करने वाला होने से अग्नि के तुल्य है तथा संयमरूपी जीवन का हरण करने में विष के समान है। आर्यिका का अनुसरण करने वाला मुनि निश्चय से अपकीर्ति का धारक होता है। अतः मुनियों को आर्यिकाओं से संबंध छोड़ना ही श्रेयस्कर है। चाहे मुनि वृद्ध, तपस्वी, बहुश्रुतज्ञ एवं लोकमान्य हो तो भी यदि आर्यिका के साथ निवास (साथ) करते (रहते) हैं तो शीघ्र ही लोकापवाद के भागी होंगे तथा निन्दा के पात्र होंगे फिर जो युवा हैं, जिसे श्रुत का अभ्यास नहीं है, जिसके हिताहित का विचार प्रायः नष्ट हो गया है, जो उत्कृष्ट

चारित्र का धारक नहीं है ऐसे साधु क्या आर्यिका के संसर्ग से निन्दा को प्राप्त नहीं होंगे ? अपितु अवश्य होंगे ही।

आचार्यों ने मात्र जो युवा हों, रूपवती हों, सर्वगुणसम्पन्न हों, उनके साथ ही बात करने, उठने-बैठने का निषेध किया हो, ऐसा नहीं है अपितु जो अस्सी वर्ष की वयोवृद्धा हैं, जिसके शरीर में कुष्ठ रोग से अत्यन्त दुर्गन्धित पानी (मवाद) बह रहा हो, जो आँखों से अंधी हो, जिसकी नाक कटी हुई हो, जो कानों से बहरी हो, जिसके मुँह से लार टपक रही हो, हाथ-पैर अपंग हों, जिसकी पीठ में कूबड़ निकल गई हो, ऐसी स्त्री से भी बात करना तो दूर अपितु एक क्षण भी उसे देखने और वहाँ न ठहरने का आदेश दिया है।

आर्यिका और मुनि, जो भोगों से पूर्ण विरक्त है, निरन्तर आत्मकल्याण के कार्यों में लगे रहते हैं। उनके लिए भी कहा है कि-आर्यिकायें मुनिराज को सात हाथ दूर से, उपाध्याय को छह हाथ दूर से तथा आचार्य को (प्रायश्चित्त आदि लेना होता है इसलिए) पाँच हाथ दूर से नमस्कार करें तथा प्रश्न, शंका-समाधान आदि करें। फिर गृहस्थ तो भोगी है, हर समय भोग सामग्री के बीच रहता है, उसी की बातें करता है। उसे (परस्त्री या परपुरुष के साथ) कितने विवेक से रहना चाहिए, इसका विचार वह स्वयं करे।

एकान्त में स्त्री-पुरुष का संयोग मिलने पर स्त्री रूपी अग्नि के निमित्त से पुरुष रूपी घृत शीघ्र ही पिघल जाता है। मुनिराज सात्यकी बहुत तपस्वी ज्ञानी महात्मा थे फिर भी एकान्त में ज्येष्ठा नामक आर्यिका पर एक बार दृष्टि पड़ने मात्र से भ्रष्ट हो गये।

❋ अचल भी चलित हुए :

राजा सात्यकी ने संसार से विरक्त हो राज्य का परित्याग कर समाधिगुप्त मुनिराज के समीप दीक्षा ले ली। तीन गुप्तियों से युक्त होकर तीव्र तपश्चरण करते हुए सात्यकी मुनि एक बार उत्तर गोकीर्ण पर्वत को छोड़कर राजगृह नगर के समीप उच्चग्रीव पर्वत पर स्थित हुए। एक दिन उनके गुणों में अनुराग रखने वाली अनेक आर्यिकाएँ उनकी वन्दना के लिए आयीं। वन्दना करके ज्यों ही वे पर्वत से उतरने लगी त्यों ही (वैसे ही) बहुत भारी मेघवृष्टि होने लगी। सभी आर्यिकाओं के वस्त्र भीग गये हैं, उसी समय भयंकर आंधी-तूफान के कारण सभी आर्यिकायें बिछुड़ गई। उनमें से एक 'ज्येष्ठा' नाम की आर्यिका अपनी सुरक्षा हेतु एक गुफा में प्रवेश कर गई, गुफा में अंधकार होने के कारण कुछ भी दिखाई नहीं दिया, वहाँ

वह गुफा को शून्य देख अपनी साड़ी निचोड़ने का कार्य करने लगीं, उसी समय बिजली चमकी और बिजली के प्रकाश में गुफा स्थित सात्यकी मुनि की दृष्टि उस पर पड़ी। आर्यिका को देखते ही मुनि के मन में कामवासना उत्पन्न हो गयी, जिससे उन्होंने उसका उपभोग कर लिया। मुनि तो आलोचना, निन्दा-गर्हा-प्रायश्चित्त करके धर्म में स्थिर हो गये, परन्तु आर्यिका गर्भवती हो गई जब शान्ता नाम की प्रधान को पता चला तो उसने उसे चेलना को सौंप दिया। वहाँ नौ माह बाद उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम स्वयंभू रखा गया जो अन्तिम रुद्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ज्येष्ठा अपने प्रसव का काल पूरा होने पर निःशल्य होकर अपनी गणिनी आर्यिका के पास जाकर आलोचना पूर्वक प्रायश्चित्त ग्रहण कर पुनः संयम का परिपालन करने लगी।

सारांश-अहो! तीन गुप्ति का परिपालन करने वाले मुनिराज जो पर्वत के समान निश्चल, समुद्र के समान गम्भीर तथा स्थिरचित्त थे, ऐसे महाव्रतधारी सात्यकी मुनि भी बिजली के क्षणिक प्रकाश में आर्यिका को देखकर तथा क्षण भर के लिए एकान्त में सम्पर्क प्राप्त कर अपने संयम रूपी रत्नशिखर से च्युत हो गये तो साधारण व्यक्ति की क्या बात है? अतः किसी भी महिला-पुरुष को किसी अन्य पुरुष-महिला के साथ एकान्त में वार्तालाप, उठना-बैठना आदि नहीं करना चाहिए। यदि विशेष परिस्थिति में (अति आवश्यकता) व्यवहारिकता के नाते कुछ चर्चा करनी हो तो मेनगेट के पास वाले कमरे में अर्थात् जहाँ पर रास्ते में आने-जाने वाले लोग दिखते हों वहाँ सावधानीपूर्वक अत्यन्त संक्षेप में चर्चा करनी चाहिए। अपनी सन्तान को भी एकान्त में चर्चा के दूषण बताकर सावधान रखना चाहिए।

❋ स्त्री के अंगोपांग देखने से :

संसार में अनेक प्रकार की वस्तुएँ हैं, कुछ सुन्दर कुछ असुन्दर। यद्यपि वस्तुस्वरूप की दृष्टि से देखा जाये तो ये सब पुद्गल की विभाव व्यंजन पर्यायें हैं अथवा रूप पुद्गल द्रव्य का गुण विशेष है। आज भोगविलासी जीव पौद्गलिक रूप पर आकर्षित होकर अपने जीवन को पतन के मार्ग में ढ़केल रहे हैं, इसलिए आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के सातवे अध्याय के सातवे सूत्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा और निर्मलता के लिए स्त्री के अंगोपांग के निरीक्षण का भी निषेध किया है, क्योंकि स्त्री के अंगोपांग को क्षण मात्र भी देखने से वासना जागृत हो जाती है। वैसे तो स्त्री के सभी अंगोपांग वासना उत्पन्न करने वाले हैं, उनमें भी उसके कुछ

अंगोपांग विशेष रूप से वासना उत्पन्न करते हैं। अतः जो बुद्धिमान, शीलवान होते हैं, वे परस्त्री या स्त्री मात्र पर कभी दृष्टि नहीं डालते हैं।

जिस समय सीता को रावण हरण करके ले गया और राम-लक्ष्मण सीता की खोज कर रहे थे तब सीता के हार, कंगन आदि आभूषणों को लक्ष्मण नहीं पहचान पाये थे क्योंकि चौदह वर्ष तक एक साथ वन में रहने पर भी लक्ष्मण ने सीता के मुँह, हाथ, गले आदि को नहीं देखा था और जब पाँवों की नूपुर (बिछियाँ) मिलीं तो लक्ष्मण उसे पहचान गये क्योंकि वे प्रतिदिन प्रातःकाल माँ तुल्य भाभी (सीता) के चरणों में नमस्कार करते थे। इसी प्रकार सीता ने भी कभी लक्ष्मण को नहीं देखा था।

इस प्रकार हमारे महापुरुष एक साथ रहकर कभी कुशलता एवं विवेकपूर्वक व्यवहार मार्ग में प्रवर्तन करते थे। अगर आज भी उन महापुरुषों का आदर्श लेकर उनके चरणचिह्नों का अनुकरण किया जाय तो हर व्यक्ति अपने शील की रक्षा कर सकता है।

आचार्य महाराज मुनिराज के लिए आज्ञा देते हैं कि हे मुने! तुम्हारी आहार चर्या पाँच प्रकार की होनी चाहिए-

1. अक्षमृक्षिणी, 2. गर्तपूरणी, 3. भ्रामरी, 4. उदराग्नि प्रशमन, 5.गोचरी।

गोचरी का अर्थ होता है - तुम आहार के लिए जाते समय गाय के समान आचरण करना। जिस प्रकार गाय, घास आदि लाने वाली महिला के वस्त्र, आभूषण, रंग, रूप आदि को नहीं देखती, मात्र घास से ही प्रयोजन रखती है, उसी प्रकार तुम भी आहार देने वाली स्त्री को मत देखना, मात्र आहार से ही प्रयोजन रखना। श्रेणिक-चरित्र में एक कथा आती है। उसका सार यह है कि आहार करते समय आहार देने वाली स्त्री के हाथ से एक ग्रास नीचे गिर गया। ग्रास के नीचे गिरते ही मुनिराज की दृष्टि नीचे गई और स्त्री के पैर का अँगूठा दिख गया, अँगूठे के दिखते ही मुनिराज को गृहस्थ अवस्था की स्त्री का स्मरण हो आया जिससे उनकी मनोगुप्ति समाप्त हो गई तो आप और हमारे जैसे साधारण लोगों के लिए स्त्री (पुरुषों) के अंगोपांगों को देखना कितना हानिकारक है ? हमारी तो यही सलाह है कि आप यदि सदाचारी, स्वदारसंतोषी अथवा ब्रह्मचारी रहना चाहते हैं अथवा ब्रह्मचर्य को सुरक्षित निरतिचार बनाना चाहते हैं तो कभी भूलकर भी किसी स्त्री या पुरुष के अंगोपांगों को न देखें। यदि भूल या सहजता से कभी दिख भी जावें तो तत्काल कछुवे के समान अपनी दृष्टि को संकुचित कर लें या माँ-

बहिन के रूप में देखते हुए दृष्टि में राग न आने दें। आज कई लोगों की धारणा है कि अपनी माता-बहिन से भी कोई परहेज करना चाहिए ? उनमें हमारी दृष्टि खराब नहीं हो सकती लेकिन कर्मों का उदय और वासना के जागृत होने में समय नहीं लगता है, इसी बात को पुष्ट करने वाला एक दृष्टान्त है।

❋ जिसकी कल्पना नहीं थी :

दृष्टान्त- शुक्राचार्य अपने आश्रम में अपनी शिष्य मण्डली को अध्ययन करा रहे थे, आज नया पाठ शुरू किया। ''माता स्वस्रा दुहित्रा वा'' इस श्लोक का उच्चारण करते-करते आचार्य एकदम चुप हो गये और अकस्मात् उनका हृदय सन्देहाकुल हो गया। वे ज्यों-ज्यों सोचने लगे त्यों-त्यों सन्देह बढ़ता गया, कभी वे समझते थे कि यह श्लोक ठीक नहीं है, यह सब उनकी बुद्धि का भ्रम है, कभी वे अपनी बुद्धि को ठीक समझते हुए श्लोक को अशुद्ध ठहराते थे। श्रद्धालु शिष्यगण श्लोक की व्याख्या सुनने में प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे थे। इस प्रकार संध्या का समय निकट आ गया। आचार्य ने शिष्यों से कहा- लगता है वेदव्यास के विचार शिथिल हो गये हैं अतएव अशुद्ध रचना बन गई है। जब तक मेरा सन्देह दूर न हो तब तक तुम्हारा धर्मशास्त्र का पाठ भी बन्द है। इतना कहकर शुक्राचार्य वेदव्यासजी के आश्रम में पहुँच गये। वेदव्यासजी ने आतिथ्य सत्कार करके शुक्राचार्यजी को अपने पास आसन दिया और आगमन का कारण पूछा। शुक्राचार्य ने कहा- ''आपने यह स्मृति वाक्य जो मन की चंचलता के विषय में कहा है-

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामः, विद्वांसमपि कर्षति॥

कहिये, इसका क्या तात्पर्य है। व्यासजी ने कहा-तात्पर्य स्पष्ट है- ''माता, भगिनी वा पुत्री के साथ एकान्त में नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि इन्द्रिय समूह (मन) बड़ा प्रबल है, यह विद्वानों को भी अपने ओर खींच लेता है।''

शुक्राचार्य- हा! कष्ट!! आप जैसे योगीश्वरों का भी इतना दुर्बल विचार, मन पर इतना अविश्वास। मन कितना भी चंचल क्यों न हो, क्या वह माता-पुत्री-भगिनी की ओर चलायमान होगा? कदापि नहीं।

व्यास-क्या आपके विचार में यह स्मृति वाक्य असत्य है।

शुक्राचार्य- असत्य नहीं तो अशुद्ध और व्यर्थ तो अवश्य है।

व्यास- आप इस विषय को एक बार और विचार लीजिए। देखिये उर्वशी, रम्भा आदि के कारण बड़े-बड़े योगियों का मन चलायमान हो गया था। इस प्रकार की चर्चा कर तथा ''यह सूत्र अशुद्ध है'' ऐसा निश्चय कर शुक्राचार्य

अपने आश्रम की ओर लौट गये।

अमावस्या की अंधेरी रात थी, जिस समय शुक्राचार्य प्रकृति के भीषण स्वरूप को देख रहे थे। अचानक एक ऐसी दुःखभरी भीषण आवाज आयी जिसने आचार्य का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। उन्हें लगा-यह आर्त्तनाद किसी पति-परित्यक्ता, वियोगिनी कुलवधू का है। ''हा! प्राणनाथ! मुझ अबला को इस भयंकर वन में छोड़कर कहाँ चले गये?''

जिस ओर से आवाज आई थी आचार्य उधर की ओर बढ़े और बोले- ''पुत्री! तुम कौन हो! डरो मत! मेरे आश्रम में चलो तुम्हें वहाँ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकेगा।''

अबला ने उत्तर दिया- ''खबरदार! मेरे पास मत आना। मैं तेरे वाग्जाल में फँसने वाली नहीं हूँ। एकान्त में परपुरुष मात्र से मुझे भय लगता है, क्योंकि संसार के पापी पुरुष जिस मुख से पुत्री कहते हैं उसी से दूसरी बार 'पत्नी' कहने में नहीं हिचकते।'' ''हाय प्राणेश्वर! अब क्या करूँ? इस भयंकर समय में हिंसक जन्तुओं से भी इतना डर नहीं लग रहा जितना मनुष्य से। हे प्राणनाथ! आओ और मुझे इस विपत्ति से बचाओ।''

आचार्य ने सोचा-''यह स्त्री डरी हुई है। इसे अपने पतिव्रता धर्म का बड़ा ख्याल है। इसे धैर्य बँधाना चाहिए।'' ऐसा विचार कर आचार्य ने अबला को बहुत प्रकार से आश्वासन दिये तब वह यह वादा करके कि वहाँ उससे कोई छेड़छाड़ नहीं करेगा, आश्रम में जाने को तैयार हुई। एक खाली दृढ़ स्थान में उसने प्रवेश कर दरवाजा बन्द कर दिया। अबला के कुटिया में प्रवेश करते समय एक विचित्र घटना घटी। यद्यपि अंधकार होने से आचार्य यह नहीं जान सके थे कि अबला बाला है या युवती, कुरूप है या सुंदरी, क्या पहने हुए है परन्तु प्रवेश के समय अचानक बिजली चमकी थी और उस प्रकाश में देखा कि वह अबला सोलहवर्षीया सुन्दरी है, पवन के वेग से उड़े हुए आँचल को उसने इतनी जल्दी संवारा कि किसी अवयव का दर्शन नहीं हुआ था, फिर भी चलते-चलते मृगनयनी ने जादूभरी चकित दृष्टि से लज्जा के साथ देखा जिससे आचार्य एक बार विस्मृत हो गये। उनका मन चंचल हो गया, वे कर्तव्य भूल गये। उससे परिचय करने के लिए वे कुटीर के पास आये और द्वार की कुण्डी (साँकल) खटखटा कर बोले -''क्या इतनी जल्दी सो गई?'' अनेक बार प्रश्न करने पर भी उत्तर नहीं मिलने पर आचार्य चिल्लाकर बोले, क्या उत्तर देना भी पाप है? अबला ने कहा- नहीं, आपने कहा था कि यहाँ कोई छेड़छाड़ नहीं करेगा पर आप स्वयं अपनी प्रतिज्ञा से च्युत

हो गये हैं।

आचार्य- कौन छेड़ता है, हम कोई पाप की बातें थोड़े ही कर रहे हैं। एक बार द्वार खोलो और हम जो धर्मोपदेश करें उसे प्रेम से सुनो!

अबला-भाड़ में जाये तुम्हारा धर्मोपदेश! हम प्राणनाथ की बातें छोड़कर किसी अन्य की बातें नहीं सुनना चाहते।

शुक्राचार्य-प्राणधन! डरो मत। हम ऐसा वैसा प्रेम नहीं, विशुद्ध प्रेम करना चाहते हैं।

अबला- छिः-छिः ''डूबि मरहुँ धर्मव्रतधारी'' कैसा धर्मोपदेश परस्त्री से प्रेम करते हो और फिर उसे विशुद्ध कहते हो।

आचार्य- सुन्दरी की बातों से आचार्य लज्जित तो हुए परन्तु उनका चित्त शान्त होने की बजाय और अधिक चंचल हो गया। उन्होंने बहुत चाहा कि किसी प्रकार कुटीर में प्रवेश कर अपनी बढ़ती हुई प्यास को बुझावें परन्तु कुटीर का द्वार सुदृढ़ और बन्द था। आचार्य की कामवृत्ति और भी उद्दीप्त हो गई। उन्होंने निश्चय किया कि कुटीर की दीवारें अति दृढ़ हैं, उन्हें तोड़ना मुश्किल है अतः छत तोड़कर एक बार अन्दर चलना चाहिए। उन्होंने छत की चार-पाँच लकड़ियाँ हटाकर अन्दर प्रवेश करने का मार्ग कर लिया।

मोहमुग्ध शुक्राचार्य सुन्दरी की लालसा से जैसे ही नीचे उतरे उसी समय बिजली चमकी और उसका प्रकाश छिद्र से अन्दर पहुँचा। उस आलोक में उन्होंने देखा सुन्दरी के स्थान पर जटाजूटधारी महर्षि वेदव्यास बैठे हँस रहे हैं। उनके हाथ में उसी श्लोक का पत्र था, जिसे उन्होंने अशुद्ध और व्यर्थ बताया था।

आचार्य को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। उन्होंने उसका सही अर्थ कर अपने सन्देह को दूर किया।

आचार्य वट्टकेर स्वामी ने मूलाचार में अब्रह्म के दस कारण बताये हैं-

1. अत्यधिक भोजन करना।
2. स्नान, तेलमर्दन, उबटन आदि से शरीर का संस्कार करना।
3. केशर-कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ एवं पुष्पमाला धूप आदि की सुगंध ग्रहण करना।
4. पंचम धैवत आदि सात स्वरों को बाँसुरी, वीणा, तन्त्री आदि वाद्यों पर सुनना।
5. तूलिका पर्यंक अर्थात् कोमल-कोमल रुई के गद्दे, पलंग आदि शोधन

करना एवं कामोद्रेक के कारणभूत क्रीड़ास्थल आदि वा एकान्त स्थान में रहना।

6. राग से उत्कट भाव धारण करती हुई, कटाक्ष से अवलोकन करती हुई एवं चित्त में चंचलता उत्पन्न करती हुई स्त्रियों के साथ सम्पर्क रखना, उनके साथ क्रीड़ा करना आदि।
7. सुवर्ण, आभरण, वस्त्र, धन आदि का संग्रह करना।
8. पूर्व काल में भोगे हुए भोगों का स्मरण/ चिन्तन करना।
9. रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श (इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों) में रति करना।
10. इष्ट रसों का सेवन करना।

इसी बात को अन्य आचार्यों ने भी इस प्रकार बताया है-

❋ **अब्रह्म के कारणों के भेद (अब्रह्म की उत्पत्ति)** :

1. **स्त्रीसंसर्ग** -राग से पीड़ित होकर स्त्रियों के साथ अतीव प्रेम करना।
2. **प्रणीत रस भोजन**-अतीव लम्पटता पूर्वक पंचेन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला आहार ग्रहण करना।
3. **गंधमाल्य संस्पर्श**-चन्दन, केशर आदि सुगन्धित पदार्थ और मालती चम्पा आदि मालाओं से शरीर को संस्कारित करना।
4. **भूषण**- मुकुट कड़े आदि से शरीर को विभूषित करने की अभिलाषा।
5. **शयनासन**- कोमल शय्या पर शयन करना तथा कोमल आसन आदि पर बैठना।
6. **गीत-वादित्र**-षड़ज आदि गीत की तथा तत, वितत, मृदंग आदि वाद्य बजाने की इच्छा रखना, रागादि रूप आकांक्षा से नृत्यगीत आदि देखना, सुनना।
7. **अर्थ से प्रयोग**-सुवर्ण आदि द्रव्यों से सम्पर्क रखना।
8. **कुशील संसर्ग**-कुत्सिक शील वाले अर्थात् राग से संयुक्त जनों से सम्पर्क रखना।
9. **राजसेवा**- विषयभोगों की इच्छा से राजाओं की स्तुति- प्रशंसा करना।
10. **रात्रि संचरण**-बिना प्रयोजन रात्रि में विहार करना।

❑❑❑

6. अब्रह्म के दुष्परिणाम

मैथुन का सेवन करने से ग्लानि, मूर्च्छा, भ्रम, कम्पन, श्रम, स्वेद (पसीना), अंगविकार और श्रमरोग आदि सैंकड़ों दोष उत्पन्न होते हैं। अब्रह्म का सेवन करने की इच्छा करने वाले पुरुष की दशा इस प्रकार हो जाती है :-

1. स्त्री विषयक चिन्ता
2. स्त्री को देखने की इच्छा
3. निःश्वास डालना
4. ज्वर आना
5. दाह पड़ना
6. भोजनादि में अरुचि
7. मूर्च्छा
8. उन्मत्तपना
9. प्राणसन्देह
10. मरण

1. स्त्री विषयक चिन्ता- स्त्री के न मिलने पर वह सोचता है कि वह कैसे मिलेगी, कहाँ मिलेगी, उसकी प्राप्ति के लिए मुझे क्या करना चाहिए, आदि-आदि चिन्ता करता है।

2. स्त्री को देखने की इच्छा- कभी सोचता है कि मैं इस स्त्री को कैसे देख लूँ, क्या इस गूढ़ स्थान पर बैठ जाऊँगा तो वह स्त्री इस रास्ते से इस स्थान पर जाती है। अतः वहीं जाकर उसे देखूँगा आदि।

3. निःश्वास डालना- स्त्री के नहीं मिलने पर, नहीं दिखने पर लम्बे-लम्बे श्वास लेना, यह आर्त्तध्यान का चिह्न है। यह श्वास मानसिक तनाव होने पर ली जाती है, इससे शरीर एवं आत्मा दोनों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

4. ज्वर आना- कामुक व्यक्ति को स्त्री के न मिलने पर ज्वर आ जाता है। वह ज्वर बड़े-बड़े इंजेक्शनों से भी नहीं उतरता, इसे उतारने में मंत्र-तंत्र-औषधि आदि कोई भी समर्थ नहीं हो सकते हैं।

5. दाह पड़ना- कामी को अपनी इच्छापूर्ति नहीं होने पर शरीर में दाह पड़ने लगती है। ग्रीष्म ऋतु का तेजस्वी सूर्य अपने प्रताप के द्वारा अधिक से अधिक शरीर के चर्म को तपा सकता है और जिस पर भी उसको छाते आदि से प्रतिबंध किया (रोका) जा सकता है किन्तु कामदेव के प्रबल ताप के प्रतिबंध का कोई साधन नहीं है, सूर्य दिन में तपाता है लेकिन काम, मनुष्य को रात-दिन तपाता रहता है।

6. भोजनादि में अरुचि होना- कामी पुरुष को अपनी कामिनी के नहीं मिलने पर अच्छे-अच्छे मिष्टान्न भी नहीं रुचते, अपना प्रिय से प्रिय भोजन भी उसे जहर के समान लगता है।

7. मूर्च्छा - कामी अपनी इच्छित स्त्री के वियोग में मूर्च्छित हो जाता है तथा जिस प्रकार मूर्च्छित मनुष्य हित-अहित का विचार नहीं कर सकता है, उसी प्रकार कामी में अपने हित-अहित के विचार की शक्ति नहीं रहती है।

8. उन्मत्तता- कामी अपनी प्रिय स्त्री को प्राप्त करने के लिए उन्मत्त (शराब पिये हुए) पुरुष के समान कुत्सित वाक्य बोलता है और निष्ठुर, अश्रवणीय, अनिष्ट, असह्य, निन्दाजनक, अप्रिय, अवक्तव्य अपूज्य वचन भी बोलता है।

9. प्राणसन्देह-कामी अपनी मनोकामना को पूरी करने के लिए मरण तक के कार्य को कर लेता है। जैसे लोभी मनुष्य धन-प्राप्ति के लिए अपने प्राणों को संकट में डालकर भी धन-प्राप्ति के उपाय करता है उसी प्रकार कामी अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए प्राणों को संकट में डाल देता है, अथवा चिन्ता करते-करते मरे हुए के समान हो जाता है।

10. मरण- कामी अपने मनोरथ की पूर्ति न होते देख मरण को प्राप्त हो जाता है। आज इसी वासना के वश होकर सैंकड़ों कन्यायें एवं नवयुवक रेल के नीचे कटकर, कुँए में गिरकर, सल्फास की गोली खाकर, फाँसी लगाकर आत्महत्यायें कर रहे हैं क्योंकि चित्रहार के अश्लील गानों को सुन-सुनकर, अश्लील नृत्यों को देख-देखकर तथा अश्लील उपन्यासों को बार-बार पढ़ने के कारण उनकी वासनाएँ उद्दीप्त हो जाती हैं। फिर लड़कियाँ लड़कों को एवं लड़के लड़कियों को छेड़ते हैं। आपस में एकान्त में मिलने की कोशिश करते हैं, अगर लड़की लड़के को नहीं चाहती है तो लड़का लड़की को मार डालता है या स्वयं आत्महत्या करके मरण को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार लड़कियाँ भी अपनी दुर्लभ मनुष्य पर्याय को समाप्त कर देती हैं, अगर माता-पिता, मित्र आदि बीच में बाधक बनते हैं तो उनका भी तिरस्कार करते हैं।

मात्र किसी पर-स्त्री या बालिका के साथ अब्रह्मसेवन का विचार करने से ही इतनी व्यथा सहनी पड़ती है तो जो साक्षात् अब्रह्म का सेवन करते हैं उनकी क्या दशा होती है उसे स्वयं विचार कर लें।

❑ **मैथुन से होने वाली हानियाँ**-

1. शारीरिक हानि
2. धार्मिक हानि
3. सामाजिक हानि
4. आर्थिक हानि

1. शारीरिक हानि :

हमारे शरीर में वीर्य शक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। वही हमारे शरीर का राजा है।

जिस प्रकार राजा के बिना राज्य में नाना प्रकार के अन्याय, भ्रष्टाचार होने से राज्य निर्धन हो जाता है उसी प्रकार वीर्य शक्ति के बिना शरीर निस्तेज हो जाता है तथा नाना प्रकार के रोगों का आराम गृह बन जाता है। जिसे अपनी वीर्य शक्ति का ध्यान नहीं है वह लौकिक तथा पारलौकिक कोई भी कार्य सिद्ध नहीं कर सकता है। शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद में तो महीने में एक बार से अधिक भोग का निषेध किया है क्योंकि भोजन से उत्पन्न शारीरिक शक्ति में से वीर्य की उत्पत्ति सबसे अन्त में होती है। वह वीर्य चालीस किलो अर्थात् आधा क्विन्टल भोजन करने पर डेढ़ तोला बनता है। यह मूर्ख जीव एक बार के विषय सेवन से महीनों के किये गये भोजन से, उत्पन्न वीर्य को नष्ट कर देता है। अधिक काम-सेवन करने से टी.वी., कुष्ठ, नपुंसकता आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। जो स्वस्त्री में भी अति करता है, उसे आयुर्वेद चेतावनी देता है -

अतिस्त्री- संप्रयोगाच्च, रक्षेदात्मात्मवान्।
शूलकासज्वरश्वास- कार्श्य- पाण्डवामयक्षयाः।
अति व्यवायाज्जायन्ते, रोगाश्चाक्षेपकादयः।

अर्थ :- अति स्त्री प्रसंग से बचना चाहिए वरना शूल, खाँसी, बुखार, श्वास रोग, दुबलापन, पाण्डुरोग, क्षय, ऐंठन आदि व्याधियाँ घेर लेती हैं।

रोगों का राजा 'एड्स' :

जो भौतिकवादी, विलासप्रिय, अमेरिका आदि देश शील का मखौल उड़ाते थे वे भी आज एड्स रोग के कारण शील को महत्त्व देने लगे हैं। नीतिकारों ने कहा है- ''आर्त्ताः नराः धर्मपराः भवन्ति'' दुःखी जन धर्मपरायण होते हैं। यह एड्स रोग वेश्यागमन से होता है। जो पश्चिमी देश आधुनिकता के नाम पर उन्मुक्त यौन उच्छृंखलता में आकंठ डूबे हुए थे, वे आज अपने किये पर पछता रहे हैं। तथाकथित यौनक्रान्ति आखिरी सांसें गिन रही है।

यह जीव एक अजीब किस्म का वायरस यानी विषाणु है। जितना छोटा, उतना खोटा है। यह वायरस इतना छोटा है कि इसका व्यास 100 नेनो मीटर या 0.1 माइक्रोमीटर मापा गया है। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव ने आज लगभग 133 देशों में एड्स का असाध्य रोग फैलाकर ऐसी दहशत पैदा की है कि उसके सामने परमाणु युद्ध का आतंक भी नहीं रह गया है। इस रोगाणु का शोध 1983 में पेरिस के डॉक्टर तुकमोटारनीन ने, 1984 में अमेरिका के डॉक्टर राबर्ट गैली ने किया है।

एड्स का वायरस आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा और आतंक का मानो

वामन अवतार है। एड्स का वायरस मानव देह के अन्दर खून में पलता है, पहले यह हमारे खून की प्रतिरक्षा-प्रणाली के पहरेदारों को दबोचता है, उसके बाद चाहे फ्ल्यू हो या निमोनिया किसी भी रोगाणु के खिलाफ रोगी के खून में एन्टी-बॉडी नहीं बनती Resistance grasp नहीं करता है। एक बार पूरे खून में एड्स के विषाणु फैल जायें तो चंद महीनों में ही मौत रोगी को अपने पंजे में दबोच लेती है। अमेरिका में सतरादिक में ब्लू फिल्मों के बेताज बादशाह माने जाने वाले जॉन हेल्मस का 14000 रमणियों का रिकार्ड है जो जुलाई 1986 में एड्स के वायरस की चपेट में आये और मार्च 1988 में निमोनिया ने जिसके प्राण ले लिये। अक्सर अतिसार, बुखार और वजन घटते जाने से एड्स के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। धीरे-धीरे ओजहीन होता हुआ एड्स रोगी सूखकर काँटा हो जाता है। एड्स का वायरस सबसे पहले दिमाग पर हमला बोलता है और रोगी सनक का शिकार हो जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अकेले अफ्रीका देश में ही बीस लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों के देह में एड्स के वायरस पल रहे हैं। सारी दुनिया में पचास लाख से एक करोड़ लोग इस घातक वायरस के जीते-जागते नमूने घूम रहे हैं। इनमें से पंद्रह लाख केवल अमेरिका में हैं।

यूनीसेफ की ताजा रिपोर्ट के अनुसार अगले दशक में पचास लाख से तीन करोड़ तक बच्चे भी एड्स का शिकार हो जायेंगे इस समय भी छह सौ बच्चे जाम्बिया में और चौदह सौ अमेरिका में एड्स से पीड़ित हैं। इनको यह रोग अपने माता-पिता से लगा है। स्तनपान से उतना खतरा नहीं है। केवल दो बच्चों को यह रोग एड्सग्रस्त माँ के स्तनपान से पहुँचा है। रक्त शुक्राणु और खराब सुईयों के कारण भी एड्स फैलता है। तथाकथित यौनक्रान्ति आखिरी श्वास गिन रही है। दुनिया भर के दुराचार के अड्डों में सनसनी फैल गयी है। जो काम संत महात्मा नहीं कर पाये, वह 'एड्स' की बीमारी फैलाने वाले एक निहायत क्षुद्र प्राणी ने कर दिखाया। इसलिए एक बार फिर पश्चिमी स्कूलों में नैतिकता की दुहाई दी जा रही है।

स्त्री-सहवास (मैथुन) के संबंध में ग्रीस (यूनान) के एक महात्मा सॉक्रेटीज(सुकरात) से उसके एक शिष्य का इस प्रकार का वार्तालाप हुआ-

शिष्य ने पूछा-मनुष्यों को स्त्री प्रसंग कितनी बार करना चाहिए ?
सॉक्रेटीज- जीवन में केवल एक बार।
शिष्य- इससे भी यदि तृप्ति न हो तो?
सॉक्रेटीज- तो वर्ष में एक बार।

शिष्य- इतने से भी मन न माने तो?

सॉक्रेटीज- महीने में एक बार।

शिष्य - फिर भी न रहा जाय तो।

सॉक्रेटीज- महीने में दो बार, परन्तु ऐसा करने वाले की मृत्यु जल्दी होगी

शिष्य- यदि इतने पर भी इच्छा बनी रहे तो?

सॉक्रेटीज- पहले कफन मंगाकर घर में रख ले, फिर जी चाहे जितनी बार करे।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि स्त्री-सहवास जितना कम किया जाये उतना ही श्रेष्ठ है, मनुष्य की पारमार्थिक उन्नति के लिए उपयोगी है।

मैथुन से वीर्य का नाश होता है। जैसे कोई मूर्ख बागवान तन, मन, धन से रात-दिन परिश्रम कर फूलों का सुन्दर बाग तैयार करता है और पैदा हुए असंख्य फूलों का इत्र बनाकर उसे मोरी (नाले) में डालता है अथवा डलवा देता है, आमदनी एक रुपये की और खर्च तीस रुपये का, ऐसा मनुष्य जितना अंधा, मूर्ख, पागल और भिखारी है, उससे करोड़ गुना वह मनुष्य मूर्ख, पागल, अंधा एवं भिखारी है, रोगी, दुःखी और काल का शिकार है जो एक माह में प्राप्त वीर्यसम्पदा से कई गुणी अधिक वीर्यसम्पदा को एक बार (कुछ ही क्षणों) में खाक कर डालता है।

वेद ग्रन्थों में भी आठ प्रकार के मैथुन बतलाये हैं और उनसे बचने को ही ब्रह्मचर्य कहा है :-

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनभख्यंग, प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्य, एतत् एवाष्टलक्षणम्॥

1. किसी स्त्री का किसी अवस्था में स्मरण करना।
2. उसके रूप-गुणों का वर्णन करना, स्त्री सम्बन्धी चर्चा करना या गीत गाना, श्रृंगार रस के ग्रन्थों को पढ़ना आदि।
3. स्त्रियों के साथ ताश, चौपड़ आदि खेलना। होली के अवसर पर भाभी, साली, साले की स्त्री, मित्र की पत्नी आदि के साथ फाग (होली) खेलना।
4. स्त्रियों को देखना।

5. उनके साथ एकान्त में वार्तालाप करना।
6. प्रत्यक्ष सहवास करना।
7. स्त्री के प्रति बुरी दृष्टि (विशेष अभिप्राय) रखना।
8. स्त्री की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना।

ये आठ प्रकार के मैथुन विद्वानों के द्वारा बतलाये गये हैं। मोक्ष की कामना करने वालों को इन आठों से अवश्य बचना चाहिए। स्त्री के किसी प्रकार के सम्बन्ध से ही वीर्य नाश होता है, प्रत्यक्ष सहवास के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मैथुनों में वीर्य स्खलित होकर अण्डकोषों में आ जाता है। यह पतित वीर्य पदच्युत व कैदी राजा की तरह बलहीन व तेजहीन हो जाता है। वीर्य पतन होते ही शरीर उसी क्षण निर्बल, दुःखी एवं अल्पायु हो जाता है तथा धातुदौर्बल्य, स्वप्नविकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ, यक्ष्मा आदि अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं।

वीर्य की उत्पत्ति :

रसाद्रक्तं ततो मांसं, मासान्मेदः प्रवर्तते।
मेदोऽस्थि ततो मज्जं, मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजा॥

मनुष्य जो कुछ भोजन करता है, वह प्रथम पेट (उदर) में जाकर पचने लगता है तथा पच कर उसमें से रस बनता है, उस रस का पाचन होकर रक्त बनता है। रक्त से माँस, माँस से मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है। पुरुष के उस शुक्र को वीर्य तथा स्त्री के शुक्र को रज कहते हैं। इन वीर्य और रज का कभी पाचन नहीं होता है। ये सातों धातुएँ क्रम से एक से दूसरे के रूप में परिणमन करती हैं तथा उनमें से बचा हुआ व्यर्थ का पदार्थ मल, मूत्र, पसीना, आँख, कान, नाक के मैल, नाखून तथा केशादि के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। भोजन से रस, रस से रक्त आदि रूप में परिणमन करने में प्रत्येक धातु को चार दिन तथा दो दिन के सातवें भाग प्रमाण काल लगता है। इस प्रकार निरन्तर परिणमन करते हुए भी इन धातुओं का शरीर में कभी अभाव नहीं होता है।

सप्त धातुओं में से सारभूत पदार्थ 'वीर्य' तथा 'रज' होता है। यह वीर्य और रज शरीर में 'औजस' (कान्ति या प्रभा) रूप में चमकता रहता है। जिसके शरीर में सप्तम सारभूत वीर्य कम हो जाता है। वह मनुष्य भले ही शरीर से हट्टा-कट्टा दिखता हो लेकिन वह ओज से रहित होता है।

यदि किसी का प्रश्न हो कि कितने भोजन से कितने वीर्य की उत्पत्ति होती है? तो इस प्रश्न के विषय में आज के वैज्ञानिकों, डॉक्टरों का विचार है कि चालीस किलो खुराक से एक किलो रक्त बनता है तथा एक किलो रक्त से पच्चीस

ग्राम वीर्य बनता है। यदि एक स्वस्थ मनुष्य एक किलो खुराक रोज खाता है तो चालीस किलो खाने में उसे चालीस दिन लगेंगे। उस चालीस दिन के भोजन से मात्र पच्चीस ग्राम वीर्य उसको प्राप्त होगा तथा तीस दिन में बीस ग्राम वीर्य बनेगा। उस सारभूत तेज, कांति देने वाले तथा शक्ति के आधारभूत बीस ग्राम वीर्य को एक बार के भोग में नष्ट कर देना कितनी मूर्खता है, जीवन का घोर पतन है। ऐसा करने वाला पुरुष उस मूर्ख बागवान के समान है जो तन, मन, धन से दिन-रात परिश्रम करके फूलों के सुन्दर बगीचे को तैयार करता है तथा सैंकड़ों फूलों का इत्र निकलवा कर उसे मोरी (नाली) में डाल देता है अथवा डलवा देता है। जिस प्रकार किसी पुरुष के आय तो एक रुपये की हो तथा खर्च तीस रुपये करता हो, वह शीघ्र दरिद्र, भिखारी बन जाता है उसी प्रकार जो अपने अमूल्य वीर्य को नष्ट कर देता है वह शीघ्र पतित होकर नष्ट हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

वीर्य का निवास :

यह वीर्य और रज शरीर के किसी विशेष स्थान में नहीं रहते अपितु तिल में तैल, फूल में सुगंध के समान पूरे शरीर के कण-कण, अंग-अंग, रोम-रोम में भरे रहते हैं।

वीर्य की क्षति से हानि :

आजकल की सभ्यता में तो मैथुन के और भी अनेक अनैसर्गिक उपायों का आविष्कार हुआ है जिनसे प्रत्यक्ष सहवास के सदृश ही भीषणता के साथ वीर्य नाश होता है और यह पापाचार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। फल भी हाथों-हाथ मिल रहा है, अवस्था के पूर्व शरीर दुर्बल हो जाता है, गाल पिचक जाते हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है स्मरणशक्ति चली जाती है, सिर चकराने लगता है, हृदय कमजोर हो जाता है, आँखें जलने लगती हैं, क्षुधा मारी जाती है, जी घबराता है, सुख से नींद नहीं आती और आलस्य घेरे रहता है।

वीर्य की एक बूँद भी निकलना मानो अपने शरीर को नींबू की तरह निचोड़ डालना है। जैसे मथने से दूध के प्रत्येक परमाणु से मक्खन खींचा जाता है, उसी प्रकार पूर्वोक्त नवधा (हस्तमैथुन तथा आठ प्रकार के मैथुन) मैथुन के द्वारा शरीर के समस्त परमाणु से वीर्य खींचा जाता है। उस समय शरीर की नस-नस हिल जाती हैं। शरीर के सभी अवयवों को बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। जब तक दीपक में तैल ऊपर चढ़ता है तभी तक दीपक की ज्योति प्रकाश फैलाती रहती है और जैसे-जैसे तैल का नाश हो जाता है, दीपक मन्द होते-होते अन्त में बुझ जाता

है। उसी प्रकार जब तक वीर्य शरीर में ऊपर चढ़ता है, तभी तक शरीर में चमक-दमक, आनन्द, बल आदि दिखाई देते हैं तथा जैसे ही वह नीचे उतर कर नष्ट होने लगता है, वैसे ही चमक-दमक, आनन्द आदि धीमे पड़ जाते हैं और अन्त में जीवन-दीप भी बुझ जाता है।

इस प्रकार वीर्य के महत्त्व को समझकर हर व्यक्ति को उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

वीर्य की रक्षा के उपाय :

1. पवित्र संकल्प, 2. मातृभाव दृष्टि, 3. सादा रहन-सहन, 4. सत्संगति, 5. योगासन अभ्यास, 6. जिनेन्द्र भक्ति, 7. सत्साहित्य का पठन-पाठन, 8. व्यसन मुक्ति, 9. उपवास, 10. दृढ़ प्रतिज्ञा, 11. प्राणायाम।

2. धार्मिक हानि :

मैथुन-सेवन से अनेक जीवों का ह्रास होता है, शास्त्रों में इस प्रकरण को बताते हुए लिखा है -

मैथुनाचरणे मूढ़, म्रियते जन्तुकोटयः।
योनिरन्ध्रसमुत्पन्नाः, लिंगसंघट्टापीड़िताः॥

अर्थ- अरे मूर्ख प्राणी! स्त्री के पास मैथुन करने में उसके योनि रूप छिद्र में उत्पन्न हुए करोड़ों जीव लिंग के आघात से पीड़ित होकर मरते हैं। ''धाए धाए असंखेज्जा'' अर्थात् लिंग के प्रत्येक आघात में असंख्यात करोड़ जीव मरते हैं, ऐसा आगम का वचन है।

2. मेडिकल शोध से सिद्ध हुआ है कि पच्चीस बूँद वीर्य में साठ मिलियन (छः करोड़) से एक सौ दस मिलियन तक सूक्ष्म जीव रहते हैं। डॉ. सुरेशचन्द्र जैन ने स्वयं सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वीर्य में जीवों को चलते-फिरते देखा है। जीवों का आकार प्रायः मनुष्यजातीय सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीव के समान है। माता का रज एसिड (अम्ल) गुण युक्त होता है। पिता का वीर्य ऐलक्लाइन (क्षार) गुण युक्त होता है। संभोग में रज एवं वीर्य का संयोग होने पर एसिड एवं ऐलक्लाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रक्रिया होती है उससे उन जीवों का संहार हो जाता है। जबसे उन्होंने अपनी आँखों से वीर्य में बिलबिलाते जीवों को देखा, तब से अंतरंग में उन्हें बहुत ग्लानि हुई और उसी दिन से वे ब्रह्मचर्य का अधिकाधिक पालन करने लगे हैं।

3. जिस प्रकार तिलों की नाली में तप्तायमान शलाका के डालने पर

उसमें स्थित सब तिलों का नाश हो जाता है उसी प्रकार मैथुन कार्य में योनि में अवस्थित बहुत से जीवों की हिंसा हुआ करती है।

4. एक बार काम-सेवन करने से स्त्री की योनि में स्थित नौ लाख जीवों की हत्या होती है जिससे महापाप का आस्रव होता है। यदि महीने में चार दिन भी कोई संकल्प पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो वह छत्तीस लाख जीवों की रक्षा करता है। यदि वह जीवन में एक दिन भी संकल्प पूर्वक मैथुन का त्याग नहीं करता है तो वह नित्य प्रति असंख्यात जीवों की हत्या का भागी होता है।

5. परस्त्री या वेश्यागमन रूप नीच कार्य करने के कारण भगवान् का अभिषेक तक नहीं कर सकता वह भगवान् के चरणस्पर्श नहीं कर सकता, समाज उसे विमानोत्सव आदि श्रेष्ठ कार्यों में भगवान् की पालकी को स्पर्श नहीं करने देती है। वह मुनिराज, आर्यिका, क्षुल्लिकादि को आहार देकर पुण्योपार्जन नहीं कर सकता है। दान के अभाव में उसका घर श्मशान के समान तथा हाथ चाण्डाल के हाथ के समान रहते हैं।

6. जो परस्त्रीगामी है वह नरक में जाकर महान् दुःखों को भोगता है। वहाँ उसे गरम-गरम अंगारे के समान लाल लोहे की पुतली से अन्य नारकियों के द्वारा आलिंगन कराया जाता है और भर्त्सना की जाती है कि तूने पूर्वभव में परस्त्री का सेवन किया था, अब दूर क्यों भागता है? इस पुतली का आलिंगन कर, अब क्यों डरता है ?

3. सामाजिक हानि :

1. स्वस्त्री में भी अति आसक्त रहने वाले व्यक्ति को समाज अच्छी दृष्टि से नहीं देखती है तथा किसी राज्य की प्रजा जब अपने राजा तक को भी अति आसक्त देखती है तब वह उसे राजपद से उतार देती है तथा कामी व्यक्ति अति आसक्तिवश अपने बड़े-बूढ़ों की मर्यादा भी नहीं रख पाता। मंदिर, तीर्थस्थान, गुरु आदि के सामने भी कामुक चेष्टाएँ करने लग जाता है अर्थात् उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। समाज कामी पुरुष से कभी किसी अच्छे कार्य को करने में सलाह नहीं लेती है।

2. यदि कोई पुरुष परस्त्री या वेश्या में आसक्त होता है तो पैसा समाप्त हो जाने पर चोरी करना प्रारम्भ कर देता है। वह वेश्या के साथ मांस-भक्षण करता है, शराब पीता है, जुआ खेलने लग जाता है, ऐसे नीचे कार्य करने से उसका नैतिक पतन हो जाता है। दुराचारी होने से समाज उसे बहिष्कृत कर देती है। कोई उसके

घर का पानी पीना तक पसन्द नहीं करता, कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके साथ मित्रता नहीं करता, समाज के किसी कार्य में उसका सहयोग नहीं लिया जाता है, समाज उसे लुच्चा, लफंगा, गुण्डा आदि अश्लील शब्दों से पुकारता है। सभी उसका तिरस्कार करते हैं, उसकी मजाक उड़ाते हैं।

4. आर्थिक हानि :

1. कामभोग से उत्पन्न बीमारियों की औषधियों में घर की सम्पत्ति बर्बाद हो जाती है और शरीर की दुर्बलता के कारण वह कामी पुरुष व्यवसाय नहीं कर पाता है, उसके बच्चे भूखों मरने लगते हैं, पैसों के अभाव में वह न अच्छा खा सकता है और न ही पहन सकता है और न ही दान दे सकता है।

2. यदि कामासक्त होकर परस्त्री या वेश्यागमन करता है तो अपने घर की करोड़ों की सम्पदा वेश्या को प्रसन्न करने में लगा देता है, वेश्या को प्रसन्न करने के लिए पैसा समाप्त हो जाने पर पत्नी, माँ आदि के आभूषणों को बेच देता है। पिता-दादा की जमीन जायदाद बेचकर घर-बार से रहित हो जाता है तथा घर नहीं होने पर इधर-उधर गली, सड़क आदि पर रहता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है।

दुःसाध्य व्याधि-कामवासना :

संसार में छोटी-बड़ी अनेक व्याधियाँ हैं। उनको दूर करने के लिए डॉक्टर, वैद्य, शल्य चिकित्सकादि अनेक उपाय करते हैं और उन उपायों से व्याधियाँ ठीक भी हो जाती हैं। लेकिन काम एक ऐसी व्याधि है, जिसको दूर करने केलिए आयुर्वेदिक, एलोपेथिक, होम्योपैथिक, प्राकृतिक चिकित्सा आदि की कोई भी औषधि समर्थ नहीं है। कामरोग, क्षयरोग के समान है। कामरोगी का शरीर शनैः शनैः जर्जर होता है और वह अनेक रोगों से घिर जाता है और अन्त में इस रोग के कारण मृत्यु की गोद में सो जाता है। आज के वैज्ञानिकों ने खोज करके क्षय, कैंसर जैसे भयंकर असाध्य रोगों की भी औषधि खोज ली है, परन्तु कामरूपी भयंकर रोग को नष्ट करने वाली औषधि न कोई डॉक्टर (वैद्य) खोज पाये हैं और न ही कोई वैज्ञानिक। कामरूपी अग्नि प्रज्ज्वलित होने पर मेघ समूहों का सिंचन करने पर भी दूर नहीं होती है। जेठ महीने के मूल नक्षत्र में बादल रहित आकाश में प्रकाशमान मध्याह्न के सूर्य का सन्ताप भी शीतल पदार्थों का सेवन करके शान्त किया जा सका है, लेकिन काम का संताप चंद्रमा की शीतल किरणों, कालागरु चन्दन, मोतियों के हार तथा शीतल पदार्थों का सेवन करने पर भी शान्त नहीं होता है। सर्प के काटने पर चढ़े हुए विष को मंत्र, औषधि देकर या विरेचन कराके समाप्त किया जा सकता

है लेकिन कामरूपी सर्प के काटने पर मंत्र आदि भी अपना कार्य करने में निष्फल हो जाते हैं।

कामासक्त क्या-क्या नहीं करता :

कामासक्त हुआ मनुष्य दुर्बल, हीन, भिखारी, भयभीत, नहीं चाहने वाली, कोढ़ी, बुढ़िया, दु:खिनी, क्षीण शरीर वाली, निन्दिता तथा निन्द्य जाति की चाण्डालनी आदि के साथ भी व्यभिचार करने लग जाता है। कामी पुरुष स्वजाति की स्त्री, तपस्विनी, बालिका और तो क्या तिर्यंचिनी से भी कुचेष्टा कर लेता है। यह आसक्ति बड़ी भयंकर है। इसके द्वारा ठगाये गये जीव महान् साम्राज्य, अतुल सम्पत्ति आदि को छोड़कर दरिद्र बन जाते हैं। अष्टम एडवर्ड ने सिंपसन नाम की युवती की आसक्तिवश इंग्लैंड के विशाल राज्य के अधिपतित्व से सम्बन्ध तोड़कर ड्यूक की सामान्य स्थिति को स्वीकार किया। उसे वैभवशाली साम्राज्य को छोड़ने में वेदना नहीं हुई। वादीभसिंह सूरि लिखते हैं कि स्त्री के रागवश जीव बड़े-बड़े राज्य-वैभव को तो क्या अपने प्राणों तक को छोड़ देता है। स्त्री में आसक्त पुरुष ऐसी कौन सी चीज है जिसका त्याग नहीं करता है। इतिहास की समीक्षा की जाये तो प्रतीत होगा कि स्त्री-आसक्ति के कारण बड़े-बड़े साम्राज्य धूलि में मिल गये और उनका पता तक नहीं चला। कामासक्त व्यक्ति अपनी कामिनी की इच्छापूर्ति के लिए हेय-उपादेय, हित-अहित के विषय में कुछ भी विचार नहीं कर पाता है। अपने माता-पिता की परवाह नहीं करता हुआ उन्हें भी मारने के लिए तैयार हो जाता है।

माँ का कलेजा :

दरिद्रता का सामना करती हुई, वैधव्य से पीड़ित एक माँ ने अपने इकलौते पुत्र का पति के अभाव में भी चक्की पीस-पीस कर बड़ी कठिनाई से पालन-पोषण किया था। अनेक परिस्थितियों का सामना करते हुए भी उसने उसे (पुत्र को)पढ़ाया जिससे कि उसकी आजीविका का साधन अच्छी तरह हो सके। वह अपने पुत्र के घर आये बिना कभी भोजन नहीं करती और न सोती। वह हर क्षण पुत्र को कुशल देखने की अभिलाषा-रखती थी। अच्छी वस्तु उसे खिलाने के बाद बची हुई स्वयं खाती थी। पुत्र भी माँ का पूरा सम्मान करता था। प्रातः उठकर माँ के चरण स्पर्श करता था लेकिन यौवन अवस्था को प्राप्त एक दिन वह एक सुन्दरी के रूप को देख उस पर आसक्त हो गया। वह उससे प्रेम करने लगा और धीरे-धीरे उसका प्रेम इतना बढ़ गया कि वह वासना के जाल में फँसकर अधिक

समय उसी के यहाँ रहने लगा। वह अपनी वृद्धा माँ की तरफ ध्यान देना छोड़कर सुन्दरी की इच्छापूर्ति में लग गया। एक दिन उस सुन्दरी ने उसके प्रेम की परीक्षा के लिए कहा ''हे प्रिय! यदि तुम मुझे अपनी माँ का कलेजा लाकर दो तो मैं समझूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, अन्यथा सब दिखावा मात्र है।'' नवयुवक ने कहा-'' हे प्रिये! तुम कैसी बात करती हो, मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ। मैं आज ही तुम्हारे लिए माँ का कलेजा ला दूँगा।'' यह कहकर वह अपने घर पहुँचा और अवसर देखकर उसने अपनी माँ के हृदय में छुरा घोंप (डाल) दिया और माँ का कलेजा निकालकर हर्षित मन से अपनी प्रेमिका के पास पहुँचा और मीठे वचनों के साथ प्रेमिका को वह कलेजा दे दिया। प्रेमिका कलेजे को देखते ही काँप उठी। वह आश्चर्यचकित हो गयी और बोली ''मैं आज से तुमसे प्रेम नहीं करूँगी क्योंकि जिस माँ ने तुम्हें जन्म दिया और अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए भी तुम्हारा पालन-पोषण किया उस माँ का भी तुम कलेजा ले आये तो भविष्य में मेरे साथ कैसा व्यवहार करोगे, यह कौन बता सकता है ?'' प्रेमिका ने उसे ठुकरा दिया। नवयुवक की आँखें खुल गयीं और वह अब प्रेमिका के प्रेम से भी गया और माँ के जीवन से भी गया।

सारांश- मूर्ख युवक ने युवती के मोह में फँसकर अपनी जन्म देने वाली माँ, जिसका उपकार जीवन भर उसकी सेवा करने पर भी नहीं चुकाया जा सकता, उसके भी प्राण-हरण करके अपनी प्रेमिका को प्रसन्न करना चाहा। लेकिन वह न प्रेमिका को प्रसन्न कर पाया और न ही माँ के प्रति कर्तव्य का निर्वाह कर पाया। अतः यदि किसी व्यक्ति को अपनी आत्मा का कल्याण करना है तो उसे किसी भी प्रकार से स्त्री में आसक्त नहीं होना चाहिए।

कामासक्त स्त्रियाँ, पर पुरुषों के प्रेम में मोहित होकर अपने पालन करने वाले माता-पिता की उज्ज्वल कीर्ति को कलंकित कर देती हैं और अपने पति की कीर्ति को नष्ट कर देती है। इस लोक और परलोक में होने वाले पापों एवं पाप के फलों का विचार नहीं करती हैं अपने कटाक्ष से बड़े-बड़े तपस्वियों को भी मोहित कर देती हैं, वचनों से किसी अन्य से बात करती हैं और काय से किसी अन्य के साथ भोग करती हैं। स्त्री किसी से प्रेम करती है और उसके छोटे से दोष को देखकर तत्काल विरक्त होकर दूसरे से प्रेम करने लग जाती है। कभी-कभी तो पुरुष सोचता है कि यह मेरी प्राणप्रिया है, मुझसे बहुत प्रेम करती है लेकिन वह स्त्री उस पुरुष से किंचित् भी प्रेम नहीं करती। कहा भी है- स्त्रियाँ किसी एक को तो

दृष्टि से प्रसन्न कर देती है तो किसी अन्य को इशारों से प्रसन्न कर देती हैं, किसी को भावों से ही रमाती हैं और किसी को वचन मात्र से तृप्त कर देती हैं एवं शरीर के संकेत किसी ओर से करती हैं तथा रति से किसी और के साथ रमण करती हैं। इस प्रकार अनेक पुरुषों के चित्त को प्रसन्न करके उन्हें अपने वश में करती हैं। स्त्री की मन, वचन, काय की चेष्टा विचित्र होती है, मनुष्य के शरीर में जितने रोम हैं, मन के उतने विकारी भाव स्त्रियों में हुआ करते हैं। संसार में पर्वत, भूमि, नभ, सागर का जल, आकाश के नक्षत्र आदि की गणना करना सम्भव है। परन्तु नारी-मन की थाह लेना सर्वथा अशक्य है। जैसे वायु, उल्का, जल के बुलबुले, विद्युत ये पदार्थ एक जगह नहीं टिकते, वैसे ही ये स्त्रियाँ एक पुरुष से अधिक समय तक प्रीति नहीं करती हैं। कदाचित् परमाणु को पकड़ सकते हैं किन्तु स्त्रियों के मन के सूक्ष्म अभिप्राय को नहीं पकड़ा जा सकता है, कदाचित् दोनों बाहों के द्वारा तैरकर सागर का किनारा पा सकते हैं किन्तु स्त्रियों का विभ्रम रूपी भँवर वाले माया रूपी सागर का किनारा पाना नियम से शक्य नहीं। कदाचित् जल में पाषाण तैरने लग जाये, अग्नि किसी को न जलाये, ऐसा संभव है किन्तु पुरुष पर स्त्रियों का चित्त सरल भाव रूप नहीं हो सकता है। इसी को बताते हैं-

माया का अजायबघर स्त्री :

एक बार एक थानेदार किसी स्त्री पर आसक्त हो गया। वह उससे अत्यधिक प्रेम करने लगा। कुछ दिनों के बाद थानेदार का स्थानान्तरण (ट्रांसफर) हो गया। उसने स्त्री से कहा ''तू भी मेरे साथ चल, मैं तुझे नहीं छोड़ सकता।'' स्त्री ने साथ चलने के लिए स्पष्ट रूप से मना कर दिया जिससे वह बहुत दुःखी हुआ और उदास रहने लगा तब एक हितकारिणी महिला (जो थानेदार की मित्र थी) ने उसके दुःख का कारण पूछा और उसका समाधान करने के लिए थानेदार को छिपकर देखने के लिए कहकर वह उस स्त्री के पास पहुँची और बोली -''मैं बहुत दुःखी हूँ। यदि तुम मुझे एक बात का उत्तर दो, तो मैं सुखी हो जाऊँगी।'' स्त्री ने कहा-''किस बात का ?'' तब स्त्री मित्र ने पूछा-''एक बात बताओ कि तुम अब तक कितने लोगों से प्रेम कर चुकी हो।'' वह बोली-''सुनो और 60-65 व्यक्तियों के नाम गिना दिये।'' वह नामों को लिखती गयी फिर पूछा ''और सोच लो, कहीं भूल से कोई रह गया हो तो।'' तब उसने और नाम लिखाये। अब सत्तर नाम हो गये। फिर खूब सोच विचार कर दो नाम और लिखवा दिये लेकिन इन नामों की सूची (लिस्ट)में थानेदार का नाम नहीं था। उसने कहा-''अब कोई नहीं है।'' यह बात

थानेदार छिपकर सुन रहा था। यह सब देख वह विरक्त हो गया।

अमर फल :

राजा भर्तृहरि वनक्रीड़ा करके नगर को लौट रहे थे कि रास्ते में किसी ने उसे एक अमरफल भेंट में दिया। राजा ने सोचा-मेरी स्त्री मुझे सबसे अधिक प्यारी है इसलिए मैं यह अमरफल उसे दूँगा, यह सोचकर महल में आकर उसने वह फल रानी को दिया और कहा-''इसे तुम खा लेना, तुम अमर हो जाओगी जिससे मैं बहुत समय तक तुम्हारे साथ सुखपूर्वक भोग-भोगकर अपना जीवन व्यतीत करूँगा।'' रानी कोतवाल से प्रेम करती थी। अतः उसने स्वयं उस फल को न खाकर उसे कोतवाल को दे दिया। कोतवाल एक वेश्या से प्रेम करता था। अतः उसने भी वह फल नहीं खाया और वेश्या को दीर्घायु बनाने के लिए वह फल वेश्या को दे दिया। वेश्या ने उस फल को न खाकर फल को प्रजापालक न्यायप्रिय राजा को भेंट कर दिया। राजा उस फल को देखकर विचार करता है-

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं, स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।

अर्थ- जिस स्त्री का मैं चिन्तन करता हूँ/अपना समझता हूँ वह मुझसे विरक्त है, वह किसी और पुरुष को चाहती है, वह पुरुष किसी और में आसक्त है। वह कोई और मेरे लिए परितोष का अनुभव करती है। अतः उस स्त्री को, उस पुरुष को, इस काम को, इस वेश्या को और मुझको भी धिक्कार है।

सारांश- स्त्रियों में मायाचारी स्वभाव से होती है। उसका प्रत्येक व्यवहार मायाचार के ढक्कन से ढका होता है। अतः स्त्री पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। अपनी प्रिय पत्नी भी जब अन्य पुरुषों के साथ व्यभिचार करने लग जाती है, वह भी विश्वास के योग्य नहीं है तो अन्य स्त्रियों का विश्वास कैसे किया जाये? अतः अड़ोस-पड़ोस, परिवार, नौकर आदि के साथ व्यवहारिक कार्यों में विश्वास करते हुए भी शीलरत्न के विषय में निकट से निकटतम विश्वासपात्र पिता, भाई आदि का भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए और पुरुषों को भी अपने शील की रक्षा के क्षेत्र में किसी भी स्त्री पर विश्वस्त होकर उसके साथ वार्तालाप, आना-जाना आदि नहीं करना चाहिए।

स्त्रियों के साथ उठने-बैठने वाला पुरुष अपने शील की रक्षा नहीं कर

सकता है। आचार्य कहते हैं कि व्याघ्र, सर्प, पिशाचों के साथ एकत्र रहना श्रेष्ठ है परन्तु स्त्रियों के साथ रहना श्रेष्ठ नहीं है। जिस प्रकार जल के प्रवाह में पर्वत के समान बड़े-बड़े हाथी भी बह जाते हैं, उसमें मृगों के बच्चों के बहने में संदेह नहीं है, उसी प्रकार जिन स्त्रियों के देखने से, साथ रहने से ये तपस्वी, स्वाध्याय के अभ्यासी, ध्यान में धैर्य का अवलम्बन करने वाले भी बह गये तो आप और हमारे जैसों के बहने में क्या संदेह है ? स्त्री के संकल्प की लेशमात्र भावना भी मन में हो तो वह मदनज्वर को बढ़ा देती है तो उनकी बहुत काल तक की संगति क्या-क्या अनिष्ट नहीं कर सकती ? विज्ञ पुरुषों ने यह सिद्धान्त प्राप्त किया है कि स्त्री का मुखावलोकन करने से जीवों का संयम रूपी रत्न अवश्य ही चुरा लिया जाता है। स्त्री का संगम होने पर मनुष्य की क्या-क्या अवस्थाएँ होती हैं, उसी को बताते हैं कि प्रथम तो स्त्री पर दृष्टि पड़ती है, तत्पश्चात् चित्त मोहित होता है, तत्पश्चात् उस स्त्री की कथा और गुण-कीर्तन में मन लगता है, तत्पश्चात् निःशंक संगम का लोलुप मन परस्पर एक हो जाता है। फिर प्रेम के वेग से पीड़ित लज्जा नष्ट हो जाती है तब बड़ों के निकट रहने पर भी परस्पर वार्तालाप, आँखें मिलाना आदि निर्लज्जता के कार्य होने लगते हैं। इस प्रकार यह मूढ़ प्राणी स्त्री रूपी अग्नि में प्रवेश करके शास्त्राध्ययन, सत्यव्रत, तप, शील, विज्ञान और उत्तम चारित्र को ईंधन के समान जला देता है। स्त्रियों के संसर्ग से मनुष्यों के अनेक पुण्य (पवित्र) कार्यों से प्राप्त हुई कीर्ति भी नष्ट हो जाती है और जो व्रत-चारित्र आदि हैं, वे भी कलंकित हो जाते हैं।

जिस प्रकार प्रचण्ड पवन बड़े-बड़े भूभृतों (पहाड़ों) को उड़ा देता है, उसी प्रकार स्त्री बड़े-बड़े भूभृतों (राजाओं) को विचलित कर देती है, ऐसी स्त्रियाँ जो स्वभाव से ही चंचल हैं, उनके सम्पर्क से क्या मन चलायमान नहीं होगा? जिस स्त्री के संसर्ग मात्र से ही मुनिपना कलंकित होता है उसके साथ वार्तालाप करने, उसकी टेढ़ी भौंहों के सुन्दर विभ्रम-विलासों के देखने से क्या यतिपना नष्ट नहीं होता अर्थात् होता ही है। अन्य शास्त्रों में एक कथा प्रचलित है -

ब्रह्मा भी भ्रमित हुए :

ब्रह्माजी बड़े तपस्वी थे, उन्होंने हजारों वर्षों तक कठिन तपस्या की थी। उससे इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। इन्द्र ने ब्रह्माजी को तपस्या से डिगाने के लिये एक सुन्दर अप्सरा को भेजा। अप्सरा आकर ब्रह्माजी के सामने नाचने लगी तथा बड़े ही मधुर स्वर में गाते हुए कौतुक करने लगी। लेकिन ब्रह्माजी अपनी

तपस्या से नहीं डिगे। बहुत काल तक घुंघरू की झंकार व मधुरगान को सुनकर ब्रह्माजी ने अपनी आँखें थोड़ी-सी खोलकर देख लिया। जैसे ही ब्रह्माजी की दृष्टि अप्सरा पर पड़ी, वे उस पर मोहित हो गये। वे बार-बार उसे देखने के लिए आतुर हो गये। उनको आतुर देख अप्सरा ब्रह्माजी के दाहिनी ओर जाकर नृत्य करने लगी। अप्सरा को देखने की लालसा से उन्होंने (ब्रह्माजी ने) अपनी 1000 वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप पूर्व दिशा में अपना मुँह बनाया और अप्सरा को देखने लगे। इस घटना को देख अप्सरा ब्रह्माजी के बायीं ओर जाकर नाचने लगी। ब्रह्मा ने वासना से अभिभूत हो अप्सरा को देखने के लिए अपनी 1000 वर्ष की तपस्या से पश्चिम में अपना मुँह बना लिया और अप्सरा को अवलोकन करते हुए अपने नेत्रों को तृप्त करने लगे। ब्रह्मा को कामुक दुखकर अप्सरा आकाश में नृत्य करने लगी। कामवासना से ग्रसित हो ब्रह्मा ने अप्सरा को देखने के लिए ऊपर भी मुँह बनाने की कोशिश की। लेकिन तपस्या अल्प रह जाने के कारण उनके मनुष्य का मुँह न बनकर गधे का मुँह बन गया। इस प्रकार ब्रह्मा ने अप्सरा को देखने के लिए अपनी हजारों वर्षों की तपस्या को नष्ट कर दिया तो जो निरन्तर स्त्रियों के रूप को निहारते हैं उनकी दशा का वर्णन कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं कर सकता।

सारांश-जिस प्रकार कोई पथिक मार्ग में चलता हुआ अपने चित्त को इधर-उधर दोलायमान करता है और दृष्टि को चारों ओर प्रसारित करता है तो वह निश्चित दुर्घटना का शिकार होता हुआ, अनेक दुःखों को भोगता है, उसी प्रकार साधक भी अपने उपयोग को पर पदार्थों में तथा स्वदारसंतोषी अपनी पत्नी या पति को छोड़कर अन्य स्त्री या व्यक्ति पर दृष्टि डालता है तो निश्चित अपने शील को भ्रष्ट करके संसार में अनेक दुर्गतियों में भ्रमण करता हुआ दुःखों को भोगता है। अतः अपने शील की रक्षा के लिए किसी भी स्त्री पर रागपूर्वक दृष्टि नहीं डालनी चाहिए।

सुख की भ्रान्ति :

जिस प्रकार कोढ़ी पुरुष शरीर को खुजाने तथा तपाने में सुख मानता है, उसी प्रकार कामरूपी रोग से दुःखी हुआ पुरुष भी मैथुन कर्म में सुख मानता है। यह बड़ा विपर्यय है क्योंकि जैसे खुजाने से खाज बढ़ती है और अन्त में कष्टदायक जलन पैदा करती है, उसी प्रकार स्त्री-सेवन की इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और अन्त में कष्टदायक होती है। इस लोक और परलोक में जो मनुष्यों को असह्य वेग वाला दुःख उत्पन्न होता है, उसका कारण सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियाँ ही हैं। उनको

छोड़कर अन्य कोई भी दुःख का कारण नहीं है। जैसे किसी श्वान ने सूखी हड्डी के टुकड़े को मुँह में दबाकर खाना शुरू किया, हड्डी के दबाने से उसका तालु छिल गया और उसमें से रक्त बहने लगा। तब वह कुत्ता अपने ही रक्त को हड्डी से उत्पन्न मानता हुआ कुछ समय तक हर्षित होता है किन्तु कालान्तर में मुख छिन्न-भिन्न होने के कारण उत्पन्न वेदना की व्यथा से दुःखी होता हुआ चींखता-चिल्लाता है। इसी प्रकार यह मोही प्राणी विषय-सेवन में सुख की कल्पना करता है तथा अन्त में दुःखी होते हुए पश्चाताप करता है। जिस प्रकार कोई प्राणी धतूरा खाने से उन्मत हुआ मिट्टी के ढेले को सोना मानता है, उसी प्रकार राग से अंधा प्राणी मैथुन में भी सुखानुभव करता है, किन्तु उसमें वास्तव में सुख नहीं है। ये भोग की भावनायें भोगने से कभी शान्त नहीं होती।

जिस प्रकार प्रचुर जल से समुद्र तृप्त नहीं होता, प्रचुर ईंधन मिलने पर भी अग्नि शान्त नहीं होती, उसी प्रकार मानव भी भोगों को भोगते हुए कभी तृप्त नहीं हो सकता है। कहा भी है-

ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर-जहर की आवे। (वैराग्य भावना)

अर्थ- जैसे-जैसे मनोहर इन्द्रिय विषय-भोगों की प्राप्ति होती है। वैसे-वैसे तृष्णा रूपी सर्पिणी डंक मारती है और धतूरा खाये हुए के समान व्यक्ति पागल हो जाता है। खाज के रोगी के समान भोगी को पीड़ा में वृद्धि की ही प्राप्ति होती है। आगे कहे गये उदाहरण से भी इसी प्रकार की सिद्धि होती है-

तृष्णा नागिन :

एक सेठ बहुत कंजूस था। वह कभी दान नहीं देता था। एक ठग सेठजी को सबक सिखाना चाहता था और कुछ धन भी प्राप्त करना चाहता था। एक दिन ठग सेठ के पास गया और बोला- सेठजी! मैं आपके साथ व्यापार करना चाहता हूँ तथा वह इस प्रकार हो -

''मैं आपको प्रतिदिन एक लाख रुपये दूँगा और आप मुझे प्रथम दिन एक रुपया, दूसरे दिन दो रुपये आदि के क्रम से आगे-आगे के दिन में दूनी-दूनी राशि देंगे।'' सेठ ने सोचा- यह बहुत अच्छा व्यापार है क्योंकि प्रथम दिन 99,999 रु. का लाभ होगा, दूसरे दिन 99,998 रुपये आदि-आदि। यह सोच सेठ ने ठग के साथ एक महीने तक व्यापार करने का वादा (निश्चय) कर लिया। व्यापार आरम्भ हुआ प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अठारह दिन तक तो सेठ ने क्रमशः 1, 2, 4, 8.....1, 31, 72 रु. (एक लाख 31 हजार 72 रुपये) देने पड़े , 19 वें दिन 2 लाख यानि 62

हजार 144 रु., 20 वें दिन 5 लाख 24 हजार 288 रुपये देने पड़े। सेठजी को हानि होने लगी। इस प्रकार एक महीना मात्र के व्यापार से ही सेठजी कंगाल (गरीब) हो गये। इस व्यापार से सेठजी को पश्चाताप के अलावा कुछ भी हाथ नहीं लगा। उसी प्रकार यह जीव तृष्णा के वश में होकर भोगों को भोगता है और शान्ति प्राप्त करना चाहता है परन्तु भोगों को भोगने के बाद भी तृष्णा दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती जाती है और अन्त में वह सेठ के समान पश्चाताप को ही प्राप्त होता है। कहा भी है-

स्त्रीभोगो न सुखं चेतस्संमोहात मात्र-सादनात्।
तृष्णानुबंधात् सन्ताप-रूपत्वाच्च यथाज्वरः॥

अर्थ- जिस प्रकार चित्त को मूर्च्छित करने, शिथिल करने, तृष्णा की संतति का जनक होने से और सन्ताप रूप होने से ज्वर सुख रूप नहीं हो सकता, उसी प्रकार स्त्री संभोग भी चित्त को मूर्च्छित एवं शिथिल करने वाला, तृष्णा की संतति का जनक तथा संताप रूप होने से सुख रूप नहीं हो सकता है ?

सौधर्म इन्द्र अपने जीवन काल में 40 नील शची-इन्द्राणियों के साथ भोग करता है फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती है।

प्रश्न- सौधर्म इन्द्र के एक समय में एक ही शची इन्द्राणी होती है तो वह चालीस नील शची इन्द्राणियों के साथ कैसे भोग कर सकता है?

उत्तर- हाँ, यद्यपि सौधर्म इन्द्र के एक समय में एक ही शची इन्द्राणी होती है लेकिन सौधर्म इन्द्र की आयु से इन्द्राणी की आयु अल्प होने के कारण उसे अपने जीवन काल में 40 नील शची इन्द्राणियाँ प्राप्त हो जाती हैं क्योंकि एक शची का वियोग होने के कुछ समय बाद दूसरी शची का संयोग हो जाता है। सौधर्म इन्द्र की आयु लगभग दो सागर प्रमाण है तथा शची की आयु 5 पल्य प्रमाण है। 10 कोड़ा-कोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है। अतः सौधर्म इन्द्र की आयु बीस कोड़ा-कोड़ी अद्धापल्य प्रमाण प्राप्त होती है। इन 20 कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों को इन्द्राणी की आयु पाँच पल्योपम से अपवर्तित (भाजित) करने पर 40 नील प्रमाण संख्या प्राप्त होती है।

तिलोयपण्णत्ति में यतिवृषभाचार्य जी ने लिखा है कि वह सौधर्म इन्द्र विक्रिया सहित 51 करोड़, 22 लाख, 88 हजार, 13 (51, 22, 88, 013) देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा करता है। लोकपाल के साढ़े तीन करोड़ प्रतीन्द्र, सामानिक तथा त्रायस्त्रिंश देवों के भी इन्द्र के समान ही देवांगनायें हैं। वे देव उनके साथ मनुष्यों के समान काय से प्रवीचार (मैथुन सेवन) करते हैं लेकिन उनकी वासना शान्त नहीं

होती है तो सामान्य मनुष्यों के तो एक पत्नी होती है और वह भी कुछ समय के लिए ही है क्योंकि मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु अल्प (उत्तम भोगभूमि की अपेक्षा) प्रमाण मात्र है और कर्मभूमियाँ मनुष्यों की एक पूर्व कोटि (उत्कृष्ट आयु) वर्ष प्रमाण (चतुर्थकाल की अपेक्षा) आयु है। यहाँ पंचमकाल में तो मात्र 120 वर्ष प्रमाण आयु है, वह भी हर मनुष्य को प्राप्त नहीं होती है, फिर भी आज मानव समुद्र के जल के समान स्वर्ग-सुखों से भी तृप्त नहीं होने वाली वासना रूपी तृषा को ओस बिन्दु के समान वर्तमान में प्राप्त अल्प भोग-सामग्री से तृप्त करने का प्रयास कर रहा है, उसका यह प्रयास उस मूर्ख के समान है जो बालुका को पेल कर तेल प्राप्त करना चाहता है तथा पानी को बिलोकर घी प्राप्त करना चाहता है। इसी बात को आचार्य समन्तभद्रस्वामी श्री कुंथुनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए स्वयंभूस्तोत्र में कहते हैं -

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शांतिरासा-
मिस्टेन्द्रियार्थ - विभवैः परि- वृद्धिरेव।
स्थित्यैव काय - परितापहरं निमित्त-
मित्यात्मवान् विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत॥

अर्थ - विषय आकांक्षा रूपी अग्नि की ज्वालायें इस जीव को सब ओर से जला रही हैं, इष्ट इन्द्रियों के विषयों से इन विषय-आकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालाओं की शान्ति नहीं होती है किन्तु सब ओर से वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है। यह शरीर के संताप को हरण करने में मात्र निमित्त कारण है, विषयाकांक्षा रूपी अग्नि ज्वाला को उपशम करने वाला नहीं है।

हे भगवन्! यह सब विचार करके ही आप जितेन्द्रिय होते हुए विषय-सुख से पराङ्मुख हुए।

नीतिज्ञ भी अनीतिज्ञ बना :

परस्त्री में आसक्त हुआ यह मूर्ख मानव उस स्त्री का ध्यान करता है, कभी उसके वियोग में दौड़ता है, कभी उसको सन्निकट समझ काँपता है, कभी उसके नहीं मिलने पर खोजते-खोजते शान्त और क्लान्त हो मर जाता है। कभी वियोग में रोता है, कभी उसकी प्रसन्नता समझ दीन वचन बोलता है, गीत गाता है और नाचता है, कभी मूर्च्छित हो जाता है। कभी रुष्ट तो कभी संतुष्ट होता है, कभी दास बनता है, कभी खेत जोतता है। इस प्रकार से वह हतबुद्धि नीच से नीच क्रियाएँ करता है। काम से पीड़ित व्यक्ति समस्त शास्त्रों का वेत्ता होने पर भी कुलीन पुरुषों के अयोग्य कार्य कर लेता है। वह हितैषी जनों के हितकारक वचनों को भी नहीं सुनता है।

जिनके पास काम की समस्त बाधायें नष्ट हो गयी हैं, ऐसे ज्ञानीजन, कामीजन को इष्ट वस्तु के वियोग में चिन्तन, कीर्तन, भाषण, केलि, स्पर्शन, दर्शन, विभ्रम और हास्य इन आठ भेदों वाली काम बाधायें बताते हैं। 'पद्मपुराण' में रावण का कथन आता है।

रावण नीतिज्ञ, तीन खण्ड का अधिपति, प्रतिनारायण, महापराक्रमी, बहुरूपिणी आदि अनेक विद्याओं का स्वामी था। उसने भी बलभद्र रामचन्द्र की पटरानी सती सीता के रूप पर आसक्त होकर छल से उसका हरण करके अपनी कीर्ति पर कलंक लगाया। सीता को अपने प्रति आकर्षित करने के अनेक उपाय किये, यहाँ तक कि भिखारी के समान दीन वचनों से प्रार्थना भी करने लगा और राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध करके अन्त में लक्ष्मण के बाणों से मरकर तीसरे नरक में आज तक भयंकर दुःखों को भोग रहा है। उसी प्रकार राजा मधु, वीरसेन की पत्नी चन्द्रकला के समान महारूपवती मधुरभाषिणी चन्द्राभा को देखकर मोहित हो गया। यद्यपि राजा मधु की बुद्धि शास्त्रों में पारंगत एवं दृढ़ थी तथापि चन्द्राभा को देखकर वह राग रूप हो गया। जैसे चन्द्रकान्त मणि दृढ़ (कठोर) होती है परन्तु चन्द्रमा की किरणों से आर्द्र (पानी से युक्त) हो जाती है। उसी प्रकार दृढ़ सदाचारी भी स्त्री को देखने से पिघल जाता है। रागान्ध मधु चन्द्राभा को हरने का विचार करने लगा। वह बुद्धिमान और स्वाभिमानी था, तथापि मंदबुद्धि हो गया, उसने चन्द्राभा को प्राप्त करने के लिए छल से बसंतक्रीड़ा में सभी राजाओं को बुलाकर योग्य उपहार देकर विदा कर दिया और चन्द्राभा को बहाना (इसके गहने तैयार नहीं हुए हैं) बनाकर रोक लिया और वीरसेन के जाने के बाद अपनी पटरानी बना लिया जिससे उसका पति वीरसेन उसके वियोग रूप अग्नि की दाह को प्राप्त हुआ और पागल हो गया और पृथ्वी पर भ्रमण करता हुआ, हाय चन्द्राभा! हाय चन्द्राभा! ऐसे विलाप करता हुआ गाँव-गाँव, गली-गली में भ्रमण करते हुए अयोध्या आया। तभी झरोखे में बैठी चन्द्राभा अपने पति को इस हालत में देख राजा मधु से बोली - ''देखो मेरा पूर्व का पति कितना दुःखी हो रहा है।'' राजा ने इस बात को सुनकर भी अनसुना कर दिया। उसी समय कुछ लोग एक परस्त्रीगामी पुरुष को पकड़कर लाये। राजा ने उसकी पूरी बात सुनकर उसे सिर छेद का दण्ड दिया तब चन्द्राभा ने एकान्त में राजा को परस्त्री-हरण का दोष याद दिलाया, जिससे राजा का विवेक जागृत हुआ और उसने उस दोष को सदा के लिए छोड़ दिया।

सारांश- परस्त्री में आसक्त व्यक्ति नीतिज्ञ, परोपकारी होने पर भी किसी से सम्मानित नहीं होता है और वह बड़े-बड़े कार्यों को करने के बाद भी पग-पग

पर तिरस्कार का पात्र होता है। प्रजा का न्याय और हित करने वाला होकर भी स्वयं हित के मार्ग से च्युत होकर अन्याय के गर्त में गिर जाता है। रावण का भाई विभीषण रावण को छोड़कर रामचन्द्र की सेना में जाकर मिल गया। क्योंकि रावण ने परस्त्री पर गलत दृष्टि डाली थी। इसी प्रकार राजा मधु को सब हीन दृष्टि से देखने लगे थे। अतः अपने कुल, धर्म, प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़कर सभी स्त्रियों को माँ, पुत्री और बहिन के समान देखना चाहिए। स्त्रियों को भी अपने पति को छोड़कर सभी को भाई, पिता और पुत्र के समान देखना चाहिए।

क्रमशः पतन की ओर :

(स्त्रियों के गीत, नृत्य, हावभाव आदि देखना तथा उनकी विनय करना, उनके साथ घूमना आदि क्रियायें मनुष्यों के मन को पिघला देती हैं। स्त्री के संग से पुरुष का मन मर्यादा को तोड़ देता है।) वह मोहित हुआ रतिक्रीड़ा के लिए उत्कण्ठित हो उठता है। जिस पुरुष में धैर्य, सत्व अल्प है, उस पुरुष का मन स्त्रियों के संसर्ग से नष्ट(विकारयुक्त) हो जाता है। स्त्रियों के जघन भाग, स्तन, मुखादि को देखने से उसका चित्त अत्यन्त चंचल हो जाता है, मन चंचल होने पर लज्जा समाप्त होती है, वह स्त्री की स्तुति करने लगता है फिर गुरुजनों का भय समाप्त होकर निःशंक हो जाता है, वह स्त्री पर नियम से विश्वास करता है। विश्वास होने पर परस्पर मन मिलता है, उससे प्रणय होता है फिर उस पुरुष को स्त्री में परम रति होती है। नारियों को देखने से, उनके निकट आने-जाने से तथा उसके साथ भाषण प्रतिभाषण करने से, पुरुषों का मन उनके प्रति आकर्षित हो जाता है, जैसे चुम्बक लोहा आदि आकर्षित होता है। नारियों के हास्य, मन्द मीठी मुस्कान और लीलापूर्वक गमन आदि क्रियाओं से उनके साथ देशादि में गमनागमन करने से पुरुष का मन चंचल हो जाता है, मन के हरने वाले कोमल वाक्यों द्वारा, हृदय के लिए सन्तुष्टिकारक वचनों के द्वारा तथा उन स्त्रियों के साथ विश्वास युक्त भाषण करना, मदभरी चाल चलना, कमर पर हाथ रखकर खड़े होना, शरीर की कान्ति, क्रीड़ा, मजाक, दो भौहों के बीच के भाग को सिकोड़ना, सम्मोहन इन क्रियाओं के द्वारा टेढ़ी नजर से देखना आदि स्त्रियों की चेष्टाओं से पुरुषों का वैराग्य नष्ट हो जाता है, जैसे जिनके शरीर का स्पर्श किया गया ऐसे क्रुद्ध सर्पों के द्वारा मनुष्य नष्ट हो जाता है।

सर्वप्रथम स्त्री पर दृष्टि पड़ती है, तत्पश्चात् चित्त मुग्ध होता है, चित्त मुग्ध होने पर मनुष्य, स्त्री की कथा और उसके गुणकीर्तन में लग जाता है, गुणकीर्तन के पश्चात् दोनों में परस्पर प्रेम स्नेह की अतिशयता से प्रेम ग्रन्थि बढ़ जाती है,

तत्पश्चात् चित्त स्नेह की सीमा पर स्थित हो उत्कण्ठित रहता है कि कब मिलाप हो, पूर्वोक्त प्रकार से तथा दान-दक्षिणा विश्वासादि से दोनों के शरीर में कामवृद्धि होती है और शाखा-उपशाखाओं का अवलम्बन पाकर उनकी प्रीति रूपी लता विस्तृत हो जाती है। तत्पश्चात् निःशंक संग का लोलुप मन परस्पर एक हो जाता है और प्रेम के प्रसार से पीड़ित होकर लज्जा नष्ट हो जाती है। दोनों एकान्त स्थान पाते ही निःशंक हो हास्य रूप वार्तालाप करते रहते हैं, उसके बाद दर्शन-स्पर्शन आदि ईंधन से उत्पन्न हुई कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। तत्पश्चात् मनुष्य उस कामरूपी आग से बाद में तो शरीर और अन्तरंग में चित्त के अतिशय दाह रूप होने से बिना विचारे ही पापकार्य में प्रवर्तने लग जाता है। इस प्रकार अनुक्रम से स्त्री के संसर्ग से मनुष्य की पापकर्म में प्रवृत्ति हो जाती है।

यह मूर्ख मनुष्य इस बात को नहीं जानता है कि मदन के वेग से उन्मादयुक्त होकर स्त्रियाँ अपने कुल और घर को क्षण भर में मलिन कर देती हैं। निर्दयता, अनार्यता, मूर्खता, अतिचंचलता, वंचकता और कुशीलता इतने दोष प्रायः स्त्रियों में स्वाभाविक होते हैं ये स्त्रियाँ व्यभिचारी पुरुषों में विचरण करके अपने कुलक्रम (कुल परम्परा) का उल्लंघन कर देती हैं तथा अपने गुरु, मित्र, पति, पुत्र आदि का स्मरण तक नहीं करती हैं। आचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि कुल जाति गुण से भ्रष्ट, निकृष्ट, दुश्चरित्र, अस्पृश्य और नीच पुरुष ही स्त्रियों को प्रिय होता है क्योंकि प्रायः ऐसा ही देखने में आता है कि स्त्रियों को छोड़कर नीच पुरुष से प्रीति कर लेती है।

वज्र से भी कठोर स्त्री :

आभीर देश के नासिक्य नगर में सागरदत्त सेठ नागदत्ता सेठानी के साथ रहता था। उसके श्रीकुमार-पुत्र एवं श्रीषेणा नामक कन्या थी। उनके यहाँ गायों को चराने वाला नन्द नाम का ग्वाला रहता था। नागदत्ता उस ग्वाले पर मोहित थी। वह उसके साथ अनुचित सम्बन्ध रखती हुई अपनी वासनाओं की पूर्ति करने लगी। कुटिल नागदत्ता ने अपने पति को अपने मार्ग का काँटा समझ उसे निकालने के लिए एक दिन नन्द ग्वाले से कहा कि मेरा पति अपने भोग-विलास में काँटा है अतः इसको मार डालना चाहिए। तुम आज गायें चराने जंगल मत जाना, बहाना कर देना कि मुझे बुखार चढ़ा है तब मैं अपने पति को गायें चराने के लिये भेजूँगी, थोड़ी देर बाद तुम वहाँ जाकर खंजर से उसका सिर धड़ से अलग कर देना। नागदत्ता की तरह नन्द ग्वाला भी भयंकर पापी था। उसने नागदत्ता की बात स्वीकार कर ली और बुखार का बहाना बनाकर गायें चराने नहीं गया। सरल परिणामी सेठजी

नागदत्ता के षड्यंत्र से अनभिज्ञ थे अतः पत्नी के कहने पर गायों को लेकर जंगल में चले गये। जब गायें इधर-उधर चरने लगीं तो सेठ वृक्ष के नीचे सो गया। कुछ देर बाद नन्द आया और सेठ को सोया देखकर उसने खंजर से उसका सिर काट डाला। सेठ ने तड़फते-तड़फते प्राण छोड़ दिये। सेठ के मरने पर नागदत्ता नंद के साथ अपनी नीच मनोवृत्तियों को स्वच्छन्दता और निर्भयता पूर्वक पूर्ण करने लगी। श्रीकुमार भी लज्जा से मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा। श्रीकुमार ने एक दिन अपनी माता को खूब डाँटा और निंद्य कर्म करने से रोका पर माँ चोट खायी नागिन जैसी फुँफकारती रही और नन्द से एकान्त में बोली, श्रीकुमार को भी मार डालना चाहिए क्योंकि यह भी हमारे मार्ग में एक शूल है। यह षड्यंत्र श्रीषेणा ने सुन लिया। एक दिन नन्द गाय चराने नहीं गया। तब श्रीकुमार गायें लेकर जंगल जाने लगा, तब उसकी बहिन श्रीषेणा ने माँ का षड्यंत्र श्रीकुमार को बताकर सावधान करने के लिए कह दिया। श्रीकुमार ने कहा, ''बहिन! मैं अपनी रक्षा कर लूँगा।'' इस प्रकार विश्वास दिलाकर गायें लेकर वह जंगल में चला गया। उसने जंगल में छोटी-बड़ी लकड़ियाँ बटोरकर उसका एक कृत्रिम आदमी बनाया और ऊपर से अपनी धोती पहना दी जिससे ऐसा लगता था कि 'कोई सो रहा है' और श्रीकुमार झाड़ी में छिपकर बैठ गया। कुछ देर बाद नन्द आया और उसने समझा कि श्रीकुमार सो रहा है। अतः झट से तलवार निकालकर उसकी गर्दन काट ली, उस समय श्रीकुमार झाड़ी में से निकलकर चुपचाप दबे पाँव आकर पीछे से नन्द की पीठ में भाला घोंप दिया, जिससे वह वहीं मर गया। संध्या को श्रीकुमार गायें लेकर घर आया, तब नागदत्ता ने पूछा -''बेटा! क्या नन्द नहीं आया। मैंने तेरे को देखने के लिए जंगल में भेजा था।'' श्रीकुमार ने कहा-''माँ''! मुझे यह नहीं मालूम था कि नन्द कहाँ पर है, इस भाले से पूछ लो, यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देगा।'' नागदत्ता भाले को खून से सना देख क्रोधित हो उठी। उसका दिल धड़कने लगा। उसके क्रोध की सीमा नहीं रही, उसने आव देखा न ताव और पास में रखे हुए मूसल को उठाकर श्रीकुमार के सिर पर जोर से मारा, जिससे श्रीकुमार का सिर फट गया और वह उसी समय मर गया। अपने भाई की इस प्रकार की निर्मम हत्या देख श्रीषेणा से नहीं रहा गया। उसने माँ के हाथ से मूसल छुड़ाकर उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फट गया और उसके प्राण-पखेरु उड़ गये।

❑❑❑

7. ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय और लाभ

किसी भी श्रेष्ठ वस्तु को विनाश से बचाने के लिए उसकी सुरक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है तथा सुरक्षा के समीचीन उपायों के अभाव में उसकी सुरक्षा असम्भव है। अतः समीचीन उपायों को एकत्र कर उनका सही प्रयोग करना चाहिए। आज महिलायें अपने ब्रह्मचर्य व्रत को सुरक्षित तो रखना चाहती हैं लेकिन अपने शरीर को कृत्रिम पदार्थों से संस्कारित करके सुन्दर बनाना नहीं छोड़ती हैं। महापुराण में कथन आता है कि जब सीता को रावण हरण करके ले गया था तब सीता रावण के उद्यान में बैठी विचार करती है-''हे भगवन्! मेरे इस रूप को धिक्कार है जिसके कारण मेरे शील पर आपत्ति आई है। मेरा शील खतरे में आ गया, मुझे ऐसा रूप नहीं चाहिए जिसको देखकर लोगों के मन में विकार उत्पन्न हो। हे प्रभो! मुझे यह रूप नहीं मिलता तो अच्छा था, जिससे मैं अपने शील को तो अच्छी तरह सुरक्षित रख सकती थी,'' आदि अनेक प्रकार से अपने रूप का खेद करती है लेकिन बड़े दुःख की बात है कि आज सीता को आदर्श मानने वाली हमारी बहिनें स्वयं रूपवती सुंदर नहीं होने पर भी अपने आपको सुन्दर दिखाने के लिए मुँह पर पाउडर, होठों पर लिपिस्टिक, नाखूनों पर नेल पॉलिश एवं दाँतों को चमकीला बनाने के लिए टूथपेस्ट आदि अनेक सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करती हैं। उन्होंने कभी सोचा भी है कि जो पाउडर, क्रीम आदि वे मुँह पर लगाती हैं उनमें अण्डे की जर्दी आदि हिंसात्मक वस्तुओं का प्रयोग होता है। लिपिस्टिक में बन्दर के खून का इस्तेमाल किया जाता है। नेल पालिश में मछली का तेल तथा 99 प्रतिशत टूथपेस्टों में हड्डियों का चूरा डाला जाता है। क्या इन पदार्थों का प्रयोग करते हुए हम अपने आपको शाकाहारी कहने के अधिकारी हैं ? टूथपेस्ट से बनाये गये चमकीले दाँत स्त्रियों के रूप को निखार कर लोगों को आकर्षित करते हैं।

जैनाचार्यों ने साधुओं के 28 मूलगुणों में एक अदन्तधावन तथा एक अस्नान नाम का मूलगुण भी बताया है। उसमें अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि इन मूलगुणों का पालन करने से शरीर की सुन्दरता न बढ़े, जिससे शरीर में विशेष राग उत्पन्न न हों। महिलायें अपने बालों को काले, चमकीले तथा कोमल बनाये रखने के लिए 'शेम्पू' का प्रयोग करती हैं। क्या आप जानती हैं कि 'शेम्पू' को बनाकर उसका परीक्षण बिज्जू या खरगोश की आँखों पर किया जाता है, जिससे सैंकड़ों बिज्जू शेम्पू की तीक्ष्ण वेदना को सहते हुए तड़फ-तड़फ कर प्राण छोड़ देते हैं या जीवन भर के लिए अंधे हो जाते हैं। बहुत सी महिलायें अपनी सुन्दरता को

बढ़ाने के लिए सिल्क की साड़ियाँ पहनती हैं। उन साड़ियों को बनाने के लिए एक सौ ग्राम रेशम में पंद्रह सौ रेशमी कीड़ों की हत्या की जाती है। कई बहिनें शरीर को सुगन्धित, साफ सुथरा बनाये रखने के लिए स्नान करते समय विविध प्रकार के साबुनों के प्रयोग करती हैं, जिनमें सूअर, गाय आदि की चर्बी का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार और भी सैंकड़ों प्रकार के सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग किया जा रहा है। वे इन साधनों का प्रयोग करके मात्र पाप का अर्जन करती हैं तथा दुर्गति की पात्र बनती हैं। क्या हिंसा से बने इन सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग करने से ब्रह्मचर्य सुरक्षित रह सकता है? नहीं, सुरक्षा की बात तो बहुत दूर है अपितु शरीर को शृंगारित करने से कामान्ध व्यक्ति की दृष्टि अधिक आकर्षित होती है और शील खतरे में पड़ जाता है। प्राचीन काल में स्त्रियों का शृंगार मात्र अपने शयन कक्ष तक ही सीमित रहता था और आज भी राजपूत घराने की कई स्त्रियाँ जब अपने मायके जाती हैं तो मात्र बिन्दी और बिछिया को छोड़कर कोई विशेष शृंगार नहीं करती हैं, क्योंकि उनका विचार है कि हमारा शृंगार मात्र पति के लिए है, अन्य के लिए नहीं। अन्य पुरुषों के सामने शृंगार करने से हमारा शील खतरे में हो जाता है। अतः शृंगार को छोड़ना चाहिए जिससे शील की रक्षा हो और पापों से भी बचा जा सके।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र के सातवे अध्याय में ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाओं का वर्णन करते हुए लिखा है:-

''स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्ट-रस-स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च''

1. स्त्रीरागकथा-श्रवण-स्त्रियों की रागभरी कथाओं को सुनने का त्याग।
2. उनके मनोहर अंगों को बार-बार देखने का त्याग।
3. पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण करने का त्याग।
4. गरिष्ठ भोजन का त्याग।
5. अपने शरीर को संस्कारित करने का त्याग।

ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनायें हैं। इन भावनाओं का निरन्तर चिन्तन करते रहने से ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा होती है।

स्त्री को विकार भाव से देखने का त्याग करना, स्त्री से राग बढ़ाने वाली कथा का त्याग करना, खाद्य-स्वाद्य-लेह्य-पेय चार प्रकार का आहार छोड़कर उपवास करना, भरपेट न खाकर कम खाना, दूध, दही, मीठा, घी, नमक, तेल इन छहों रसों को या इनमें से कुछ रसों को त्यागना, स्वाद की इच्छा छोड़कर भोजन करना, स्नान-विलेपन नहीं करना, पानादि नहीं खाना, कामभावपूर्वक स्त्रियों की

सेवा नहीं करना, अन्दर उठी हुई इच्छाओं को रोकना तथा कामसेवन का बार-बार स्मरण नहीं करना। ये काम के महाशत्रु हैं। इस प्रकार का आचरण करने से तथा बार-बार विचार करने से कामशत्रु नष्ट हो जाता है। महीने में चार उपवास करने चाहिए। उपवास करने से इन्द्रियों का मद मिट जाता है, शरीर का विकार शान्त हो जाता है, कामदेव स्वयं प्रशम भाव को प्राप्त हो जाता है। अल्प भोजन करने से भी इन्द्रियाँ वश में रहती हैं। रसों को छोड़ते रहने, चटपटे पदार्थों का सेवन न करने से इन्द्रियाँ उन्मत्त नहीं होती हैं। तैल, उबटन, चन्दन, सुगंधित पदार्थ आदि लगाकर तथा मल-मल कर स्नान करने से काम-राग बढ़ता है। पान ताम्बूल विशेष रूप से काम बढ़ाने वाले होते हैं।

एकान्त में स्त्री (पुरुष) के साथ नहीं उठना-बैठना, हास्य, वार्तालाप नहीं करना एवं सादगी से रहना भी वासना को जीतने का एक उपाय है, बार-बार नारियों के विषय में यह चिन्तन करना चाहिए कि-

नारी नसावे तीन गुण, जो नर पास ही होय ।
भक्ति, मुक्ति, निज-ध्यान में, बाधा अति ही होय॥

अर्थ- स्त्रियाँ मनुष्यों में ही होने वाले भक्ति, मुक्ति (मोक्ष) और आत्म-ध्यान इन तीनों गुणों को नष्ट करने वाली हैं। अर्थात् नारी का ध्यान रहते हुए मनुष्यों की जिनेन्द्रदेव में उत्कृष्ट भक्ति, मोक्ष की प्राप्ति के लिए रत्नत्रय की आराधना एवं धर्मध्यान, शुक्लध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

ब्रह्मचारी क्या विचार करता हुआ काम से विरक्त होता है, यह बताते हुए स्वामी समन्तभद्राचार्य ने ''रत्नकरण्डकश्रावकाचार'' में लिखा है:-

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धिवीभत्सम् ।
पश्यन्नंगमनंगात् विरकति यो ब्रह्मचारी सः॥

अर्थ-(मलबीज) इस शरीर का बीज मल है अर्थात् यह शरीर माता के रज और पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ है। इसलिये इसका बीज (उत्पत्ति का मूल कारण) मल है, (मलयोनि) मल का योनिस्थान है, अर्थात् इससे निरन्तर मल की ही उत्पत्ति होती है। (गलन्मलं) शरीर से निरन्तर मल झरता रहता है। इसमें से मुख, नासिका के दो छिद्र, दो आँख, दो कान, मलद्वार और मूत्रद्वार इन नौ द्वारों से निरन्तर गन्दगी (मल) झरती रहती है और पूरे शरीर से पसीना निकलता है। यह शरीर (पूति-गंधि) दुर्गन्ध तथा (वीभत्सम्) ग्लानि को उत्पन्न करने वाला है। शरीर की ऐसी स्थिति का विचार करते हुए जो काम से विरक्त होता है, वही ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी है।

❑ **संयम के आठ शत्रु :**

आयुर्वेद में शील को सुरक्षित रखने के लिए संयम के आठ शत्रु बताये गये हैं:-

1. कामुक क्रिया या विचारों को स्मरण करना अथवा पत्नी का स्मरण करना।
2. कामुक क्रिया एवं अश्लील बातें करना या इससे सम्बन्धित विचार-विमर्श करना।
3. कामुक छेड़-छाड़, इशारे, हँसी-मजाक या हाथा-पाई आदि करना।
4. छिपकर ऐसे व्यक्ति या दृश्य को देखना जिससे कामोत्तेजना पैदा हो।
5. गुपचुप एकान्त में छिपकर कामुक बातें करना।
6. काम-क्रीड़ा करने का संकल्प करना, विचार करना।
7. कामुक-क्रीड़ा के साधन जुटाना।
8. जान-बूझकर ऐसा प्रयास या कोई क्रीड़ा करना जिससे वीर्यपात हो।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सिर्फ दो काम करना काफी है :

1. संयम के (ऊपर बताये गये) आठ शत्रुओं से सदा बचे रहना।

2. यदि कभी कामवासना उत्पन्न हो जावे तब विवेक से काम लेकर किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो जाना यानी अकेले न रहकर कुछ काम करने लगना या किसी के पास बैठकर उससे बातें (धार्मिक चर्चादि) करने लगना अथवा भक्तामर, कल्याणमंदिर, वैराग्यवर्धक स्तुति-पाठ आदि जो कोई पाठ आपको अच्छा लगता हो उसका घोषपूर्वक जोर-जोर से पाठ करना ताकि ऐसे विचार, ऐसी इच्छा तुरन्त समाप्त हो जावे। बस इन दो उपायों से ही कामशत्रु को परास्त किया जा सकता है। ''नान्यः पन्था विद्यतेऽनया'' इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है। विवेक से काम लेने पर नियम से इन्द्रियाँ वश में होती हैं। जैसे अपनी सुन्दर युवा बहिन या बेटी को देखने और उसके सम्पर्क में रहने पर भी अपने मन में कामुक विचार नहीं आते क्योंकि विवेक ऐसा विचार करने नहीं देता है। मन को वश में रखने के लिए विवेक अति आवश्यक है क्योंकि विवेक ही मन को सही विचार करने की प्रेरणा देता है और सही आचरण करने के लिए विवश करने की क्षमता रखता है। विवेक के साथ धैर्य भी आवश्यक है क्योंकि धर्म, विवेक का सहचारी होता है। धैर्य के बिना विवेक शीघ्र ही समाप्त हो जाता है।

'मरणकण्डिका' में अमितगति आचार्य कहते हैं कि -

ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन में पुरुषों के लिए स्त्रियों से वैराग्य होना

आवश्यक है। वहाँ स्त्री से वैराग्य के पाँच निमित्त बताये हैं-

1. कामदोष विचार
2. स्त्रीदोष विचार
3. शरीर की अशुचिता का विचार
4. स्त्री-संसर्ग दोष विचार
5. वृद्धसेवा

1. काम-दोष विचार :

कामरूपी अग्नि प्रज्ज्वलित होने पर मेघ के समूहों का सिंचन करने पर भी दूर नहीं होती है। यह काम ज्येष्ठ महीने के मूल नक्षत्र में बादल रहित आकाश में प्रकाशमान मध्याह्न के सूर्य से अधिक संतापित करता है। यह सर्वप्रथम जीवों के हृदय में प्रज्ज्वलित होता है, तत्पश्चात् जब वृद्धि को प्राप्त होता है तब शरीर के अंगोपांगों को भस्म (क्षीण) कर देता है। जिस प्रकार सर्प के काटने से व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है, उसी प्रकार कामरूपी विष से व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है। इस जगत् में वीर एक मात्र 'काम' ही है। वह अद्वितीय योद्धा है क्योंकि जिसका पराक्रम अचिन्त्य है, जिसने अवज्ञा मात्र से इस जगत् को अपने पाँवों तले दबा लिया है, जिसका पराक्रम अखंडित है, ऐसा यह काम अकेला ही इस चराचर स्वरूप जगत् को अपनी शक्ति से भंगता (नाश) को प्राप्त कराता है। आचार्य महाराज कहते हैं कि इस कामरूपी विष को मैं कालकूट विष से भी अधिक महाविष मानता हूँ , क्योंकि जो कालकूट विष है वह तो उपाय करने पर मिट जाता है परन्तु कामरूपी विष उपाय करने पर भी नहीं मिटता है। सम्पूर्ण संसारी जीव कामज्वर के दाह से उत्पन्न हुई तृषा से पीड़ित होकर अनन्त कष्टों के समूह दुर्गम संसार रूपी मरुस्थल में दुःख सहन करते हैं। कामरूपी सिंह से प्रेरित हुआ यह मनुष्य योगियों से निन्दित, पाप से भरे, अतिशय क्रूरता रूप तथा घृणास्पद कार्य को भी करता है। प्रकोप को प्राप्त हुआ यह कामरूपी बैरी लोगों को दिशामूढ़ अथवा विभ्रम करता है तथा उन्मत्त और भयभीत करता है, इष्ट कार्यों से विमुख करता है। कामरूपी अग्नि से ग्रसित हुआ व्यक्ति जानते हुए भी नहीं जानता है और देखते हुए भी नहीं देखता है। सर्प के काटे हुए के तो सात ही वेग होते हैं परन्तु कामरूपी सर्प से डसे हुए जीवों के सामान्य से दस वेग होते हैं, विशेष से अनेक वेग हैं।

गौरसंदीव की घोर भ्रान्ति :

श्रावस्ती नगरी के राजा द्वीपायन का दूसरा नाम गौरसंदीव था। एक दिन वह राजा वनक्रीड़ा के लिए जा रहा था। मार्ग में एक आम्रवृक्ष को मंजरी से भरा

देख उसने एक मंजरी कौतुकवश तोड़ दिया और आगे निकल गया। पीछे से आने वाले जनसमुदाय ने राजा का अनुसरण करते हुए आम्रवृक्ष की एक-एक मंजरी तोड़ी, पुनः पत्ते तथा डालियाँ भी नष्ट कर दीं। राजा वनक्रीड़ा कर लौटा तो उस आम्रवृक्ष को ठूँठ सा खड़ा देख वैराग्य को प्राप्त हो गया और उसने जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली। एक दिन वे मुनिराज विहार करते हुए उज्जयिनी में आहारार्थ पहुँचे। किसी एक घर के आँगन में वे प्रविष्ट हुए। वह घर कामसुंदरी वेश्या का था। वेश्या को देख मुनिराज मोहित हो गये और वहीं रहने लगे। बारह वर्ष व्यतीत होने के बाद किसी दिन पैर के अँगूठे पर कुष्ठ देख वैराग्य भाव जागृत हो गया और उन्होंने पुनः दीक्षा ले ली। इस प्रकार गौरसंदीव मुनि वेश्या को देखने मात्र से काम के वश में होकर भ्रष्ट हो गये थे।

जिसके कामरूपी काँटा चुभता रहता है वह प्राणी उठने, बैठने, सोने, चलने, भोजन करने आदि में स्थिरता प्राप्त नहीं करता है। कामी पुरुष कामिनी के नहीं मिलने पर विष, शस्त्र, अग्नि आदि से शीघ्र ही आत्महत्या कर लेता है, काम से ठगा हुआ चतुर मनुष्य मूर्ख बन जाता है, क्षमावान क्रोधी हो जाता है, शूरवीर कायर हो जाता है। गुरु लघु तथा उद्यमी भी आलसी हो जाता है। जितेन्द्रिय भी भ्रष्ट हो जाता है। काम रूपी हस्ती निरंकुश है। इस कारण वह मनुष्यों के निरन्तर पूजन योग्य धर्मरूपी वृक्ष को क्षण भर में जड़ से उखाड़ डालता है। काम से पीड़ित पुरुष पर-वधू, सास, पुत्री, धाय अथवा माता, गुरु की पत्नी आदि को भी भोगने की इच्छा करता है। बड़े दुःख की बात है कि पिता भी काम के वशीभूत हो अपनी पुत्री का ही भोग कर लेता है।

पुत्री पर आसक्त अग्निदत्त :

राजा अग्निदत्त के वीरवती रानी से कृत्तिका नाम की पुत्री हुई। जब वह यौवनवती हुई तो राजा उस पर मोहित हो गया। उसने छल से राजसभा में प्रश्न किया कि राजमहल में जो भी पदार्थ हैं, उन सबका स्वामी कौन होता है? मंत्री आदि ने कहा-आप ही तो स्वामी हैं किन्तु वहाँ पर उपस्थित मुनिराजों ने कहा-राजन्! कन्याओं को छोड़कर सभी पदार्थों के स्वामी आप हैं। राजा को मुनियों का यह वाक्य रुचा नहीं ?

रुचता भी कैसे? कामी को कभी गुरु के वाक्य रुचते नहीं। राजा ने जबरदस्ती अपनी पुत्री कृत्तिका के साथ विवाह कर लिया। इसी प्रकार कनकमाला जिसने प्रद्युम्न को बड़े लाड़-प्यार से अपने पुत्र के समान जन्म से ही पाला था, वह भी प्रद्युम्न में कामासक्त हो भोग की याचना करने लगी और प्रद्युम्न द्वारा छल से

ठगी जाने पर उसको मारने का प्रयास करने लगी।

कामान्ध व्यक्ति शीत-उष्ण, भूख-प्यास, स्वाद रहित भोजन आदि को सहन करता है। कामी क्षोभित होता है। खेती करना, फसल-काटना, खलिहान साफ करना, कपड़े सीना, चित्रकारी करना, छेदन-भेदन करना, खरीदना, लकड़ी काटना, छीलना, रंगना, बुनना, गाय-गधे आदि की रक्षा करना, घास-गोबर आदि ढोना, कूटना, झाड़ू लगाना आदि नीच से नीच कार्यों को भी करता है। पर को संतुष्ट करने के लिए कि यह मुझे वांछित स्त्री देगा, बहुत भेद वाले शिल्पों, विविध प्रकार की ठगाई आदि कार्यों को भी करता है।

बड़ा अफसोस है कि विमूढ़ बुद्धि, कामी पुरुष परायी स्त्री को देखकर उसे क्यों चाहने लगता है? अन्य स्त्री को प्राप्त तो नहीं कर सकता किन्तु व्यर्थ ही पापों का संचय करता है। यदि कभी परस्त्री मिल भी जाये तो भी वह अतृप्त ही रहता है और ''कोई देख न लेवे'' यह भय उसे निरन्तर बना रहता है। काम से मोहित हुआ 'कडारपिंग' इस भव में महान् दोष को प्राप्त कर मरा और दुःख-वेदना वाले नरक में चला गया।

प्रियंगुसुन्दरी की सुन्दर युक्ति :

कांपिल्य नगर के राजा नरसिंह के मंत्री सुमति का पुत्र कडारपिंग एक दिन कुबेरदत्त सेठ की सर्वांग सुन्दर प्रियंगुसुन्दरी पत्नी को देख आसक्त हो गया। सुमति मंत्री ने पुत्र का हाल जानकर कामवासना को मन में धिक्कारा किन्तु पुत्र के मोह में आकर प्रियंगुसुन्दरी को प्राप्त करने के लिए उसके पति कुबेरदत्त को उसने द्वीपान्तर भेजना चाहा। प्रियंगुसुंदरी बुद्धिमति थी। उसने ताड़ लिया और अपने पति को समझाया कि यह कामी कडारपिंग की करतूत एवं सुमति मंत्री का षड्यंत्र है। अतः आप द्वीपान्तर जाने का केवल दिखावा करो, आगे की बात मैं सम्हाल लूँगी। कडारपिंग कुबेरदत्त को द्वीपांतर गया समझ रात के समय प्रियंगुसुंदरी के पास आया। उसने (प्रियंगुसुंदरी ने) पाखाने के कमरे को साफ कराके गड्ढे के ऊपर बिना निवार के एक पलंग पर चादर बिछा दी, प्रियंगुसुंदरी ने आये हुए कडारपिंग को उक्त पलंग पर बैठने को कहा। जैसे ही वह पापी बैठने लगा वैसे ही धड़ाम से अत्यन्त दुर्गंधमय पाखाने के मैले में जा पड़ा। अब कडारपिंग को बहुत पश्चाताप हुआ। उसने निकालने के लिए सुन्दरी से बहुत प्रार्थना की किन्तु पाप का फल भोगने के लिए उसने उसे नहीं निकाला। छह माह व्यतीत होने पर कुबेरदत्त ने द्वीपान्तर से आने का बहाना किया। राजा और मंत्री ने उसे जो जल्फ पक्षी लाने को कहा था। सेठ ने पाखाने से कडारपिंग को निकालकर उसके पक्षियों के पंख

लगाकर मुख काला कर हाथ-पैर बाँध पिंजरे में डालकर राजा के समक्ष उपस्थित किया तथा वास्तविक सब वृतान्त कह सुनाया। राजा ने उस पापी को प्राणदण्ड दिया। कडारपिंग मरकर नरक में गया।

मैथुन कृत दोष :

इस संसार में मैथुन के समान कोई निन्दनीय पाप नहीं है। यह पाप दुःख, शोक, संताप और अनेक विपत्तियों का घर है। यदि एक ओर मैथुन-सेवन का पाप रख दिया जाये और दूसरी ओर अन्य समस्त पाप रख दिये जायें तो भी वे सब मैथुन-सेवन की समानता नहीं कर सकते अर्थात् मैथुन-सेवन उन सबसे भी अधिक निंद्य पाप है, नरकादि दुर्गतियों को देने वाला है, कलंक का पात्र है और अपमान का कारण। इससे संभोग रोग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसी के सेवन से जीवों को पद-पद पर तिरस्कार सहना पड़ता है। इसी से धन-धान्य आदि समस्त सम्पदायें नष्ट हो जाती हैं। मैथुन सेवन से मोहित मनुष्य माता को मार डालता है तथा अपनी स्त्री को मारकर परस्त्री रमण करने लगता है। मैथुन के पाप से मनुष्य आत्महत्या तक कर लेता है। सो ठीक ही है क्योंकि पापी जीव कृत्य-अकृत्य का किसी प्रकार विवेक नहीं करते हैं। यह पाप जीवों को जन्म-मरण के दुःख देने वाला है। मैथुनसेवी के 1.जुआ खेलना, 2. माँस खाना, 3. शराब पीना, 4. शिकार खेलना, 5. चोरी करना, 6. परस्त्री-सेवन करना और 7. वेश्यागमन आदि समस्त व्यसनों का समागम शीघ्र हो जाता है तथा उसके तप, ध्यान, दया, सत्य आदि सद्गुण शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। कामरूपी अग्नि से जला हुआ यह मूर्ख पतंगे के समान शीघ्र नष्ट हो जाता है, क्योंकि स्त्री में मोहित होने वाले की बुद्धि श्रेष्ठ कैसे हो सकती है?

जो पुरुष कामरूपी अग्नि से पीड़ित होकर मैथुन से उस पीड़ा को शान्त करने की इच्छा करता है, वह दुर्बुद्धि घृत से अग्नि को बुझाना चाहता है। घृत की घटाओं से सिंचित अग्नि का आलिंगन करना अच्छा है। परन्तु स्त्री के जघन्यस्थल का आलिंगन करना कदापि श्रेष्ठ नहीं है। क्योंकि वह दुर्गति का द्वार है। कामरूपी शीत-ज्वर के भय से नष्ट बुद्धि पुरुष उसके प्रतिकार की वांछा करके स्त्री रूप कर्दम में प्रवेश करता है, परन्तु यह समीचीन उपाय नहीं है। जैसे लोक में दीपक के बुझने पर भी अनेक लोग कहते हैं कि दीपक 'बढ़ गया' इसी प्रकार दुःख रूप मैथुन में सुख की कल्पना कर लेते हैं। निर्दय अथवा ग्लानि रहित पुरुष मैथुनावस्था में कैसा नीच कर्म करते हैं कि स्त्री के मुख से निकली हुई लारों से मैले किये हुए मुख का पान करते हैं। यद्यपि स्त्रियों के अंग अशुचि हैं परन्तु उनमें कामरूपी सर्प

से काटे हुए अचेत पुरुष अतिशय आसक्त हो जाते हैं। उन्हें किञ्चित् भी ग्लानि नहीं आती।

❋ स्त्री दोष विचार :

स्त्रियाँ वाणी में अमृत और हृदय में विष को धारण करती हैं। इन स्त्रियों को स्वभाव से ही कुटिल किसने बनाया है? यह स्त्री मनुष्यों को वज्राग्नि की ज्वाला के समान और साँप की दाढ़ के समान भय सन्ताप देने वाली है, क्रोध से फुँफकार मारती हुई सर्पिणी का आलिंगन करना तो अच्छा है किन्तु कौतुक मात्र से भी स्त्री का आलिंगन करना अच्छा नहीं क्योंकि यदि सर्पिणी काटे भी तो एक बार ही मरण होता है और स्त्री तो नरक की पद्धति स्वरूप है। स्त्री इन्द्रियों के कोप को बढ़ाने वाली है। स्पर्श की हुई वह ऐसा दाह उत्पन्न करती है, जैसा स्पर्श की हुई अग्नि की शिखा भी नहीं करती। स्त्री को प्रसन्न करने के लिए वशीकरण मंत्र, अंजन आदि अनेक प्रकार के तंत्र-मंत्रादि समस्त व्यर्थ हो जाते हैं। वह अगाध क्रोध के वेग से अंधी हुई ऐसा काम करती है कि जिससे शीघ्र ही जगत् दुःखसागर में पड़ जाता है। कामान्ध स्त्रियाँ न तो दान-सुजनता को देखती हैं, न अपने गौरव और प्रतिष्ठा का विचार करती हैं और न अपना व पराया हित देखती हैं किन्तु जो चित्त में आया सो बिना विचारे ही कर बैठती हैं। एक निरंकुश स्त्री ही मनुष्य के लिए वह काम करती है जिसे क्रोधित हुए सिंह, व्याघ्र, सर्प, अग्नि और राजा भी नहीं कर सकते हैं। स्त्री रूपी सर्पिणी ऐसी है कि जिसका पराक्रम अचिन्त्य है क्योंकि लीला मात्र में ही उस अकेली स्त्री ने तीनों भवनों को खण्डित कर दिया है। वह काम से कलंकित हो ऐसा कोई भी महापाप कर बैठती है जिसको न तो किसी ने देखा, न सुना तथा न शास्त्रों में ही जिसकी चर्चा आयी है। विधाता ने यमराज की जीभ, अग्नि की ज्वाला, बिजली तथा विष इन सबका संग्रह करके यह विलासिनी बनाई है। जो महाविद्वान् देव, दैत्य, नाग, हस्ती, ग्रह, चन्द्रमा और सूर्य इन सबकी चेष्टाओं को जानते हैं, वे भी स्त्रियों के चरित्र को नहीं जान सकते हैं, क्योंकि स्त्री-चरित्र अगाध है।

सूली पर स्थित यार के द्वारा जिसका ओष्ठ (ओठ) छिन्न हुआ ऐसी पापी, दुराचारिणी वीरवती ने राजा के पास जाकर झूठ कहा कि मेरे पति ने मेरा ओठ काट लिया है।

वीरवती का दुःसाहस :

दत्त नाम के वैश्य की पत्नी का नाम वीरवती था। वह एक चोर के प्रेम में फँसी थी। एक दिन चोरी करते हुए वह चोर रंगे हाथों पकड़ा गया। उसे राजा ने

सूली पर चढ़ाने की सजा दी। चाण्डाल ने उसे श्मशान में ले जाकर सूली पर चढ़ा दिया। इस कारण वीरवती दुःखी हुई। रात के समय उससे अन्तिम बार मिलने के लिए वह श्मशान में पहुँची, ऊँचे स्थान पर स्थित सूली पर चढ़े हुए चोर का आलिंगन करने के लिए उसने अधजली लकड़ियाँ और शव इकट्ठे किये और उन पर चढ़कर उससे मिलने लगी। इतने में नीचे से लकड़ियाँ खिसकने लगीं और वह अकस्मात् नीचे गिर पड़ी जिससे उसका ओंठ चोर के मुँह में रह गया और दाँतों से वह कट गया। वह दुष्टा दौड़कर चुपके से घर लौटी और उसने शोर मचाया कि मेरे पति ने मेरा ओंठ काट डाला है। राजा के पास शिकायत गयी। उसने पति को दंडित करना चाहा किन्तु इतने में किसी तरह से रहस्य का पता चल गया। तब राजा ने निरपराध दत्त को छोड़ दिया और दुराचारिणी वीरवती का मुख काला कर सिर के केशों का मुण्डन करवा के उसे गधे पर बैठाकर उसको अपने देश से बाहर निकाल दिया।

जो तत्त्वज्ञानी सुख-दुःख, जय-पराजय और जीवन-मरण आदि को निमित्त ज्ञान के बल से जानते हैं, वे भी स्त्रियों की चेष्टा जानने में असफल होकर मोह को प्राप्त होते हैं। यद्यपि समुद्र और आकाश अपार है तथापि जहाज पर बैठने वाले समुद्र के अंत को और ग्रह, नक्षत्र आदि आकाश के अंत को प्राप्त हो सकते हैं परन्तु स्त्रियों के दुश्चरित्र का पार कोई भी नहीं पा सकता है। स्त्रियाँ ऐसी निर्दय हैं कि क्षण मात्र में अपने पति, पिता, पुत्र आदि को संदेह की तुला पर चढ़ा देती हैं। कई पुरुष वन में व्याघ्र को, आकाशगामी पक्षी आदि को तथा नदी, तालाब आदि में से मछलियों को पकड़ते हैं परन्तु स्त्रियों के मन को कोई नहीं पकड़ सकता है। इस जगत् में ऐसी कोई भी मणि, मंत्र, औषधि, अंजन अथवा विद्या नहीं हैं जिसके प्रयोग से स्त्रियाँ कुटिलता रहित हो जावें। स्त्रियों में ऐसी कोई मोहिनी विद्या है कि वे बिना मंत्र-तंत्र -अंजन अथवा बिना प्रार्थना के भी क्षणमात्र में ही पंडित पुरुष को भी ठग लेती हैं। जिन महापराक्रमी वीर पुरुषों ने युद्ध में शत्रु के हस्ती के दाँतों पर चढ़कर विजयश्री को दृढ़ किया है, ऐसे शूरवीर योद्धा भी स्त्रियों के द्वारा खण्डित हो जाते हैं।

गौरव, प्रतिष्ठा और आराधना करने योग्य गुणों से विभूषित करके रखी गयी स्त्रियाँ भी दुश्चरित्र रूपी कीचड़ में फँस जाती हैं। कुटिल स्त्रियाँ स्वभाव से ही गुणों में तो दोषों को देखती हैं और जो प्यार करे उसमें अप्रियता का आचरण करती हैं और सम्मान करने पर कुपित होती हैं। ये स्त्रियाँ प्रत्यक्ष लाखों बुरे कार्यों को करके भी निःशंक होकर उन्हें छिपा लेती हैं क्योंकि ये जगत् को ठगने के लिए

अतिशय चतुर हैं। इनकी माया-चातुरी का कोई पार नहीं पा सकता है। विष में कदाचित् अमृत का झरना अथवा पर्वत पर धान्य का उगना संभव है लेकिन स्त्रियों का चित्त निष्पाप कदापि नहीं हो सकता है। दैवात् (भाग्य से) वन्ध्या-पुत्र की राजलक्ष्मी और आकाश में पुष्पों की शोभा होना संभव है परन्तु स्त्रियों के मन की शुद्धि किंचित् मात्र भी नहीं होती है। स्त्रियाँ मनुष्यों को बेधने के लिए सूली, काटने के लिए तलवार तथा कतरने के लिए करौंत के समान हैं। यह स्त्री दुःखों की तो अगाध खान ही हैं क्योंकि इसमें से निरंतर दुःख ही दुःख निकलते रहते हैं जो कलह तथा भय की जड़ है। स्त्री पाप का बीज, चिन्ताओं का कन्द है तथा नरक की पृथ्वी है। स्त्री अपमान रूपी फूल को उत्पन्न करने के लिए तो लता है किन्तु दुःख रूपी दावाग्नि की पंक्ति, विषय रूपी समुद्र की लहर, नरक रूपी महल में प्रवेश करने के लिए प्रतोली, काम रूपी सर्प की दाढ़ तथा मोह या तन्द्रा की माला है।

स्त्रियाँ अपने पति को वश में करके माता-पिता के द्वारा किया हुआ उपकार भुला देती हैं। ये मात्र ऊपर से बोलने और देखने में सुंदर मालूम होती हैं। परन्तु अन्दर से ये मायाचारी से युक्त रहती हैं। स्त्रियाँ अपने पति से तब तक ही प्रेम करती हैं, जब तक उसके पास पैसा, यौवन और नीरोगता रहती है। कुलवती नारी को भी पति तब तक ही प्रिय लगता है जब तक उसके दरिद्रता नहीं आती या वह पुरुष बुढ़ापे और रोग को प्राप्त नहीं होता है। बुढ़ापा, रोग, दरिद्रता आने पर उच्चकुलीन स्त्रियाँ भी पति को नहीं चाहती हैं। निर्धन पुरुष स्त्री के लिए सुगंध रहित पुष्प के समान लगता है और वह उसके लिए द्वेष का कारण बन जाता है। वृद्ध पुरुष मुरझाई हुई माला के समान अप्रिय होता है और रोगी पुरुष जिसका रस निकाला गया है ऐसे नीरस गन्ने के समान अनिष्ट लगता है। जो स्त्रियाँ, शील, संयम, तप से बहिर्भूत हैं, ऐसी महिलायें सदा ही अपने पति को भयंकर दुःख देने की सोचती हैं, जैसे कि अपकारी व्यक्ति दुःख देने की सोचते हैं। नीच स्त्रियाँ अपराध नहीं करने पर भी निर्दय होकर अपने पति को मार डालती हैं।

सच्चा प्रेम किससे :

एक सेठ बहुत पैसे वाला था। लेकिन जिस दिन से सेठानी के गर्भ में बच्चा आया, उसी दिन से धन-सम्पदा नष्ट होने लगी और धीरे-धीरे उसके घर में खाने के लिए भी कुछ नहीं रहा। एक दिन सेठानी ने सेठ से कहा- ''आप विदेश जाकर धन कमाकर लाओ तब तक मैं पीहर (मायके) में रहूँगी।'' सेठ भोला था, उसने बात स्वीकार कर ली और सेठानी को मायके छोड़ने के लिए वह उसे साथ लेकर ससुराल की ओर रवाना हुआ। सेठानी ने सोचा अब मेरे पति के जीवित रहने

से कोई लाभ नहीं है। क्योंकि ये जीवित रहेंगे तो मुझे भी इनके साथ रहना पड़ेगा और निर्धनता का दुःख सहन करना पड़ेगा इसलिए इनको मारकर मुझे पीहर में आराम से रहना चाहिए। यह विचार सेठानी ने सेठ से कहा ''मुझे बहुत जोर से प्यास लगी है, मुझे पानी पिला दो।'' सेठ सेठानी को पानी पिलाने के लिए कुँए से पानी खींचने लगा तभी सेठानी ने सेठ को कुँए में धकेल दिया और स्वयं पीहर जाकर आराम से रहने लगी।

स्त्रीवाचक शब्दों का निरुक्तिपरक अर्थ सन्त-महात्माओं ने इस प्रकार किया है-

स्त्रीवाचक शब्द :

1. **स्त्री**-दोषों का आच्छादान (छिपाना) करने वाली होने से स्त्री कहते हैं।
2. **वधू**-वध करने वाली होने से वधू कहते हैं।
3. **प्रमदा**- प्रमाद को बढ़ाने वाली होने से प्रमदा कहलाती है।
4. **नारी**-पुरुष के लिए स्त्री से बढ़कर कोई दूसरा शत्रु नहीं होने से वह नारी है।
5. **विलया**-पुरुष को देखकर विलीन (छिपती) होती है, अतः विलया होती है।
6. **कुमारी**- पुरुष के कुत्सित मरण का उपाय करने से कुमारी है।
7. **भीरु**-धार्मिक कार्यों से डरने के कारण भीरु है।
8. **महिला**- महादोषों को लाती है, अतः महिला है।
9. **अबला**- हृदय बल नहीं रखने के कारण अबला है।
10. **योषा**-प्रीतिपूर्वक पाप सेवन करने से योषा है।
11. **ललना**- सदा खोटे आचरण में लगी रहती है अतः ललना कही जाती है।

इस प्रकार स्त्रियों के दोषों का विचार करने से स्त्री में राग उत्पन्न नहीं होता है तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है।

सिक्के के दो पहलू होते हैं, एक पहलू को देखने पर वस्तु का रूप कुछ और दिखाई देता है, तो दूसरे पहलू को देखने पर कुछ और दिखाई देता है। शास्त्रों में स्त्री के योषा, प्रमदा आदि नामों की व्याख्या करते हुए उसे दोषों की खान बताकर उनसे सावधान रहने की प्रेरणा दी गई है। वासना मुक्त होकर आत्मकल्याण और ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु सावधान किया गया है।

नारी का दूसरा पहलू :

श्रमण संस्कृति के संरक्षक परमपूज्य आचार्यश्री 108 विद्यासागरजी महाराज

ने 'मूकमाटी' महाकाव्य में नारी को कई रूपों में रेखांकित किया है। उनकी नारी विषयक अवधारणा पूर्णतः नूतन, मौलिक तथा पूर्वाग्रह से विमुक्त है। उन्होंने नारी का उल्लेख भीरु, नारी, महिला, अबला, कुमारी, स्त्री, सुता, दुहिता, मातृ, अंगना आदि अनेक रूपों में किया है।

नारी की अनेक विशेषताओं में से सर्वप्रथम 'भीरु' स्वभाव की व्याख्या करते हुए लिखा है:-

प्रतिपल परतन्त्र हो कर भी
पाप की पालड़ी भारी नहीं पड़ती
पल-भर भी।
इनमें, पाप-भीरुता पलती रहती है।
अन्यथा
स्त्रियों का नाम भीरु क्यों पड़ा ?
प्रायः पुरुषों से बाध्य होकर ही
कुपथ पर चलना पड़ता है स्त्रियों को
परन्तु
कुपथ-सुपथ की परख करने में
प्रतिष्ठा पाई स्त्री-समाज में (पृष्ठ 201)

भावार्थ :- यद्यपि नारी बाल्यावस्था में माता-पिता के, युवावस्था में पति, श्वसुर आदि के तथा वृद्धावस्था में पुत्र आदि के अधीन -पराधीन रहती है फिर भी वह पाप के भार से अपने जीवन को बोझिल नहीं बनाती है क्योंकि उसमें पाप-भीरुता निरन्तर पलती रहती है। वह पाप कार्यों को करने से सदैव भयभीत रहती है। पुरुषों की अपेक्षा नारियों में पाप-भीरुता युगों-युगों से अधिक ही देखी गयी है। इसके प्रमाण रूप में भगवान् के समवसरण में स्थित श्रावक (पुरुष)-श्राविकाओं (स्त्रियों) की संख्या का अंतर है अर्थात् युग के आदि में होने वाले आदिब्रह्मा भगवान् आदिनाथ स्वामी के समवसरण में तीन लाख श्रावक थे तो श्राविकाएँ पाँच लाख थीं। इसी प्रकार अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में भी मुनिराज 14000 थे तो आर्यिकाएँ 36000 थीं। वर्तमान में भी व्रत, उपवास, आहारदान, प्रवचन-सभा, तीर्थवन्दना आदि क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा नारियाँ दो कदम आगे ही देखी जाती हैं।

आज भारत में शराब, जुआ, बीड़ी-सिगरेट, स्मैक आदि व्यसनों के चंगुल में जितने पुरुष फँसे हैं, उतनी नारियाँ नहीं।

इतिहास के पृष्ठ स्पष्ट बताते हैं कि पृथ्वी पर जैसा प्रलय एवं अत्याचार सिकन्दर, औरंगजेब, मुहम्मद गजनवी आदि पुरुषों ने किया वैसा प्रलय, अत्याचार, नारियों के द्वारा हो, ऐसा न कभी सुना गया, न देखा गया और न ही भविष्य में कभी होने की संभावना लगती है।

स्वभाव से ही धर्मपरायण नारी भी यदि कुमार्ग पर चलने को बाध्य हुई हो या चली हो तो उसमें भी कारण पुरुष ही रहा। जिस प्रकार मन्दोदरी ने सीता को शील से च्युत करने की, रावण को स्वीकार करने की प्रेरणा दी थी, वह मात्र रावण से बाध्य होकर ही दी, स्वयं ने अपने भावों से नहीं।

स्त्री के दूसरे विशेषण 'नारी' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है-

इनकी आँखें हैं करुणा की कारिका
शत्रुता छू नहीं सकती इन्हें
मिलन-सारी मित्रता
मुफ्त मिलती रहती इनसे।
यही कारण है कि
इनका सार्थक नाम है 'नारी'
यानी-
'न अरि' नारी है
अथवा
ये आरी नहीं है
सो नारी। (पृष्ठ 202)

नारी की आँखों से सदैव टपकती रहती है करुणा, पति-सन्तान आदि के रुग्ण होने पर वह अपना खाना, पीना, सोना, बैठना आदि सब कार्यों को गौण करके उनकी सेवा में लग जाती है। सती मैनासुंदरी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। मैनासुंदरी ने श्रीपाल जैसे कुष्ठ रोग से ग्रसित पति के साथ-साथ, सात सौ कुष्ठियों की भी सेवा की। उसका प्रतिफल यह हुआ कि श्रीपाल सहित सात सौ भटों का कुष्ठ दूर हो गया।

अपने संबंधियों की बात तो दूर रहे अगर कोई अनजान परदेशी भी वेदना से तड़प रहा हो तो नारी के हृदय में करुणा उमड़ आती है। वह शीघ्र उसकी वेदना को दूर करने का भरसक प्रयास करती है।

मैत्री का तो नारी भण्डार ही है। इसकी मित्रता, धार्मिक, सामाजिक विवाह आदि कार्यों में देखी जाती है तभी तो वह जन्मदात्री माँ-पिताजी आदि को

छोड़कर ससुराल में मिलनसारी मित्रता के कारण ही सास, श्वसुर आदि के मन को मोह लेती है।

नारी का दूसरा अर्थ है न+आरी= काटने वाली नहीं है। वह अपनी करुणा, सहृदयता, स्नेह आदि गुणों से मिलाकर (जोड़कर) रखती है। आज भी अनेक परिवारों में देखा जाता है कि जब तक घर में सास (माँ) रहती है तब तक परिवार Joint (सामूहिक) रहता है तथा माँ के चले जाने पर, पिता के रहते हुए भी, बिखर जाता है, विघटित हो जाता है, एक घर के अनेक घर हो जाते हैं, परिणाम स्वरूप संगठन-शक्ति समाप्त हो जाती है। इसको समझने के लिए हम 'केनिया' के जीवन की एक घटना ले सकते हैं-

आस्ट्रेलिया की केनिया नाम की एक लड़की अपनी सखियों के साथ 'माउन्ट ईसा' से कुछ दूर कार से जा रही थी। केनिया का सिर दुर्गन्ध से फटा जा रहा था। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वहाँ हैजे के बुखार से ग्रसित अनेक रोगी तड़फ रहे हैं। अनेक की लाशें (शव) सड़ रही हैं। केनिया ने उसी समय ग्लानि छोड़कर उन सबकी सेवा की और औषधि करवाई तथा संकल्प लिया कि मैं भी डाक्टर बन कर निःस्वार्थ सेवा करूँगी। केनिया डॉक्टर की ट्रेनिंग कर डॉक्टर बनी तथा सेवा में लग गई। जब उसकी सखियों ने विवाह के लिए पूछा-तो उसने कहा- सेवा ही विवाह है, यह थी उसकी करुणा।

नारी की तीसरी विशेषता 'महिला' गुण की व्याख्या करते हुए लिखी गई है-

जो
मह यानी मंगलमय माहौल,
महोत्सव जीवन में लाती है
महिला कहलाती वह।
जो निराधार हुआ, निरालम्ब,
आधार का भूखा
जीवन के प्रति उदासीन-हतोत्साही हुआ
उस पुरुष में-
मही यानी धरती
धृति-धारणी जननी के प्रति
अपूर्व आस्था जगाती है।
और पुरुष को रास्ता बताती है
सही-सही गन्तव्य का-

महिला कहलाती वह!

इतना ही नहीं, और सुनो !
जो संग्रहणी व्याधि से ग्रसित हुआ है,
जिसकी संयम की जठराग्नि मंद पड़ी है,
परिग्रह-संग्रह से पीड़ित पुरुष को
मही यानी
मठा-महेरी पिलाती है,
महिला कहलाती है वह। (पृष्ठ 202)

भावार्थ :-'मह' यानी मंगलमय महोत्सव, 'ला' अर्थात् लाती है। महिला के निमित्त से ही घर में जन्मोत्सव, विवाहोत्सव आदि मंगलमय कार्य होते हैं। महिला (भगवान् की माँ) के निमित्त से ही नाभिराय, सिद्धार्थ राजा आदि के घर रत्नवृष्टि, देवों का आगमन आदि मंगलोत्सव हुए थे। चन्दनबाला के कारण सेठ के घर पञ्चाश्चर्य हुए। प्राचीनकाल में कन्या का जन्म होना लक्ष्मी के आगमन के समान माना जाता था। लोग यही कहते थे कि हमारे घर लक्ष्मी आयी।

महिला का दूसरा अर्थ अवलम्बन देने वाली, निराश उत्साहहीन मनुष्य में नया उत्साह संचारित करने वाली। धृति (धैर्य) धारिणी जननी माँ के प्रति अपूर्व आस्था जगाकर उसके मार्ग को प्रशस्त करती है, लक्ष्य-प्राप्ति में उसकी सहायक होती है। इसके उदाहरण के रूप में हम ले सकते हैं गुणवती को जिसने अपने पति चारुदत्त को जो वेश्या के यहाँ पर पूरी सम्पत्ति भेंट कर तथा तिरस्कृत होकर आया था, उसे भी पुनः मार्ग दिखाकर उत्साहित किया था, उसी के फलस्वरूप चारुदत्त घर में तीन पुरुषार्थों की सिद्धि कर अन्त में मोक्ष पुरुषार्थ को भी सिद्ध करने में सफल हुआ है।

महिला का तीसरा अर्थ है जिस व्यक्ति में संग्रह-परिग्रह वृत्ति घर कर गई है अर्थात् संयम के अभाव में जिसकी जठराग्नि मंद पड़ चुकी है, ऐसे संग्रहणी व्याधि के समान परिग्रह-संग्रह से पीड़ित पुरुष को 'मही' यानी मठा (छाछ) 'ला' लाती है, पिलाती है, उसकी संयम की भूख को बढ़ाने का काम करती है। जैसे- मैनासुंदरी ने पूर्व भव में अपने पति विद्याधर श्रीकण्ठ के द्वारा व्रत भंग कर देने पर धर्म रूपी महेरी के द्वारा व्रतों में स्थिर किया था। सीता को रामचन्द्रजी के द्वारा बिना परीक्षा किए भयानक अटवी में भेज देने पर भी उसने यही समाचार दिये कि ''बिना परीक्षा किये मुझे छोड़ दिया, कोई दुःख की बात नहीं लेकिन बिना परीक्षा किये धर्म को मत छोड़ देना।'' इसी प्रकार रानी चेलना बौद्धमतावलम्बी राजा

श्रेणिक को सातवें नरक में जाने से बचा कर तीर्थंकर नामकर्म का बंध कराने में कारण बनी थी।

मनुष्य की कामवासना को शान्त करने वाली और उसे वेश्यावृत्ति, परस्त्री-गमन आदि दुर्व्यसनों से मुक्त कर संयमाचरण को प्रेरित करने वाली महिला ही हुआ करती है तथा पुरुष को ब्रह्मचर्य का स्वरूप एवं काम (मैथुन) के दोष दिखाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य की ओर ले जाती है।

नारी का चौथा विशेषण 'अबला' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है-

जो अब यानी
'अवगम' - ज्ञानज्योति लाती है,
तिमिर-तामसता मिटाकर
जीवन को जागृत करती है
अबला कहलाती है वह!
अथवा, जो
पुरुष-चित्त की वृत्ति को
विगत की दशाओं
और अनागत की आशाओं से
पूरी तरह हटाकर
'अब' यानी
आगत-वर्तमान में लाती है
अबला कहलाती है वह .....!
बला यानी समस्या संकट है
न बला ..... सो अबला
समस्या-शून्य-समाधान!
अबला के अभाव में
सबल पुरुष भी निर्बल बनता है
समस्त संसार ही, फिर,
समस्या समूह सिद्ध होता है,
इसलिए स्त्रियों का यह
अबला नाम सार्थक है !

भावार्थ :- आज मनुष्य ने दहेज दानव के अभिशाप के कारण स्त्री को एक 'बला' समस्या मान लिया है, लेकिन वास्तव में वह समस्या नहीं है अपितु

वह नारी अपने पति की समस्याओं का समाधान करने वाली एक मित्र है। वह उन गंभीर से गंभीर समस्याओं का समाधान भी तत्काल कर देती है, जिनसे वह हार चुका है, जिन समस्याओं का कोई समाधान वह नहीं कर पाया है। स्त्री के अभाव में बलवान पुरुष भी निर्बल सा बन जाता है, वह अपने घर में आये हुए मित्र, मेहमान आदि का सत्कार अच्छे ढंग से नहीं कर सकता। यदि वह मात्र कल्पना में भी स्त्री को अपने जीवन से निकाल कर सोचे तो भी उसे ऐसा लगेगा कि वह रेगिस्तान में अकेला भटक रहा है।

अबला का दूसरा अर्थ है- 'अव' अर्थात् ज्ञानज्योति 'ला' यानी लाती है, जो ज्ञानज्योति से तिमिर-तामसता को नष्ट कर देती है, वह अपने पति के, भूत में किये गये अपराधों को भुला कर अर्थात् अपराधों को गुरु के सान्निध्य में प्रायश्चित्त के द्वारा नष्ट करके, अनागत भविष्य की आशाओं, कल्पनाओं से दूर हटा कर अब यानी वर्तमान में ला लाती है तथा जीवन सुखी, शान्त, संतोषमय तथा आनन्दप्रद बना देती है। आचार्यश्री ने 'अबला' शब्द की इस प्रकार सुन्दर मीमांसा करके उन पुरुषों को चेतावनी दी है जो स्त्री को मात्र बला, समस्या समझकर उसका अपने पैर की जूती से भी ज्यादा तिरस्कार करते हैं, अपने जीवन में उसका कुछ भी महत्त्व नहीं समझते हैं।

स्त्री के पाँचवे गुण 'कुमारी' की व्याख्या करते हुए लिखा है-

कु यानी पृथिवी
मा यानी लक्ष्मी
और
री यानी देने वाली.....
इससे यह भाव निकलता है कि
यह धरा सम्पदा-सम्पन्ना
तब तक रहेगी
जब तक यहाँ कुमारी रहेगी।
यही कारण है कि
सन्तों ने इन्हें
प्राथमिक मंगल माना है
लौकिक सब मंगलों में.....! (पृष्ठ 204)

भावार्थ :- आचार्य श्री ने जब नारी के कौमार्य रूप पर दृष्टिपात किया। तब उसे धरती को सम्पदा सम्पन्न बनाने वाली कहा है यानी वह लक्ष्मी स्वरूपा है।

इसलिए सन्तों ने उसे सर्व लौकिक मंगलों में प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) मंगला माना है। पुरातन काल में कन्या के जन्म होने पर कहा जाता था कि ''हमारे यहाँ लक्ष्मी आई है'' इससे भी यही भाव निकलता है कि स्त्री ही घर की लक्ष्मी है, क्योंकि स्त्री ही पति के द्वारा परिश्रम करके उपार्जित की गई लक्ष्मी-सम्पत्ति को अनावश्यक खर्च करके नष्ट नहीं करती अपितु उसका सदुपयोग करती हुई अपने पति की अपने घर की इज्जत बचाये रखती है।

नारी के छठे गुण 'स्त्री' शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है-

धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों से
गृहस्थ जीवन शोभा पाता है।
इन पुरुषार्थों के समय
प्रायः पुरुष ही
पाप का पात्र होता है,
वह पाप, पुण्य में परिवर्तित हो
इसी हेतु स्त्रियाँ
प्रयत्न-शीला रहती हैं सदा।
पुरुष की वासना संयत हो,
और
पुरुष की उपासना संगत हो,
यानि काम पुरुषार्थ निर्दोष हो,
बस, इसी प्रयोजनवश
वह गर्भधारण करती है।
संग्रहवृत्ति और अल्पव्यय रोग से
पुरुष को बचाती है सदा,
अर्जित-अर्थ का समुचित वितरण करके।
दान-पूजा-सेवा आदिक
सत्कर्मों को, गृहस्थ धर्मों को
सहयोग दे, पुरुष से करा कर
धर्म-परम्परा की रक्षा करती है।
यूँ स्त्री शब्द ही
स्वयं गुनगुना रहा है

कि
स् यानी सम-शील-संयम
त्री यानी तीन अर्थ हैं
धर्म, अर्थ, काम-पुरुषार्थों में
पुरुष को कुशल-संयत बनाती है
सो..... स्त्री कहलाती है। (पृष्ठ 204)

भावार्थ :- गृहस्थ का जीवन धर्म, अर्थ तथा काम पुरुषार्थ से शोभा पाता है। स्त्री पुरुष कामवासना अभिसंयत रखती है, गर्भ धारण करती है इसलिए स्त्री कहलाती है। वह पुरुष को फिजूलखर्च से बचाती है, संग्रहवृत्ति से विरक्त रखती है। वह उसे धनार्जन के साथ-साथ पुण्यार्जन की भी दृष्टि प्रदान करती है, समाज के कल्याणार्थ कर्म (कार्य) करने के लिए प्रेरित करती है तथा धर्मपरम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आहार-दान, जिनेन्द्र पूजा, अभिषेक, वैयावृत्य, दान आदि श्रेष्ठ कार्यों में लगाये रखती है। वह हर समय अन्याय, असत्य, चोरी आदि से बचने की प्रेरणा देती रहती है जिससे वह अर्थ पुरुषार्थ करते हुए भी उन पापों से लिप्त नहीं होता है जिनके निमित्त से उसे नरक, तिर्यंच आदि दुर्गतियों में भटकना पड़े, दुःसह कष्टों को सहन करना पड़े।

नारी के सातवे गुण 'सुता' का विवेचन करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है:-

ओ, सुख चाहने वालो! सुनो,
सुता शब्द स्वयं सुना रहा है,
सु यानी सुहावनी अच्छाइयाँ
और
ता प्रत्यय वह
भाव-धर्म, सार के अर्थ में होता है।
यानी,
सुख-सुविधाओं का स्रोत ..... सो-
सुता कहलाती है।
यही कहती हैं श्रुत-सूक्तियाँ ! (पृष्ठ 205)

भावार्थ:- 'सुता' कहने से आचार्यश्री का आशय यह है कि सुख-सुविधाओं का जो स्रोत बहाती है वह 'सुता' है। सुता शब्द का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है कि सुत को जन्म दे, वह सुता है। सुख को चाहने वाले मानव को सुता शब्द के अर्थ पर भी दृष्टि डालनी चाहिए। 'सुता' शब्द स्वयं सुन रहा है

'सु' यानी सुहावनी अच्छाइयाँ और 'ता' प्रत्यय वह भावधर्म सार के अर्थ में होता है अर्थात् सुख सुविधाओं का स्रोत है, वही सुता कहलाती है। लड़की जब तक घर में रहती है, माँ के हर कार्य में सहयोग देकर उसके घर के कार्यभार को अपने कन्धे पर लेकर हल्का कर देती है। ''लड़की की माँ रानी और बुढ़ापे में भरे पानी'' यह कहावत भी इस सुता शब्द के अर्थ को पुष्ट करती है। जब तक लड़की घर में है तब तक माँ को रानी के समान सुख-सुविधायें मिलती हैं अतः नारी सुता यह विशेषण सार्थक है।

नारी के आठवे गुण 'दुहिता' की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री लिखते हैं-

दो हित जिसमें निहित हों
वह 'दुहिता' कहलाती है।
अपना हित स्वयं ही कर लेती है,
पतित से पतित पति का जीवन भी
हित सहित होता है, जिससे
वह दुहिता कहलाती है।
उभय-कुल मंगलवर्धिनी
उभय-लोक सुख-सर्जिनी
स्व-पर-हित सम्पादिका
कहीं रहकर किसी तरह भी
हित का दोहन करती रहती
सो..... दुहिता कहलाती है । (पृष्ठ 205)

भावार्थ:- 'दुहिता' कहने का अभिप्राय यह है कि जिसमें दो हित हैं, वह दुहिता है। वह अपने जीवन का हित तो करती है, साथ में पतित पति के जीवन का भी हित करती है, पिता का और पति का मानों दो प्रकार से हितों का, कल्याण का, सुख-सम्पत्ति का वह दोहन करती है इसलिए उसका दुहिता होना अर्थवत्तापूर्ण है। नारी के नवें गुण 'मातृ' का कथन करते हुए लिखा है-

हमें समझना है
'मातृ' शब्द का महत्त्व भी ।
प्रमाण का अर्थ होता है ज्ञान
प्रमेय यानी ज्ञेय
और
प्रमातृ को ज्ञाता कहते हैं सन्त।

जानने की शक्ति वह
मातृ-तत्त्व के सिवा
अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होती।
यही कारण है कि यहाँ
कोई पिता-पितामह, पुरुष नहीं है
जो सबकी आधारशिला हो,
सबकी जननी
मात्र मातृतत्त्व है
मातृतत्त्व की अनुपलब्धि में
ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध ठप्।
ऐसी स्थिति में तुम ही बताओ,
सुख-शान्ति मुक्ति वह
किसे मिलेगी, क्यों मिलेगी
किस विध .....?
इसीलिए इस जीवन में
माता का मान-सम्मान हो,
उसी का जय-गान हो सदा
धन्य .....। (पृष्ठ 206)

भावार्थ :- मातृ शब्द का विवेचन करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि प्रमाण का अर्थ होता है ज्ञान और प्रमेय का अर्थ है ज्ञेय, सन्तों ने प्रमातृ को ज्ञाता कहा है। मातृतत्त्व की अनुपलब्धि में ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध ठप् हो जाता है फिर तो सुख-शान्ति और मुक्ति किसे मिलेगी और क्यों मिलेगी, किस प्रकार मिलेगी ?

माता, पिता, चक्रवर्ती, तीर्थंकर महापुरुष आदि सबको जन्म देने वाली जननी है। वह मातृतत्त्व ही है, कोई पिता, पितामह पुरुष नहीं जो सबकी आधारशिला हो, सबकी जननी मातृतत्त्व ही है। भक्तामरस्तोत्र में आचार्य मानतुंगस्वामी ने भगवान् आदिनाथ की स्तुति करते हुए इसी भाव को बताया है -

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशजालम् ।। 22।।

इस श्लोक में तीर्थंकर भगवान् की माता का गुणगान करते हुए कहा है

कि हे भगवन्! संसार में सैंकड़ों स्त्रियाँ सैंकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं लेकिन आपके समान अनुपम पुत्र को जन्म देने वाली आपकी माँ को छोड़कर कोई भी स्त्री नहीं है। ठीक ही है, अन्य सब दिशाएँ सैंकड़ों तारा, ग्रह, नक्षत्र आदि को जन्म देती हैं लेकिन सूर्य को जन्म देने वाली तो एक पूर्व दिशा ही होती है।

नारी के दसवें गुण 'अंगना' का विश्लेषण करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है -

सदियों से सदुपदेश देती आ रही है
पुरुष-समाज को यह
अनंग के संग से अंगारित होने वाली,
सुनो जरा सुनो तो.....।
स्वीकार करती हूँ कि
मैं अंगना हूँ
परंतु,
मात्र अंग ना हूँ
और भी कुछ हूँ मैं .....!
अंग के अंदर भी कुछ
झाँकने का प्रयास करो,
अंग के सिवा भी कुछ
माँगने का प्रयास करो,
जो देना चाहती हूँ,
लेना चाहते हो तुम!
'सो' चिन्तन शाश्वत है
'सो' निरंजन भास्वत है ।
भार-रहित आभा का आभार मानो तुम! (पृष्ठ 207)

भावार्थ : नारी, पुरुष का एक अंग है। इसके बिना पुरुष अधूरा, अपूर्ण है। पुरुष का एक अंग होने के कारण ही वह अर्द्धांगिनी कहलाती है। कामाग्नि से अंगारित होने वाले पुरुषों को नारी यह बताना चाहती है कि वह अंग ना जरूर है लेकिन अंगों के पीछे आत्मा का सौन्दर्य भी विद्यमान है, जो शाश्वत है, अंगातीत है तथा निरंजन भास्वत है। वह स्व का परिज्ञान कराना चाहती है ताकि सब अपने को जाने, पहचाने। जो अपने को जान-पहचान लेता है वह सबको पहचान लेता है।

यहाँ महाकवि ने नारी के दूसरे पहलू को दृष्टि में रखकर नारी के अनेक नामों की व्याख्या की है। उन्होंने नारी को अपने कर्तव्यों पर दृष्टि डालने का

अवसर दिया है तथा साथ-ही-साथ जो पुरुषवर्ग नारी को सर्वथा तुच्छ मानते हैं, स्त्री को भोगों का मात्र साधन मानते हैं उन्हें भी एक नयी दृष्टि प्रदान की है। उनका माँ, पत्नी आदि के प्रति व्यवहारिक कर्तव्य क्या है? यदि है तो उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गृहस्थ में रहते हुए गाड़ी के दो बैलों सदृश विपरीत दिशा में चलने पर गाड़ी किसी प्रकार अपने गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँच सकती। इसलिए स्त्री के महत्त्व को जानकर पुरुषों को विवेकपूर्ण कार्य करना चाहिए।

❋ शरीर की अशुचिता का विचार :

मरणकण्डिका में आचार्य अमितगति स्वामी ने शरीर का 12 प्रकरणों से वर्णन किया है -

1. शरीर का बीज	2. शरीर की निष्पत्ति	3. क्षेत्र
4. आहार	5. जन्मस्थान	6. वृद्धि
7. अवयव	8. निर्गम	9. अशुचित्व
10. असारता	11. व्याधि	12. अनित्यता

1. शरीर का बीज : माता के रक्त और पिता के वीर्य से इसकी उत्पत्ति हुई है। अतः यह अशुचि है, जैसे मल से निर्मित घेवर। यह शरीर मल की राशि सदृश है। इसे देखना भी घृणा का कारण है तो स्पर्शन के लिए, आलिंगन करने के लिए और भोगने के लिए किस प्रकार योग्य है अर्थात् मैथुन सेवन कैसे किया जा सकता है? गेहूँ के आटे से बना घृतपूरक (घेवर) इसलिए शुद्ध है, क्योंकि वह शुद्ध आटे से बना है किन्तु मलरूप बीज वाला देह कैसे शुद्ध हो सकता है? अर्थात् यह अशुद्ध ही है।

2. शरीर की निष्पत्ति : रज और वीर्य उदय में मिश्रित होकर दस दिन तक कलल रूप होकर रहता है। उसके बाद एक मास तक बुलबुल की अवस्था को प्राप्त होता है। पुनः एक मास में घनीभूत होता है और पुनः गर्भपंजर में उक्त गर्भ माँसपेशी रूप एक महीने में बनता है। पाँचवे महीने में उस माँसपिण्ड में दो हाथ, दो पैर और एक सिर ऐसे पाँच अंकुर निकलते हैं। छठे मास में अंग और उपांगों की रचना होती है, सातवें माह में चर्म और रोम आते हैं। आठवें माह में उस गर्भ में हलन-चलन होने लगती है और नवें माह या दसवें माह में शिशु गर्भ से बाहर निकलता है।

3. क्षेत्र : शरीर का निर्माण जहाँ होता है उस गर्भाशय रूप क्षेत्र की अशुचिता बताते हैं। माता के उदर में रहने का क्षेत्र आमाशय है (खाया हुआ अन्न पाचन के पूर्व जिस स्थान में रहता है वह अमाशय है) तथा जो जठराग्नि से पक

चुका है ऐसे अन्न (मल) के रहने का स्थान पक्वाशय है। इनके ऊपर इस तरह बीच में जरायु से वेष्टित वह गर्भ में नव मास तक रहता है जो कि विष्टा के बीच में कहलाता है। मलस्थान में एक महीने तक रहता हुआ कोई व्यक्ति दिखता है तो वह भले ही अपना हो तो भी ग्लानि योग्य हो जाता है तो फिर नव मास तक माता के गर्भ में वमन स्थानीय रहा हुआ यह शरीर कैसे ग्लानि योग्य नहीं है।

4. गर्भस्थ शिशु का आहार : दाँतों के द्वारा चबाया हुआ, कफ से गीला एवं मिश्रित कड़वे पित्त से युक्त ऐसा माता के द्वारा खाया गया अन्न, जो मल के समान है, वांत कहलाता है। खल भाग जिसका (वायु के द्वारा पृथक् किया गया है) ऐसे आहार का ऊपर से रस गलता है तब उस रस की एक-एक कड़वी बूँद को गर्भस्थ जीव युक्त शरीर ग्रहण करता है। अर्थात् गर्भस्थ बच्चे जूठे अन्न के रस को ही आहार बनाते हैं। छह मास तो इस तरह बीतते हैं। सातवें माह में कमल की नाल की तरह नाभिस्थान द्वारा एक नाल उत्पन्न होती है। तब वह जीव सहित शरीर नाभिनाल द्वारा माता का वांत भोजन ग्रहण करता है। किसी को एक माह तक अशुचि खाते हुए देखा जाए तो उससे ग्लानि आती है, भले ही वह अपना व्यक्ति ही हो फिर जो नव या दस माह तक गर्भ में अमेध्य भक्षण करता है ऐसा यह शरीर कैसे ग्लानि का कारण नहीं होगा अर्थात् होगा ही।

5. जन्मस्थान : मनुष्य का जन्म जहाँ होता है वह रक्त और मूत्र निकलने का द्वार है, दुर्गन्धयुक्त है, जठर-उदर का मुख है, शब्द द्वारा कहने योग्य नहीं है। लज्जाकारक और अशुचि है। ऐसा माता का योनि स्थान है, उससे मानव शरीर का जन्म होता है। यदि उदर का स्पर्श करने वाला महापुरुषों के द्वारा निन्दनीय होता है तो उदरद्वार का स्पर्श करने वाला निन्दनीय कैसे नहीं होगा? अर्थात् होगा ही।

6. जन्मवृद्धि : शिशु निंद्य और लज्जाकारक कामों को करता रहता है। वह मूढ़बुद्धि कार्य और अकार्य तथा सेव्य और असेव्य को नहीं जानता है। वह निर्लज्ज शिशु अपने या पर के मुख में चर्म, हड्डी, पीप, माँस, मलमूत्र और कफ आदि डालता रहता है। उसे कुछ ज्ञान या समझ नहीं रहती है। अतः वह कुछ भी खाता है। जहाँ-तहाँ मल कर डालता है। बाल अवस्था में स्वयं ने जो अयोग्य कार्य किया था उस कृत्य को यदि कोई स्मरण कर लेवे अथवा उसकी कदाचित् उस अयुक्त कृत्य की याद आ जाए तो वैराग्य हो जाता है तो फिर अन्य स्त्री आदि के विषय में क्या निर्वेद नहीं होगा ? होगा ही।

7. शरीर के अवयव : शरीर में 300 हड्डियाँ हैं जो मज्जा नामक दुर्गन्ध धातु से युक्त हैं तथा संधियाँ भी 300 हैं, माँसपेशियाँ 500, शिराएँ 700 और स्नायु

900 हैं। 4 शिराओं के जाल, 16 कंडरा, 6 शिराओं के मूल और माँस रज्जू दो हैं। कालेयक 7, त्वचा 7 और 80 लाख कोटी रोम हैं। अमाशय और पक्वाशय में 16 आँतें हैं। दुर्गन्ध के आशय 7, वृण मुख 9 जो दुर्गन्ध को झराते हैं। तीन स्तूणा वात-पित्त-कफ हैं और मर्मस्थान 107 हैं। शुक्र, मस्तक और मेदा ये तीनों अपने-अपने हाथ से अंजुलि प्रमाण हैं। 6 अंजुलि प्रमाण पित्त है, 3 अंजुलि प्रमाण वसा नाम की धातु है, कफ पित्त के समान 6 अंजुलि हैं, रक्त आधा आढ़क (32 पल), मल 6 प्रस्थ, मूत्र आधा आढ़क, 20 नख और 32 दाँत हैं। यह शरीर कृमिकुलों से भरा है, जैसे घाव कृमियों से भरा रहता है। जिसका शरीर जलने से सफेद अंग वाला हो गया है, जिसमें से सड़ा रक्त झिर रहा है। ऐसा यह शरीर बन जाये तो भले ही यह प्रिय था किन्तु ऐसा होने पर अपना प्रिय व्यक्ति भी उसे देखना नहीं चाहता है।

8. निर्गम :- शरीर के कान, आँख, नाक से मल झरता है। मुख में लार, थूक, कफादि मल हमेशा रहता है तथा दाँतों-मसूड़ों में कीड़ों का कुल और व्रण रहते हैं तथा मेहन और गुदा में क्रमशः मूत्र और मल आदि रहते हैं। सम्पूर्ण रोम-कूपों में चिकना पसीना होता है जिसमें जूँ, लीख उत्पन्न होते हैं। सारे शरीर के अवयवों से मैल निकलता है। अति लज्जा की कारण, घिनावनी, आर्द्र, रक्त झराते हुए निंद्य ऐसी स्त्री योनि में मूढ़बुद्धि कैसे रमता है ?

9. अशुचि :- सम्पूर्ण सागरों के जल से धोने पर भी यह शरीर शुद्ध नहीं होता, जैसे कोयला धोने से वह सफेद नहीं होता, सुगंधित अंजन आदि से संस्कारित करके कामुक स्त्री-पुरुष इस शरीर का भोग करते हैं, जैसे घिनौने दुर्गन्धित माँस को हींग आदि द्रव्यों से संस्कारित कर दुष्ट निन्दनीय पुरुष खाते हैं। यह स्वयं के मुख से गिरी हुई लार से घृणा करता है तो स्त्री के मुख का सड़ा जल (लाल) कैसे पी जाता है? यह आश्चर्य है ?

अपने शरीर की अशुचिता अथवा इसके वास्तविक स्वरूप को देखना है तो शरीर के ऊपर मक्खी के पंख के समान पतली झिल्ली उतारकर देखा जाये तो वह अत्यन्त ग्लानिकारक लगता है और यदि शौचालय में जाकर देखा जाये और उसकी वास्तविकता पर विचार किया जाये तो शरीर को पवित्र कभी नहीं माना जा सकता है। शरीर की वास्तविकता को देखना है तो शौचालय में जाकर देखना चाहिए।

10. असारता :- यह शरीर एरण्ड की लकड़ी के समान असार है। गायों का दूध, हिरण के सींग, सर्पों की मणि, मयूरों के पंख, हिरणों की कस्तूरी आदि इतने पदार्थ तिर्यंचों के शरीर कथंचित्, सारभूत देखे जाते हैं। किन्तु मानव के शरीर

में कहीं पर कदाचित् कोई पदार्थ सारभूत दृष्टिगोचर नहीं होता है। यह तो सड़े पदार्थों का मानो घर ही हो।

11. रोग :- मानव के शरीर में यदि एक अंगुली में 96 रोग संभव हैं तो सारे शरीर में कितने रोग होंगे ? सारे शरीर में 5 करोड़, 68 लाख, 99 हजार 584 रोग संभव हैं।

12. अनित्यता :- सुन्दर स्त्री जो तरुण अवस्था में मन का हरण करती है, वही वृद्धावस्था में नीरस गन्ने के समान अनिष्ट हो जाती है। कभी पत्नी पहले मर जाती है, तो कभी पति पहले मर जाता है, कभी जीवित पति भी पत्नी से विरक्त हो जाता है, कभी पत्नी अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष के पास चली जाती है, अथवा पुरुष परस्त्री सेवन करने लगता है, इस तरह दाम्पत्य जीवन दुःख रूप होता है।

काष्ठ, पाषाण आदि के बने स्त्री-पुरुष के चित्र, स्टेच्यू आदि का संस्कार करते रहने पर वे पदार्थ चिरकाल तक ठहरते हैं परन्तु मनुष्यों के शरीर का भोजन, व्यायाम, मालिश आदि से संस्कार करने पर भी वह नष्ट हो जाता है। सूरत राजा की रानी का शरीर क्षणमात्र में कुष्ठ रोग से नष्ट हुआ। उसकी कथा इस प्रकार है-

क्षणिक सुन्दरता :

अयोध्या का राजा सूरत 500 रानियों में से पटरानी 'सती' पर अत्यधिक स्नेह करता था। उससे भी अधिक राजा के मन में मुनि दान का भाव था। वह राजकार्य छोड़कर भी मुनियों को आहार अवश्य देता था, वह राज्य के अन्य सभी कार्यों को छोड़कर रनवास में रहता था। एक दिन वह अपनी प्राणप्रिया रानी के कपाल पर तिलक लगा रहा था, इतने में आहारार्थ मुनिराज का आगमन हुआ। राजा शीघ्र रानी का शृंगार छोड़कर आहार देने चला गया। रानी को इससे बहुत क्रोध आया उस पापिनी ने बहुत अपशब्द, गाली, अपवाद आदि से मुनिराज की बड़ी निन्दा की और सब सखियाँ, दासियाँ, दासों के सामने दुष्ट वाक्य कहती रही, जिससे (मुनिनिन्दा के पाप से) उसके शरीर में तत्काल गलित कुष्ठ हो गया। उसके शरीर से दुर्गन्ध आने लगी। राजा आहार देकर लौटा तो रानी की यह दशा देख स्तंभित हो गया। उसे वैराग्य हो गया और उसने राजपाट छोड़कर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। रानी कुष्ठ की असह्य वेदना को सहन करती हुई मरण कर दुर्गति को प्राप्त हुई। इस प्रकार शरीर के दोषों का बार-बार चिन्तन, मनन करने से अपने ब्रह्मचर्य की सुरक्षा सरलता से हो सकती है।

❋ स्त्री /पुरुष संसर्ग दोष विचार :

स्त्री वर्तमान में भले ही निकट नहीं हो, उस समय भी देखे, सुने तथा

अनुभव किये विषयों की रुचि तथा स्मृति हो जाया करती है। वह स्मृति और रुचि भी एक तरह के स्त्री संसर्ग के दोष को उत्पन्न करती है क्योंकि पुरुष चाहे वृद्ध हो, आचार्य हो, तपस्वी हो तथा सभी के द्वारा विश्वसनीय हो, गुणवान भी हो, किन्तु यदि वह स्त्रियों पर विश्वास करता है तो शीघ्र ही अपयश आदि दोषों को प्राप्त होता है। जब महामुनि तपस्वी की ऐसी बात है तो जो विकृत मन से युक्त है, ऐसे मनुष्य नारी के सम्पर्क से स्वल्पकाल में क्या नष्ट नहीं होते ? होते ही हैं।

सभी संसारी प्राणी स्वभावतः कषाय, इन्द्रिय और आहारादि 4 संज्ञाओं के भार से युक्त हुआ करते हैं तथा गर्व-घमण्ड से युक्त होते हैं, ऐसी स्थिति में उन्हें यदि स्त्रीजन का संग मिले तो शीघ्र ही वे कषाय तथा आहारादि चारों संज्ञायें अतिशय रूप से प्रकट होने लगती है। यदि अपनी माता, बहिन, पुत्री भी हो और एकान्त में उसका सहवास होता है तो उससे पुरुष का मन शीघ्र ही क्षोभ को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में शेष महिलाओं के एकान्त सम्पर्क में पुरुष का मन क्या क्षुभित नहीं होगा ? होगा ही।

एक मंत्री ने संसर्ग के कारण अपनी ही पुत्री से भोग की इच्छा प्रकट की थी।

पाप का कारण वासना :

एक बार किसी राजा ने दरबार में अपने मंत्री से एक प्रश्न पूछा कि पाप (वासना) का मूल कारण क्या है ? मंत्री ने पाप के अनेक कारण उत्तर रूप में बताये लेकिन उन उत्तरों से राजा को संतुष्टि नहीं हुई। राजा ने कहा-''मंत्री! तुम्हें तीन दिन का समय दिया जाता है। तुम्हें प्रश्न का उत्तर संतोषजनक देना है, नहीं तो तुम्हें मृत्युदण्ड दिया जायेगा।'' मंत्री बहुत चिंतित हुआ। वह प्रश्न के उत्तर की खोज में खाना-पीना, सोना सब भूल गया। उसको चिन्तित देख उसकी पुत्री ने चिन्ता का कारण पूछा। मंत्री ने राजा द्वारा पूछा गया प्रश्न अपनी पुत्री को बता दिया। पुत्री ने कहा-''पिताजी! आप चिन्ता न करें। मैं इस प्रश्न का उत्तर तीन दिन के भीतर-भीतर बता दूँगी। आप शांति से भोजन करिए।'' पुत्री राजा के प्रश्न का समाधान करने हेतु अनेक प्रकार के शृंगार करके पिताजी के साथ हास्य-विनोद करने लगी तथा नाना प्रकार के मिष्ठान्नादि भोजन बनाकर बड़े प्रेम पूर्वक पिताजी को खिलाने लगी। एकान्त में हाव-भावपूर्वक वार्तालाप करती हुई नाना प्रकार की चेष्टायें करने लगी। तीसरे दिन जब मंत्री भोजन कर रहा था और पुत्री पंखा कर रही थी तब मंत्री (पिताजी) ने वासना के वशीभूत होकर अपनी पुत्री का हाथ पकड़ लिया और उससे अपनी मनोकामना पूरी करने की प्रार्थना करने लगा। तभी लड़की ने कहा- ''पिताजी! पिताजी! यह क्या करते हैं ? अरे! यही तो राजा के

पूछे गये प्रश्न का उत्तर है।'' अतः एकान्त में वार्तालाप आदि चेष्टायें जब विश्वसनीय पिता के मन में भी वासना जगा सकती हैं तो अन्य अविश्वसनीय व्यक्तियों के मन की क्या बात ?

जिस प्रकार निकट आये हुए हाथी को सिंहिनी खा जाती है, समीप आये हुए मत्स्य को बगुली शीघ्र ही निगल जाती है, मयूरी सर्प को मार डालती है, बिल्ली चूहे को खा जाती है, ठीक इसी प्रकार निर्दय स्त्री निकट में आवे तो संयत मुनि का संयम नष्ट कर डालती है। इसलिए स्त्री की निकटता हमेशा ही त्याज्य है, छोड़ने योग्य है। स्त्रियों की संगति संसार मार्ग को विस्तृत करती है और मोक्षमार्ग को नष्ट करती है, पुण्य-बुद्धि को जला देती है और पाप-बुद्धि को उत्पन्न करती है, प्रशंसा जनापवाद को उत्पन्न करती है प्रशंसा रूप वृक्ष को काट डालती है। अहो! यह स्त्री-संगति क्या-क्या नहीं कर देती ? स्त्री और पुरुषों का निकट सम्पर्क दोनों के पवित्र जीवन का घात करने वाला हो सकता है, क्योंकि जब वीतराग प्रभु की छाया में समवशरण में रहने वाले पुरुषों और स्त्रियों को भी बैठने का पृथक्-पृथक् स्थान रहता है, तो सराग जगत् की स्थिति में तो और भी सतर्कता आवश्यक है। तीर्थंकर भगवान् के समवसरण की भीतर जन्म विरोधी जीवों में मित्रता उत्पन्न हो जाती है। कारण यह है कि तीर्थंकर भगवान् का अचिन्त्य प्रभाव वहाँ कार्य करता है। इतना अपूर्व प्रभाव होते हुए भी वहाँ प्रथम कोठे में गणधर देव तथा मुनिराज आदि, दूसरे में कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे में आर्यिकायें तथा श्राविकायें, चौथे में ज्योतिषी देवियाँ, पाँचवे में व्यन्तर देवियाँ, छठे में भवनवासी देवियाँ, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यन्तर देव, नौवें में ज्योतिषी देव, दसवें में वैमानिक देव, ग्यारहवें में मनुष्य श्रावक तथा क्षुल्लक और बारहवें में तिर्यंच जीव बैठते हैं। जब परम वीतराग देव के सान्निध्य में मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका, देव-देवियों के एक साथ बैठने का वर्णन नहीं आता तो सराग जगत् में जो आज युवकों और युवतियों की सहशिक्षा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है तथा अन्य क्षेत्रों में भी पुरुषों के साथ स्त्रियों का सम्पर्क बढ़ता जा रहा है , इसका कटु फल अब्रह्मभाव की वृद्धि के लिए अवश्यंभावी है। स्त्रियों के क्षणिक संसर्ग से भ्रष्ट हुए मुनि की कथा -

संकट में शकट मुनि :

शकट नाम के एक मुनि आहार के लिए वन से कौशाम्बी नगरी के निकट आ रहे थे। मार्ग कुछ लम्बा था। नगर के बाहर एक कुटी में शून्य स्थान समझकर वे वहाँ विश्राम हेतु बैठ गये। उस कुटिया में दासकर्म करने वाली एक स्त्री रहती थी। मुनि ने उसे पहचान लिया कि पहले बालक अवस्था में यह और मैं एक साथ

पढ़ते थे। मुनि अपने आहार के प्रयोजन को भूल गये और उस जैनिका जयनि नाम की स्त्री के साथ वार्तालाप करने लगे। इससे दोनों का मन परस्पर आकृष्ट हो गया और शकट मुनि ने अपना निर्मल चरित उस स्त्री की किंचित् काल की संगति से ही छोड़ दिया और उसके साथ भ्रष्ट होकर वहीं रहने लगे।

अतः स्त्री संसर्ग से होने वाले दोषों को जानकर महान् शीलरत्न की रक्षा के लिए स्त्री संसर्ग सदा काल, सर्वथा त्याग देना चाहिए।

❋ वृद्धसेवा :

1. जिसमें शील, क्षमा आदि धर्म बढ़े हुए हैं, वे वृद्ध हैं और जिनके ये शील आदि वृद्धिगत नहीं हैं अथवा हैं ही नहीं, उनकी उम्र ज्यादा होने पर भी वे वृद्ध नहीं हैं।
2. जिनके आत्मतत्त्व रूप कसौटी से उत्पन्न भेदज्ञान रूप आलोक से बढ़ा हुआ ज्ञान रूपी नेत्र है, उनको ही विद्वानों ने वृद्ध कहा है।
3. जो मुनि तप, शास्त्राध्ययन, ध्यान, विवेक, यम तथा संयमादि में बढ़े हुए हैं, वे ही वृद्ध हैं। केवल आयु अधिक होने से या केश सफेद होने से ही वृद्ध नहीं होते हैं।
4. जिनके निकट, मन को रंजन करने वाले विषयों के प्राप्त होने पर भी कभी चित्त से धीरता नहीं हटती है, उनको ही विद्वानों ने वृद्ध माना है।
5. जिनके सत् (श्रेष्ठ) आचरण स्वप्न में भी कलंकित नहीं हुए हैं, वे यौवन अवस्था में भी वृद्ध हैं।
6. जो वृद्ध होकर भी हीनाचरणों से व्याकुल हो भ्रमता फिरे, वह वृद्ध होने पर भी तरुण है और जो सत्-संगति में रहता है, वह तरुण होने पर भी सत्पुरुषों के समान प्रतिष्ठा पाता है और वृद्ध कहा जाता है। बुद्धिमान मनुष्य की आयु जैसे-जैसे कम होती है यानी वह वृद्ध होता है, वैसे-वैसे उसका विषयों में प्रेम कम होता है, रतिक्रीड़ा मंद होती है। तरुण अवस्था में ये कामादि विकार दुर्निवार होते हैं। वृद्धत्व आने पर सब विकार शान्त होने लगते हैं। इसलिए वृद्ध पुरुषों की सेवा, उनका सहवास ब्रह्मचर्य में महान् उपयोगी होता है। जीवों का मोह शान्त भी हुआ हो किन्तु वह तरुणों के संसर्ग से क्षुभित हो जाता है, जैसे पत्थर के गिरने से शान्त जल का कर्दम (कीचड़) शीघ्र ही क्षुभित होकर उछल जाता है, उससे जल मलिन बन जाता है।

   इस जीवन का मोह बढ़ा हुआ भी हो तो भी वृद्धजनों के सम्पर्क से

निश्चित ही शान्त हो जाता है, जैसे कि जल कर्दम कतक द्रव्य (फिटकरी) आदि से शान्त हो जाता है, वैसे ही वृद्ध की संगति से बढ़ा हुआ भी काम विकार शान्त हो जाता है। मोह है किन्तु वह पुरुष तरुणों की संगति से रहित है तो उसका मोह शान्त हो जाता है, जैसे पुष्प में सुगन्ध है किन्तु उसमें जल का संयोग होने से वह सुगन्ध नष्ट हो जाती है। युवा पुरुष भी वृद्ध की संगति से वृद्ध जैसे स्वभाव, शीलवाला या शांत हो जाता है। वृद्धों की संगति करने वाला तरुण मान-अपमान के भय से, शंका से और धर्मबुद्धि तथा लज्जा से वृद्ध जैसा आचरण करता है अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है।

तरुणों की गोष्ठी में बैठने से जीव विमूढ़बुद्धि वाला होता हुआ इन्द्रियों के विषयों में प्रेम करने वाला हो जाता है, जैसे शराबियों की गोष्ठी में बैठने से शराब की इच्छा हो जाती है। जो स्त्रियों की संगति में आया है, जिसकी इन्द्रियाँ चंचल हैं, जो स्वछन्द हुआ है तथा जो शीघ्र ही महिलाओं के सम्बन्ध से होने वाले दोषों को प्राप्त हुआ है, वह तरुण भी यदि शीलवान् वृद्ध की संगति करता है तो उस वृद्ध के संग से उसके वैराग्य भाव हो जाता है। जैसे-बछड़े के स्पर्श से गाय दूध झराने लगती है। जो पुरुष हर्षपूर्वक गुरुजनों का हुआ करता है, वृद्धों से युक्त वसतिका आश्रय लेता है, तरुण व्यक्तियों की संगति छोड़ देता है, वह निर्मल ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है। यह वृद्ध सेवा पापों को नष्ट करती है, हृदय को पवित्र बनाती है, शक्ति को बढ़ाती है, क्रोध को नाश करती है, विनय से युक्त करती है, मान से रहित करती है। वृद्ध सेवा सम्पूर्ण इष्ट सिद्धियों को देने वाली है।

सत्पुरुषों (वृद्धों) के द्वारा सूत्रों से शिक्षित किया हुआ पुरुष शरीर, आहार, संसार, काम और भोगाधिक से तत्काल विरक्त हो जाता है। सत्पुरुषों के द्वारा दी हुई शिक्षा का फल यह होता है कि वह मोक्षमार्ग से च्युत नहीं होता है क्योंकि उसके शरीरादिक में वैराग्य बना रहता है। जैसे-जैसे सत्पुरुषों की संगति में मन लगता है, वैसे-वैसे ही उससे तप रूपी लक्ष्मी उत्तम प्रीति प्रकाशित करती है। जिसने गुरुकुल की उपासना नहीं की, उसका विज्ञान प्रशंसा करने योग्य नहीं है, किन्तु निन्दा सहित होता है। जिस प्रकार मयूर नृत्य करते समय अपना पृष्ठ भाग उघाड़कर नृत्य करता है, इसी प्रकार तपस्वी गुरुजनों के निकट शिक्षण प्राप्त किये बिना जो किया जाये वह यथावत् नहीं होता है। इस कारण बड़े-बड़े योगीश्वरादि महापुरुषों की संगति में रहकर ही उनकी आज्ञा अनुसार प्रवर्तना चाहिए, जो सत्पुरुषों की उपासना करते हैं, वे तप आदि नहीं करने पर भी पवित्र गति को प्राप्त होते हैं। महापुरुषों की संगति कल्पवृक्ष के समान समस्त मनोवांछित फल देने में

समर्थ है। सत्पुरुषों के उपदेश का एक अक्षर ही मुक्ति का बीज होता है क्योंकि सदुपदेश के प्राप्त होने से स्वप्न में भी मनुष्य में कुबुद्धि का प्रादुर्भाव नहीं होता। अनादिकाल का अन्तरंग का अन्धकार भी महात्माओं के संसर्ग रूपी प्रदीप के प्रकाश से नष्ट हो जाता है। दैव (भाग्य) के विमुख होने से माता भी कदाचित् पुत्र की अहितैषिणी हो जाये तो आश्चर्य नहीं, किन्तु भक्तिपूर्वक की हुई वृद्ध सेवा किसी भी प्रकार से भाग्य के विपरीत होने पर किसी भी काल में हानिकारक नहीं होती है। सत्पुरुषों की पवित्र वाणी जिसके कानों में प्राप्त होकर हृदय में प्रकाशमान नहीं हुई है, वह रंक अंधा ही है क्योंकि सत्पुरुषों की वाणी सुनने से ज्ञानरूपी नेत्र निश्चित रूप से खुल जाते हैं।

विषयों के मध्य में रहते हुए भी यदि यति वैराग्य-परक इन काम-दोष आदि पाँचों विषयों का चिन्तन करता है तो इनसे लिप्त नहीं होता है, जैसे कि कमलों का समूह जल में वृद्धिगत होता है, किन्तु क्या जल द्वारा लिप्त होता है ? नहीं होता है।

जिस प्रकार सागर में प्रविष्ट हुए पुरुष का जल द्वारा स्पर्श नहीं होना आश्चर्यकारी है, उसी प्रकार विषय में स्थित यति का विषयों से स्पर्शित नहीं होना उनसे अलिप्त ही रहना आश्चर्यकारी है।

दोषरूपी श्वापद-जंगली पशु जिसमें रहते हैं, वंचना-ठगाई से जो गहन हो रहा है, भयावह है, असत्यरूपी वृक्षों से जो भयंकर है, अशुचि रूपी घास से जो व्याप्त है, ऐसे स्त्री रूपी वन में निवास करते हुए भी मुनि नष्ट नहीं होता।

स्त्रियों को पुरुषों से मोह हटाने के लिए उनके दोषों को सोचते रहना चाहिए। शुद्ध शीलवती स्त्रियों को अपने शील की रक्षा के लिए खोटी बुद्धि वाले पुरुष को दूर से उसी प्रकार छोड़ देना चाहिए। जिस प्रकार बुद्धिमान जन व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों को दूर से ही छोड़ देते हैं। उनके पास तक नहीं फटकते। जिस प्रकार कोई ब्रह्मचारी स्त्रियों से सम्बन्ध, उनके साथ वार्तालाप, उनके यहाँ आना-जाना आदि छोड़ देता है उसी प्रकार ब्रह्मचारिणी स्त्रियों को भी पुरुषों के साथ सम्बन्ध वार्ता आना जाना आदि छोड़ देना चाहिए। संसार में सभी स्त्रियाँ दोषयुक्त नहीं होती हैं, बहुत सी स्त्रियाँ देवों के द्वारा भी पूजनीय होती हैं। अतः स्त्रियों को अपने शील की रक्षा के लिए निरन्तर 1. कामदोष, 2. पुरुष के दोष, 3. देह की अशुचिता, 4. पुरुष-संसर्ग दोष (हानि), 5. वृद्धसेवा से लाभ आदि विचार करते रहना चाहिए।

काम की चाह के दाह को सह लेना अच्छा है परन्तु शील (ब्रह्मचर्य) का

खण्डन अच्छा नहीं है। जो मानव शील खण्डन की आदत डाल देता है, निश्चय से उसका नरक में पतन होता है। जैसे कोई गाली दे, सुनने वाला उसको सह ले तब परस्पर कलह या युद्ध अथवा झगड़ा होने का मौका नहीं आता। परन्तु यदि नहीं सहे और बदले में पुनः गाली दे तो परस्पर कलह बढ़ते-बढ़ते मारपीट हो जायेगी। इसी प्रकार काम की दाह को सहन कर लेने से सहनशीलता बढ़ेगी और धीरे-धीरे काम की दाह शमन (शान्त) हो जायेगी। परन्तु जो काम के अधीन होकर शील का खण्डन कर स्त्रियों में रति करने लगेगा तो उसकी चाह अधिक बढ़ती जायेगी और वह बार-बार स्त्रीसेवन करेगा। उसके स्वस्त्री, परस्त्री, वेश्या आदि का विवेक समाप्त हो जायेगा तथा वह दुर्गति को प्राप्त होगा।

''काम की जलन थोड़े काल में मिट जाती है, सदा नहीं रहती परन्तु काम-सेवन से महान् पाप का बन्ध होता है जो जीव को नरक के गड्ढे में गिरा देता है।''

''अति तीव्र काम की दाह से भी थोड़े ही काल तक पीड़ा रहती है परन्तु ब्रह्मचर्य को खंडित कर देने से करोड़ों जन्मों में कष्ट सहने पड़ते हैं।''

अमितगति आचार्य उपदेश करते हैं कि हे धीर! वीर! अपने हृदय को वैराग्य रूपी दृढ़ कवच से वेष्टित करके स्त्रियों के कटाक्ष बाणों की पड़ती हुई पंक्ति का निवारण करो। हे भाई! ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए केवल स्त्रियों के संसर्ग का ही निषेध नहीं किया है किन्तु विट-विद्यावलम्बी व्यभिचारी स्त्री-पुरुष का संग भी त्यागने योग्य कहा है।

1. जो नागिन के समान स्त्रियों का संग सदा छोड़ता है, उस योगी के पवित्र ब्रह्मचर्य स्थिर होता है। जो सदा ही समस्त स्त्री वर्ग में विश्वास नहीं करता है, सदा उनसे सावधान रहता है, वही अपने ब्रह्मचर्य को यावत् जीवन अखंडित रूप से सुरक्षित रखता है।

2. जन समुदाय में मेरा अपवाद न हो, मुझे कोई गलत दृष्टि से न देखे, मेरा अपमान ही धर्म का अपमान है। मैंने सर्वोत्कृष्ट व्रत धारण किया है, उसमें किसी प्रकार का दूषण तो नहीं लग रहा है ? इन बातों को जो सोचेगा तथा जिसे लोकोपवाद से लज्जा आती है, वही अपने ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखेगा। जिसे इन बातों की परवाह नहीं है, लोग कुछ भी कहें पर इस पर कुछ शर्म (लज्जा) नहीं है, धर्म की अप्रभावना का कु छ भान नहीं है, वह स्वच्छन्द आचरण कर अपने ब्रह्मचर्य में शिथिल होगा। इन सब बातों पर विचार करने वाला ही अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा अच्छी तरह कर सकेगा।

3. जो स्त्रियों के रूप को ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान (ज्येष्ठ के सूर्य को अधिक काल तक कोई नहीं देखता) चिरकाल तक नहीं देखता, शीघ्र ही अपनी दृष्टि को हटा लेता है, उसका ब्रह्मचर्य स्थिर होता है।

4. जिस पुरुष का मन स्त्रियों के गंध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द में कभी नहीं जाता, उस पुरुष का ब्रह्मचर्य व्रतअखण्डित रहता है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय बताते हुए आचार्य सकलकीर्ति महाराज कहते हैं कि स्त्रियों के शृंगार की कथा कहना भी कामोद्रेक का कारण है इसलिए ब्रह्मचारियों को अपने मन, वचन, काय को शुद्ध रखकर स्त्रियों के शृंगार की कथा न कभी सुननी चाहिए और न कभी कहनी चाहिए। स्त्रियों के हास, विलास, शृंगार, गीत, नृत्य, कला आदि सब ही राग उत्पन्न करने वाले हैं इसलिए बुद्धिमान लोग इनको कभी नहीं सुनते हैं, स्त्रियों का संसर्ग कलंक लगाने वाला अत्यन्त निंद्य है इसलिए ब्रह्मचारी पुरुषों को स्त्रियों का संसर्ग क्षणमात्र भी नहीं करना चाहिए। शरीर का सब तरह का संस्कार काम और राग को बढ़ाने वाला है तथा निन्दनीय है इसलिए ब्रह्मचर्य की रक्षा करने में जिनका मन लगा हुआ है, ऐसे बुद्धिमान पुरुषों को किसी भी प्रकार का शरीर का संस्कार नहीं करना चाहिए ब्रह्मचर्य की इच्छा रखने वाले पुरुषों को न तो बल देने वाले दूध आदि का (अतिमात्रा में)आहार करना चाहिए, न लड्डू आदि स्वादिष्ट पदार्थों का आहार करना चाहिए। क्योंकि ये सब पदार्थ काम रूपी अग्नि को प्रज्ज्वलित करने वाले हैं। जिस प्रकार घास-फूस के संयोग से घर में अग्नि उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार पौष्टिक आहार के सेवन से शरीर में कामाग्नि उत्पन्न हो जाती है।

यह शरीर कामरूपी सर्प का घर है, इसलिए अपने ब्रह्मचर्य को विशुद्ध रखने के लिए अन्न-पान, आसन आदि से इसकी रक्षा तो करनी ही चाहिए किन्तु इन्द्रिय-भोगों की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। इसका कारण यह है कि शरीर के सुख की इच्छा करने वालों के शरीर में काम का प्रकोप उत्पन्न हो जाता है और फिर समस्त व्रतों के साथ उसका ब्रह्मचर्य भी शीघ्र ही भाग जाता है। यही समझकर शारीरिक सुखों का विष मिले हुए अन्न के समान सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। इसी प्रकार पौष्टिक आहार, मुख आदि शरीर के अंगों का संस्कार और अधिक शयन आदि का भी सर्वदा त्याग कर देना चाहिए। स्त्रियों के हाव-भाव से भरे हुए मुख को कभी नहीं देखना चाहिए। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए माता, बहिन, पुत्री, गूंगी, वृद्धा इन सभी स्त्रियों से डरना (बचना) चाहिए। स्त्री-रूप को देखने की कभी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि स्त्रियाँ अग्नि के समान सर्वस्व जलाती हैं।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :-

1. स्त्रियों के साथ रहने, उन्हें प्रेम तथा राग से देखने, उनसे मीठे-मीठे वचन बोलने, उनकी सेज पर सोने-बैठने, उनके साथ पूर्व में भोगे हुए भोगों को याद करने आदि का त्याग करना चाहिए।
2. उत्तेजक पदार्थ अत्यधिक मिर्च, राई, गरम-मसाला अधिक खटाई, अधिक मिठाई, गरम तथा मादक वस्तुएँ नहीं खानी चाहिए। गरिष्ठ एवं भरपेट भोजन नहीं करना चाहिए तथा उत्तेजक औषधि का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए।
3. भोजन ताजा एवं सादा, नियमित समय पर दिन में एक बार ही करना चाहिए। अति आवश्यकता होने पर शाम को फलाहार कर सकते हैं। एक हफ्ते में कम से कम एक उपवास तो करना ही चाहिए।
4. भोजन मौन, शान्ति, प्रसन्नता एवं उच्च विचारों के साथ दिन में ही करना चाहिए। रात्रि में भोजन कभी नहीं करना चाहिए।
5. ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए रात्रि में दस बजे तक सो जाना चाहिए तथा प्रातः चार बजे तक उठ जाना चाहिए।
6. मल-मूत्र की बाधा को कभी नहीं रोकना चाहिए।
7. अपने मन को कभी खाली नहीं रखना चाहिए क्योंकि खाली मन शैतान का घर होता है। हमेशा आत्मविकास के बारे में सोचते रहना चाहिए।
8. भगवान् की मूर्ति का अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक दर्शन-पूजन, आराधना, स्तुति आदि करनी चाहिए तथा सच्चे साधुओं की मन लगाकर सेवा करनी चाहिए।
9. वैराग्य भावना तथा संसार की अनित्यता का चिन्तन करते हुए बार-बार दर्पण देखना, बाल सँवारना, चटक-मटक से रहना, इत्र,फुलेल, नेल-पॉलिश, लिपिस्टिक आदि का प्रयोग करना, चमकीले-भड़कीले, वस्त्र पहनना, फैशन से रहना तथा शौक-मौज का त्याग करना चाहिए।
10. यह हमेशा याद रखना चाहिए कि सजावट और शृंगार भी कामवासना जागृत करने में कारण हैं। शृंगार वास्तव में किया ही इसलिए जाता है कि मैं दूसरों को सुन्दर दिखूँ। शृंगार करने वाला स्वयं डूबता है और दूसरों को डुबाने में निमित्त होता है।
11. नियमित व्यायाम, आसन, प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए तथा सुबह शाम खुली हवा में बैठकर सद्भावना और चिन्तन करना चाहिए।

प्रातः चिंतनीय शुभ भावना -1. मैं चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ, मैं अनन्त गुणों का भण्डार, शाश्वत ध्रुव तत्त्व हूँ। 2. विषयवासना आत्मा के महान् शत्रु हैं, वज्र, अग्नि और विषधर से भी भयंकर हानि करने वाली, धर्मरूपी रत्न को चुराने वाली, खोटे मार्ग में भटकाने वाली एवं भव रोग बढ़ाने वाली है। 3. ये विषय-भोग सेवन करते समय तत्काल सुखद लगते हैं, परन्तु इनका फल भविष्य में महान् कटु होता है। 4. धन्य हैं उन पुरुषों को जिन्होंने वैराग्य और तप रूपी तलवार से इनका मूल से नाश कर शाश्वत सुख को प्राप्त किया। 5. मैं भी इस वासना पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करूँ।

12. ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय करते हुए तथा उसे नष्ट करने वाले साधनों से दूर रहने पर भी यदि मन संयमित नहीं हैं, दृढ़ संकल्पित नहीं है तो भी ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं की जा सकती है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन मुझे अच्छे ढंग से करना है, इस प्रकार मन में दृढ़ संकल्प रखते हुए मन को संयमित रखना चाहिए। कहा भी है:-

धैर्य न टूटे, पड़े चोट सो घन की।
यही दशा होनी चाहिए निज मन की॥

13. **दृष्टि की निर्मलता** :- स्त्रियों को ''परनर तात समान'' एवं पुरुषों को ''मातृवत् परदारेषु'' ऐसी शुद्ध दृष्टि रखनी चाहिए। यह विषय चिंता को मिटाने की बड़ी ही अच्छी दवा है। जब तक हम किसी स्त्री की ओर पलक उठाकर भी नहीं देखेंगे, उसका मुँह काला है, गोरा है, ऐसा नहीं जानेंगे, तब तक यदि प्रत्यक्ष हमारे सामने उर्वशी भी आकर खड़ी क्यों न हो जावे पर वह भी हमें एक रत्ती भी डिगा नहीं सकती, हमारे चित्त को बिल्कुल विचलित नहीं कर सकती।

ठीक ही कहा है -

अहिविष तो काटे चढ़े, यह चितवत चढ़ जाय।
ज्ञान ध्यान बल धर्म को, प्राण सहित खा जाय॥

अर्थात् कृष्ण सर्प के विष से भी बढ़कर विषयजन्य विष अत्यन्त भयानक है, क्योंकि सर्प के काटने पर मनुष्य कदाचित् ही मरता है, परन्तु यह विषय विष तो इतना उग्र है कि उसकी ओर देखने मात्र से मनुष्य मिट्टी में मिल जाता है, अपने ज्ञान, ध्यान, तप, बल आदि सर्वस्व खो देता है। **''स्त्री के सारे शरीर में जहर भरा हुआ है।''** ऐसा कहने के स्थान पर

यदि यों कहा जाये कि सब विष उसकी दृष्टि में ही भरा है, तो यथार्थ रहेगा। यदि सारा संसार आपको कण्टकवत् प्रतीत होता हो तो स्वयं अपने पैर में संयममय जूता डालकर बाहर निकालना ही उचित होगा, बुद्धिमानी होगी।

14. ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए 'सिद्धासन' करें। प्रथम दायें पैर को मोड़कर एड़ी को लिंग एवं गुदा के मध्य कोमल स्थान पर टिका दें, बायें पैर को मोड़ें और दाएँ पैर की पिंडली पर टिकाएँ, हथेलियाँ खुली रहें, अँगूठे एवं तर्जनी को मिलाएँ, मेरुदण्ड सीधा रहे। अथवा 'पद्मासन' करें। बायें पैर की एड़ी और पंजे को दोनों हाथों का सहारा देते हुए मोड़कर दाहिनी जाँघ पर रखें। बायीं एड़ी को नाभि के नीचे दाहिनी ओर सटा दीजिए। एड़ी का दबाव पेडू पर पड़ता हो। दाएँ हाथ को दाएँ घुटने पर तथा बायें हाथ को बायें घुटने पर रखिए। पीठ और गर्दन सीधी रखें। प्राणायाम करें अथवा लम्बा श्वास अन्दर लें और बाहर निकालें अथवा शीर्षासन करें। सिर जमीन पर टिकाएँ, ऊपर की ओर दोनों पैर सीधे करें। गर्दन सीधी रखें।
15. वीर्य विकार का नाश करने के लिए पवन मुक्तासन करें। पीठ के बल लेट जायें, क्रमशः एक-एक घुटने को मोड़कर पेट की तरफ लाकर दोनों हाथों से नीचे दबाएँ। श्वास अन्दर भरें। मुड़े हुए पैर को सीधा करें, श्वास निकाल दें, श्वास अंदर भरते हुए दूसरा पैर मोड़ें।

विशेष :- शीर्षासन पुरुष ही करें स्त्रियाँ नहीं।

16. शरीर पर पहने वस्त्र इतने पतले नहीं होने चाहिए जिससे शरीर के अंगोपांग नजर आते हों तथा मोटे वस्त्र इतने चुस्त (टाईट) नहीं पहनने चाहिए कि जिन्हें देखकर सज्जनों को लज्जा आवे और दुर्जनों की दृष्टि आकर्षित हो। जिस प्रकार बाड़ खेत की, ट्रेजरी धन की, सात्त्विक भोजन स्वास्थ्य की तथा सैनिक देश की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार शारीरिक, मानसिक आदि समस्त सुखों को देने वाले अपने शील रूपी रत्न की रक्षा करनी चाहिए।

❑ **ब्रह्मचर्य की प्रशंसा** :

ब्रह्मचर्य की आधारशिला पर ही दया, ज्ञान, तप, सत्य, अचौर्य, सम्यग्दर्शन आदि श्रेष्ठ गुण विकसित होते हैं। व्रत, जप, तप आदि श्रेष्ठ गुणों का प्राण ब्रह्मचर्य ही है। एक बार ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला असंख्यात जीवों को अभयदान देता है क्योंकि एक बार अब्रह्म का सेवन करने से स्त्री योनि में स्थित असंख्यात जीव

मरण को प्राप्त हो जाते हैं। महापुराण ग्रंथ में जिनसेनाचार्य ने कहा है कि भरतचक्रवर्ती ने छह खण्ड पृथ्वी के विजय काल में मागध देव को वश में करने के लिए मंत्र-सिद्धि हेतु ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था तथा अन्य मंत्र सिद्धि हेतु भी ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया था। अन्य दर्शनों के मंत्र साधक भी मंत्र-सिद्धि के लिए ब्रह्मचर्य को महत्त्व देते हैं।

यह मनुष्य जन्म करोड़ों भवों में भी बढ़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। उसको पाकर स्वर्ग-मोक्ष की सिद्धि करने वाले को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस संसार में जो ब्रह्म ज्ञानी हुए हैं और ब्रह्म स्वरूप हुए हैं, वे सब ब्रह्मचर्य के पालन से ही हुए हैं, ऐसा समझना चाहिए। संसार में जितने कल्याण हैं, मंगल हैं, भद्र हैं, अत्यन्त संतुष्ट करने वाले सुख हैं तथा जितनी ऋद्धि, वृद्धि व समृद्धि हैं, वे सब ब्रह्मचर्य से ही उत्पन्न होती हैं। इस ब्रह्मचर्य के प्रताप से देवगण बड़ी भक्ति से अत्यन्त तुच्छ और शक्तिहीन मनुष्य की भी सेवा करते हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्य के प्रताप से क्या-क्या नहीं होता। अनेक आत्माओं ने जो नित्य सुख स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति की है, वह एक ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही की है, ऐसा स्पष्ट समझ लेना चाहिए। भगवान् जिनेन्द्रदेव ने ब्रह्मचर्य को मोक्षसुख की सीढ़ी बतलाया है। इस एक ही ब्रह्मचर्य से कभी नाश न होने वाले मोक्ष की सिद्धि होती है। जिस पुरुष ने भक्ति पूर्वक तथा मन, वचन तथा काय की शुद्धि पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है, उस पवित्रात्मा ने मोक्ष रूपी स्त्री ही प्राप्त कर ली है, ऐसा जानना चाहिए। जिसका ब्रह्मचर्य व्रत मन, वचन और काय की शुद्धता से अत्यन्त निर्मल है, उसी का चरित्र सफल समझना अन्य जीवों का चरित्र केवल ब्रह्मचर्य के अभाव में गन्ध विहीन पुष्प के समान निरर्थक ही है। इसलिए हे आत्मन्! अनेक गुणों से भरपूर और महापवित्र ऐसे इस ब्रह्मचर्य व्रत को तू धारण कर, क्योंकि इसी के बल पर मुनि लोग संसार रूपी समुद्र से पार होते हैं। जो ब्रह्मचर्य जगत् पूज्य है, श्रेष्ठ धर्म स्वरूप है और मुनियों के द्वारा सेवन करने योग्य है, ऐसे ब्रह्मचर्य की रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए।

ऐसा कौन व्यक्ति है, जो न तो स्त्रीजन के वशीभूत है और न जिसका काम के द्वारा मान खंडित हुआ है? कौन इन्द्रियों के द्वारा नहीं जीता गया है? कषायों के द्वारा कौन सन्तप्त नहीं हुआ है? इसका मार्मिक उत्तर यही है कि जो अन्तरंग बहिरंग परिग्रह से रहित अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे ही संसार में जितेन्द्रिय हैं। यह व्रत सर्व व्रतों में सार्वभौम के समान है तथा इस व्रत के पालन करने वालों की देव भी रक्षा करते हैं उनके लिए अग्नि भी पानी हो जाती है,

तलवार का वार भी फूलों का हार तथा सूली भी सिंहासन में परिवर्तित हो जाती है। जो शीलवान होता है, उसका देव-दानव, मंत्र-तंत्र आदि भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। देखो, सीता रावण के घर पर छह मास तक रही थी लेकिन शील के प्रभाव से त्रिखण्डाधिपति रावण उसको स्पर्श तक नहीं कर पाया। जब सीता की अग्नि परीक्षा हुई थी, जलती हुई अग्नि की ज्वाला ऐसी लग रही थी, मानो यह पूरी अयोध्या को ही भस्मीभूत कर देगी। लेकिन वह अग्नि भी सीता के शील के प्रभाव से देखते-देखते पानी हो गई। जो शील इन्द्रों के आसन को भी कम्पायमान कर देता है, उस शील की प्रशंसा कहाँ तक की जावे, वह तो मोक्ष-लक्ष्मी को भी देने में असमर्थ है।

मनुष्य स्त्री के साथ कितना ही दुराचार करने की कोशिश करे, कितना ही उसे तिरस्कृत करे, अपमानित करे एवं नाना प्रकार की यातनायें देवे, लेकिन स्त्री अपने शील के प्रभाव से पुरुष को उसी समय सही मार्ग पर ले आती है। नारियों को भले ही तुच्छ हृदय वाली माना गया है, परन्तु नारी की महानता देखो, उसका पतिव्रत धर्म कितना आश्चर्य उत्पन्न करने वाला है। सती शीलवती नारियाँ अपना पूरा जीवन कष्ट के साथ बिता सकती हैं लेकिन अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष को बुरी निगाह से कभी नहीं देखती हैं तथा वे कभी अपने पति की निन्दा नहीं सुन सकती हैं। सती अंजना ने बाईस वर्ष तक अपने पति के सामने रहते हुए भी सहवास को प्राप्त नहीं किया और साथ ही सास आदि के तानों को भी सहन करती रही लेकिन उसने कभी भी पवनंजय को छोड़कर हृदय में किसी अन्य को नहीं चाहा था और न कभी पवनंजय को हीन दृष्टि से देखा। वह शीलवती, सास और पति के द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर भी, यहाँ तक कि युद्ध में जाते समय जब अंजना पवनंजय की आरती करने गयी, तब वह (पवनंजय) उसे लात मारकर चला गया, फिर भी अंजना ने बुरा नहीं माना। सोचा कि ''आज तो मेरा बड़ा भाग्य है कि पति के चरणों का स्पर्श मुझे मिला।'' तथा लात मारने पर पवनंजय के अशुभ होने की, युद्ध में हार होने की या किसी प्रकार के अमंगल की कामना नहीं की, धन्य है वह। उसी दिन इस घटना को देखकर बसन्तमाला बोली-''देखो अंजना! पवनंजय कितने निष्ठुर हैं। वे नारी के कोमल हृदय को नहीं पहचान पाये।'' अंजना उसी समय बसन्तमाला को फटकारती है और कहती है ''सखि! तुमने आज तक मुझे प्रेमभरी बात कही, लेकिन आज तुमने मुझे इतने कठोर, मर्मभेदी वचन क्यों कहे? आज के बाद यदि ऐसे वचन भूल से भी कह दिये तो फिर तेरे लिए मेरे (अंजना) समान कोई बुरा नहीं होगा।'' यह था उसका पतिव्रत

धर्म। यह थी उसके हृदय की विशालता, यह था उसका शीलव्रत। इसी शील के प्रभाव से तो वे पवनंजय युद्ध क्षेत्र में जाते हुए कायर की भाँति रास्ते से ही रातोंरात लौट आये थे। पुनः युद्ध में जाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके लौटे थे। लेकिन अंजना के लिए वन-वन में भटकते रहे, वृक्ष-वृक्ष से पूछते रहे तथा पागल की भाँति खाना, पीना, सोना सब भूल गये। अहो! यह शीलव्रत कितना महान् है।

मात्र जैनधर्म में ही इस शीलव्रत को महान् नहीं माना है बल्कि सभी धर्मों में शीलव्रत को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। आयुर्वेदशास्त्र तो उसी व्यक्ति को सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली मानता है जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि पुराने जमाने में जो जैन नहीं थे, वे भी परस्त्री को कभी गलत दृष्टि से नहीं देखते थे, परन्तु अपनी स्त्री में ही सन्तोष रखते थे।

❑ **परदारेषु मातृवत् :**

एक बार की घटना है- शिवाजी ने कल्याण प्रान्त को अपने अधिकार में करने के लिए सेना को युद्ध करने भेजा। शिवाजी की सेना विजयश्री लेकर लौटी तब शिवाजी ने मंत्री से पूछा-''मंत्री! कल्याण प्रान्त पर अधिकार करके आप क्या-क्या उपहार लाये हैं ?'' मंत्री ने कहा ''महाराज! भारत की सबसे अनुपम उपहार वस्तु आपके लिए लाया हूँ। वह है कल्याण प्रान्त के सरदार की बहू, जो रूप-सौन्दर्य में विख्यात है।'' यह सुन शिवाजी उदास होकर बोले- ''मंत्री! तुमसे मुझे इस घोर अनर्थ होने की आशा नहीं थी। उस सरदार की बहू क्या तुम्हारी और हमारी बहू नहीं है ? वह अपनी बेटी के तुल्य है। जाओ, उसे आदरपूर्वक उसके घर छोड़कर आओ।'' कितनी महानता थी उनकी, कितनी इन्द्रियों पर विजयता थी उनकी। जिस सुन्दरी को देखकर बड़े-बड़े दृढ़ संकल्पी पिघल गये, लेकिन शिवाजी का अपना सिद्धान्त था ''परदारेषु मातृवत्'' वे इसी सिद्धान्त पर अटल रहे तथा घर आई कामिनी को भी माता और पुत्री के समान देखा और सम्मानपूर्वक लौटा दिया। वास्तव में, शिवाजी जैसे महापुरुषों की जीवनगाथा ही इतिहास के पृष्ठों पर लिखी जाती है, जो इतिहास के पृष्ठों की शोभा बढ़ाने वाली होती है।

शीलवान आत्माओं का मन वज्र से भी अधिक कठोर होता है, तीन लोक के सम्पूर्ण बड़े-बड़े पर्वतों को तोड़ा जा सकता है, अर्थात् विचलित किया जा सकता है लेकिन शील धुरन्धर आत्मा के मन को तीन लोक की कोई शक्ति विचलित नहीं कर सकती है। ऐसे ही विजितमना की स्तुति करते हुए ''मानतुंगाचार्य'' ने ''भक्तामर-स्तोत्र'' में लिखा है :-

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-

नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्द्राद्रि शिखरं चलितं कदाचित्।।15।।

अर्थ : हे भगवन्! आपका मन स्वर्ग की देवांगनाओं के द्वारा अनेक प्रकार के हाव-भाव करके, विचलित करने का प्रयत्न करने पर किंचित् मात्र भी विचलित नहीं हुआ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि कल्पान्त काल की वायु से भी क्या कभी सुमेरु पर्वत विचलित होता है ? नहीं होता है। उसी प्रकार हे जिनेश! वे देवांगनाएँ किसी सामान्य साधु, गृहस्थ या सदाचारी को विचलित कर दें लेकिन आप जैसे विजितमना को कैसे विचलित कर सकती है ? आप जैसे अचलमना को तो तीन लोक की सम्पूर्ण स्त्रियाँ मिलकर भी विकारी बनाना चाहें तो भी समर्थ नहीं हो सकती है।

उपसर्गजयी, कामजेता, जिन्होंने भर यौवन में जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली थी, ऐसे बाल ब्रह्मचारी तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए आचार्य कुमुदचन्द्र अपर नाम आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने कल्याणमन्दिर स्तोत्र में लिखा है -

यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्द्धरवाडवेन ।।11।

अर्थ : जिस कामदेव ने हर, महादेव शंकर आदि देवों को भी हतप्रभावी कर दिया, अर्थात् वे बड़े-बड़े तपस्वी भी उस काम के सामने अपने आपको वश में नहीं रख पाये। वे वासना के वशीभूत होकर तप से भ्रष्ट हो गये, लेकिन उस कामदेव को भी हे स्वामिन्! आपने क्षणभर में नष्ट कर दिया। ठीक ही है, जो जल अग्नि को बुझा देता है, वह जल भी प्रचण्ड बड़वानल के द्वारा क्या नहीं पिया गया अर्थात् पिया ही गया।

जब जैन साहित्य पढ़ते हैं तो उसमें सतियों की जीवन गाथा को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि वे मानवी थीं या कोई दैविक शक्ति उनमें थी जिसके बल से उन्होंने अपने ऊपर आई पहाड़ के समान बड़ी-बड़ी विपत्तियों को भी हँसते-हँसते झेल लिया और अपने सतीत्व पर आँच नहीं आने दी। उन्होंने शील को सुरक्षित रखा। धन्य हो उनके शील को जिसके प्रभाव से इन्द्रों के आसन भी कम्पायमान हो गये और जिससे बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्तियों के चित्त भी आश्चर्य को

प्राप्त हो गये, जिनकी गाथा महामुनियों ने गायी और जिनेन्द्र भगवान् की देशना में भी उन्हें शीलवती के नाम से कहा गया, उनमें से एक सती है अनन्तमती।

❑ ब्रह्मचर्य से लाभ : प्रशस्त ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का पालन शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से किया जाना चाहिए। अदृष्टवीर्य को ब्रह्मचारी कहते हैं, जो अपने शुक्र संचय को देह में ही पचा लेता है। ब्रह्मचर्य-पालन से मनुष्य स्वस्थ्य, दीर्घजीवी, सात्त्विक और प्रशान्तात्मा बनता है। उस ऋषि के सामने आगम रहस्य स्वयं ही प्रत्यक्ष हो उठते हैं। इस प्रकार दैहिक ब्रह्मचर्य मानसिक ब्रह्मचर्य का उपकारक है। ब्रह्मचर्य पालन करने से मेधा (धारणा शक्ति) की वृद्धि होती है। शतावधान और सहस्रावधान प्रयोग ब्रह्मचर्य से ही सिद्ध किये जाते हैं। '**मरणं बिंदुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्**' यह ब्रह्मचर्य का मूल सूत्र है। निरंतर स्वाध्याय, तप, शौच और आत्मविशुद्धि में लगे रहने से ब्रह्मचर्य का पालन सुगम हो जाता है। ब्रह्मचर्य महान् तप है, सर्वोत्तम व्रत है और ज्ञान-विज्ञान की शोध में सहायता करने वाला तीसरा नेत्र है। ब्रह्मचर्य का पालन अमृत है तथा इसका नाश ही मृत्यु है ''**अमृतान् मृत्युर्निवर्तते**'' अमृत से मृत्यु पराजित हो जाती है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह द्वादशांग के रहस्य को आत्मा की निर्विकार स्थिति को तथा मोक्षमार्ग को सहज ही पा लेता है। जो ब्रह्मचर्य धारण करता है वह सहस्रकोटिभटों के पराक्रम को पराजित करने की शक्ति रखता है।

ब्रह्मचर्य का परिपालन करने से शरीर में शक्ति और मन में स्फूर्ति, उत्साह एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। शरीर में शीत-उष्णता को सहन करने की ताकत बढ़ती है। शरीर पर रोगों का हमला जल्दी नहीं हो पाता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले का शारीरिक बल इतना बढ़ जाता है कि वह थोड़ी सी सर्दी में खाट नहीं पकड़ता है और न ही थोड़ी सी धूप में मुरझाता है। इसलिए तो परमपूज्य आचार्यश्री विद्यासागरजी आदि जैसे जैन साधु पौष-माघ की तीव्र सर्दी में भी चटाई, घास आदि का प्रयोग नहीं करते हुए भी बीमार नहीं होते हैं और गृहस्थ यदि एक दिन स्वेटर नहीं पहने तो उसे जुकाम हो जाता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला परिश्रम से कभी घबराता नहीं है तभी तो जैन साधु एक ही दिन में 40-50 कि.मी. तक यात्रा (पैदल चलकर) आज भी सहज ही कर लेते हैं। ब्रह्मचारी बड़े-बड़े धक्कों की परवाह नहीं करता है। वह निर्भय होकर अपने मार्ग में बढ़ता जाता है। उसकी भावनायें अत्यन्त निर्मल एवं उच्च होती हैं। उसके चेहरे पर चमक एवं सुन्दरता होती है।

ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों के जीवन में सरसता होती है। वे चिरायु, कर्त्तव्य-परायण, तेजस्वी एवं पराक्रमी होते हैं। ब्रह्मचारी के आत्मिक एवं शारीरिक गुणों का विकास अतिशीघ्र होता है। उसके शरीर से अपरिमित तेज टपकता है। उसका शरीर वज्र के समान कठोर होता है। ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता बताते हुए महर्षि चरक ने 'संहिता' में उल्लेख किया है कि-

'' **ब्रह्मचर्य आयुष्कराणां श्रेष्ठतमः**'' ब्रह्मचर्य आयु वृद्धि (उदीरणा से बचाव) करने वाले तत्त्वों (कारणों) में श्रेष्ठतम कारण है।

''अष्टांग हृदयसूत्र'' में भी इसी बात पर प्रकाश डाला गया है-

स्मृतिमेधाऽयुरारोग्य-पुष्टीन्द्रियशोबलैः।
अधिका मन्दजरसो, भवन्ति स्त्रीषु संयताः॥

स्त्री संसर्ग स्त्री विषय में संयमी रहने वाले पुरुषों की स्मरण-शक्ति, मेधा, आयु, आरोग्य पुष्टि, इन्द्रियशक्ति सभी बढ़ी हुई रहती हैं तथा उनको बुढ़ापा भी देर से आता है। ब्रह्मचर्य और स्मरणशक्ति का बहुत निकट का सम्बन्ध है। यदि उन्हें जुड़वा भ्राता-भगिनी कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रायः लोगों के मुँह से सुना जाता है कि आयु की वृद्धि के साथ-साथ स्मरणशक्ति क्षीण होती जाती है। परन्तु ब्रह्मचर्य के साथ की गई विद्याराधना आयु की वृद्धि के साथ क्षीण न होकर वृद्धि को प्राप्त होती पायी गई है। आचार्य श्री विद्यासागरजी जैसे महान् सन्त आज के युग में इसके अद्वितीय उदाहरण हैं।

केवल एक ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही सर्वविद्यायें सहज सिद्ध हो जाती हैं। आज ब्रह्मचर्य जूझ रहा है। विचारों का पतन ही देश के पतन की अहं भूमिका है, क्योंकि जो व्यक्ति, जिसके अंग नहीं हैं, ऐसे अनंग (काम) को नहीं जीत सकता तो वह देश की समस्या का समाधान क्या करेगा ? ऐसा नाकाम, कायर पुरुष अज्ञान, अविद्या, राग, मद, द्वेष, इन्द्रिय-चपलता, स्वार्थवृत्ति आदि-आदि भीतरी समस्याओं से कैसे उभर सकेगा? जिसके पीछे पागल हो रहा है, यह उसकी नासमझी का परिणाम है। जब इन्द्रियाँ अपना समाधान नहीं ढूँढ़ सकी तब तेरा समाधान क्या ढूँढ़ेंगी ? अतः स्वयं के समाधान के लिए आत्मा को बलवान बनाना नितान्त आवश्यक है और उसके लिए पूरक है ब्रह्मचर्य से उत्पन्न मनोबल। जिस प्रकार संयुक्त मंत्र बल से विषधर वश में किये जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान-भावना से नित्य अभ्यास पूर्वक मनरूपी हाथी को वश में किया जा सकता है। तभी ब्रह्मचर्य जीवन को प्राप्त होगा, क्योंकि ब्रह्मचर्यमय जीवन परम पुरुषार्थमय जीवन है। यही परमात्मा के राज्य में प्रिय बनने का एवं जीवन का वास्तविक आनन्द उठाने का राज

है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ब्रह्मचर्य का पालन मात्र धार्मिक दृष्टि से ही करना चाहिए या अन्य कारणों से भी ? इसका उत्तर यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करना आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक सभी दृष्टियों से लाभदायक है। यदि वृक्ष की जड़ ढ़ीली है तो वह वृक्ष शीघ्र ही धराशायी हो जाता है। वह कभी पुष्पित, विकसित एवं फलित नहीं होता है। उसमें आँधी, तूफान के थपेड़ों को सहन करने की शक्ति नहीं रहती है। अथवा एक भवन की दृढ़ता, मजबूती, परिपक्वता चिरस्थायिता उसकी नींव पर ही आधारित होती है। यदि नींव कमजोर और खोखली होती है तो उस पर बनाया गया मकान गिर पड़ता है इस जीवन रूप भवन की आधारशिला ब्रह्मचर्य है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन सभी अवस्थाओं में करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। उनमें कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है –

1. मानसिक उल्लास
2. बुद्धि की तीव्रता
3. शारीरिक पुष्टता
4. सौन्दर्यवृद्धि
5. सहनशीलता
6. आत्मनिर्भरता
7. बन्धन से मुक्ति
8. अद्‌भुत शक्ति की अभिव्यक्ति

1. मानसिक उल्लास :- ब्रह्मचर्य के अभाव में जीवन ही नहीं रह जाता, वह केवल एक खोखला अस्थि-पंजर मात्र होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले में सदैव मानसिक उल्लास तथा स्फूर्ति बनी रहती है। उसका मनोबल (Will Power) इतना दृढ़ होता है कि आपत्तियों के वज्र गिरने पर भी कमजोर नहीं हो सकता। असफलताओं में भी उसके मुख पर मुस्कुराहट बनी रहती है। वह विपत्तियों में भी कभी अधीर नहीं होता है। जीवन के प्रत्येक संघर्ष के लिए उत्सुक रहता है। निराशा के क्षणों में भी उसे आशा की किरण दिखाई पड़ती है। मानसिक उल्लास के अभाव में जीवन मृत्यु में बदल जाता है, जिसमें मानसिक उल्लास नहीं है, वह संसार का कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता और वह मानसिक उल्लास ब्रह्मचर्य की आधारशिला पर ही टिका रहता है। अतः अपने मानव जीवन को सफ ल बनाना है तो प्रखर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

2. बुद्धि की तीव्रता :- ब्रह्मचारी की बुद्धि तीव्र होती है। वह कठिन से कठिन समस्या का समाधान भी शीघ्र ही कर लेता है। उसमें आत्मनिर्णय की क्षमता रहती है। वासनामुक्त बुद्धि सदैव सही दिशाबोध देती है। वह छोटे-छोटे कार्यों को करने में दूसरे का मुँह नहीं ताकता।

शतावधान और सहस्रावधान के प्रयोग भी ब्रह्मचर्य से ही सिद्ध होते हैं। आचार्य अकलंकदेव प्रत्येक बात को एक बार सुनकर ही याद (कंठस्थ) कर लेते थे। यह शक्ति उन्हें ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही प्राप्त हुई थी। ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों की स्मरणशक्ति बहुत तीव्र होती है। उन्हें किसी भी बात का बार-बार 'तोतारटन्त' जैसे याद नहीं करनी पड़ती है। आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज जब अपने शिष्य मुनि विद्यासागरजी को पढ़ाते थे तो कभी पुस्तक हाथ में लेकर नहीं पढ़ाते थे अपितु अष्टशती, अष्टसहस्री जैसे न्याय के कठिन ग्रन्थ भी मुँहजबानी ही पढ़ाते थे। ऐसी आश्चर्यजनक स्मृति की प्राप्ति का कारण उनके द्वारा पाला गया निर्दोष ब्रह्मचर्य ही था। इस विषय में एक ऐतिहासिक महापुरुष का उदाहरण हमारे सामने है-वे महापुरुष थे स्वामी विवेकानन्द। एक बार स्वामी विवेकानन्द के समक्ष पुस्तकालय के लिए ''ब्रिटेनिका विश्व कोश'' खरीदने की बात आई। उस समय वे बीमार थे। पुस्तकें खरीदी गयीं, उन्होंने उसी स्थिति में उनका अवलोकन प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद एक सज्जन स्वामी जी के पास आये और पुस्तकों के ढ़ेर को देख व्यंग्य से बोले-''स्वामीजी! जीवन में इतनी पुस्तकों को पढ़ लेना तो दुष्कर है परन्तु इनमें किस-किस विषय का वर्णन है यह जानकारी भी असम्भव है। क्या आप इन सब पुस्तकों को पढ़ेंगे?''स्वामीजी ने सज्जन की बात धैर्य से सुनी और मुस्कुराते हुए बोले-''आप यहाँ रखी प्रत्येक पुस्तक में से जहाँ चाहें वहाँ से प्रश्न पूछ सकते हैं।'' उस व्यक्ति ने हँसते हुए कई पुस्तकों में से कई गूढ़ प्रश्न पूछे। स्वामी जी ने सबका पुस्तकीय भाषा में ही सटीक उत्तर दिया। वह उनकी स्मरण शक्ति देख आश्चर्यचकित रह गया। स्वामी जी बोले -''इसका राज जानना चाहते हो तो सुनो-इस सबका कारण एक ब्रह्मचर्य है।''

3. शारीरिक पुष्टता :- एक विद्वान् ने कहा है कि शरीर का पोषण मात्र भोजन से ही नहीं होता, अपितु विचारों एवं भावनाओं से भी होता है। इसलिए साधु लोग रूक्ष और सात्त्विक आहार करने पर भी शारीरिक म्लानता को प्राप्त नहीं होते हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्य का परिपालन करने से शरीर को बल देने वाले वीर्य की क्षति नहीं होती है, जिससे ब्रह्मचारी में शीत-उष्णता को सहन करने की शक्ति होती है। वह थोड़ी सर्दी में न खाट पकड़ता है और न थोड़ी सी धूप में मुरझाता है। वह परिश्रम से घबराता नहीं है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति पौष्टिक आहार नहीं करने पर भी शक्तिशाली बना रहता है। आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज इसके जीवन्त उदाहरण हैं। वे कभी नमक, शक्कर, फल, काजू, किशमिश आदि आहार में नहीं लेते हैं फिर भी वे प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की सामायिक

ढाई-ढाई घण्टे तक निश्चल खड़े होकर करने पर भी थकान का अनुभव नहीं करते, जबकि अनेक बार पौष्टिक आहार करने वाला साधारण व्यक्ति पन्द्रह-बीस मिनट खड़ा रहकर भी थकान का अनुभव करने लग जाता है।

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी के द्वितीय शिष्य मुनि श्री विवेकसागरजी महाराज आहार में घी, दूध, दही आदि नहीं लेते थे फिर भी रात्रि के दो-ढाई बजे से लेकर प्रातः आठ बजे तक एक ही आसन से बैठकर ध्यान करते थे। इतनी देर तक एक आसन से बैठने पर भी कभी उनके मुँह पर म्लानता, थकान नहीं दिखाई देती थी। उनकी चर्या में चिड़चिड़ापन अनुभव में नहीं आता था। यहाँ तक कि तीन-चार उपवास हो जाने पर तो वे रात्रि में लगभग ग्यारह बजे ही उठकर ध्यान में बैठ जाते तथा प्रातः आठ बजे तक एक आसन से ध्यान करते रहते थे। यह सब उनके जीवन में पाले गये ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव था। अतः जिन्हें कम खाकर भी अपने शरीर को पुष्ट, बलवान, स्वस्थ्य बनाये रखना है, वे स्त्री में पूर्ण रूप से अथवा एकदेश संयम (ब्रह्मचर्य) का पालन अवश्य करें।

4. सौन्दर्यवृद्धि :- परमार्थ की दृष्टि से देखा जाये तो संसार के सभी पदार्थ न सुन्दर हैं न असुन्दर। उनमें से प्राकृतिक दृष्टि से हरे-भरे घने जंगल, पर्वतों से निकलने वाले कल-कल करते हुए झरने, तृषा से व्याकुल मार्ग में थके प्राणियों को तृप्त करती हुई अपने तीव्र प्रवाह में बहने वाली नदियाँ बहुत सुन्दर होती हैं पशुओं में गाय आदि के तत्काल प्रसूत बछड़े आदि तथा मनुष्यों में जब तक बाल्यावस्था में तेरे-मेरे की बुद्धि, स्वार्थ और वासना आदि विकार उत्पन्न नहीं होते तब तक बच्चा सर्वाधिक सुन्दर लगता है। पक्षियों में मयूर सुन्दर लगता है। परन्तु इन सबकी सुन्दरता क्षणिक है, वास्तविक नहीं यदि वास्तव में देखा जाये तो अनन्त गुणों का भण्डार आत्मा ही सुन्दर है। ऐसे सुन्दर आत्मा में रमण करने वाले महामुनीश्वर के शरीर का सौन्दर्य (आध्यात्मिक तेज) इतना प्रभावक होता है कि बड़े-बड़े पदवीधारी भी उनके चरणों में नम्रीभूत हो जाते हैं और अपने जीवन को सदैव के लिए उनके चरणों में समर्पित करने का प्रयास करते हैं। आज के इस विषम काल में भी आचार्यश्री विद्यासागरजी के व्यक्तित्व (सौम्य, समता, तेज आदि) से प्रभावित होकर सैंकड़ों किशोर, तरुण आत्मकल्याण हेतु उनके चरणों में अपना जीवन समर्पित कर चुके हैं। उनमें यह तेज, समता आदि उनके द्वारा निरतिचार पाले गये ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव है।

आज भौतिकता की चकाचौंध में मानव अपने शरीर के सौन्दर्य को निखारने के लिए पाउडर, क्रीम आदि कृत्रिम साधनों का प्रयोग कर रहा है, जो

अत्यन्त हिंसात्मक साधनों (क्रियाओं) से बनाये जाते हैं। वह यह नहीं जानता है कि ये हिंसात्मक कृत्रिम प्रसाधन हमें रूपवान, सुन्दर (ब्यूटीफुल) बनाने में समर्थ नहीं हैं। बल्कि खुजली, एक्जिमा आदि चर्म रोगों की उत्पत्ति के कारण ही बनते हैं। जीवनपर्यंत सौन्दर्य प्रदान करने वाला तो एक ब्रह्मचर्य ही है, जिसका परिपालन करने पर शरीर को सुन्दर बनाने के लिए किसी कृत्रिम उपाय (साधन) की आवश्यकता नहीं होती है। भले ही उम्र ढल जावे, शरीर कृश हो जावे, इन्द्रियाँ शिथिल हो जावे लेकिन ब्रह्मचारी के शरीर का सौन्दर्य, चेहरे का तेज कभी समाप्त नहीं हो सकता है। अतः यदि अपने सौन्दर्य को स्थायी बनाये रखना है तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें और पूर्ण रूप से पालन करने में समर्थ न हों तो स्वदारसन्तोषी अवश्य ही बनें।

5. सहनशीलता :-ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले में शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की सहनशीलता होती है। वह आयी हुई बड़ी-बड़ी आपत्तियों को सहज ही सहन कर लेता है। उदाहरण रूप में जिन सुकुमाल को बिस्तर पर पड़ा सरसों का दाना भी चुभता था, वे सुकुमाल मुनि तीन दिन तक अपने बच्चों सहित श्यालनी के भक्षण करने पर भी विचलित नहीं हुए। मार्ग में चलते-चलते पाँव लहू-लुहान हो जाने पर भी अपने मार्ग में हतोत्साही नहीं हुए। धन्य हैं वे। इसी बात को आचार्य श्री विद्यासागरजी ने अपने 'परीषहजय-शतक' में चर्या-परीषह का वर्णन करते हुए लिखा है-

सभी तरह के पादत्राण तज, नग्न पाद से ही चलते।
चलते-चलते थक जाते पर, निज पद में तत्पर रहते॥
कंकर-कंटक चुभते-चुभते, लहुलुहान पद लोहित हो।
किन्तु यही आश्चर्य रहा है, मुनि का मन ना लोहित हो॥

इसी सन्दर्भ में मुझे स्व. गुरुवर मुनिश्री विवेकसागरजी महाराज के जीवन का एक संस्मरण याद आता है-

एक दिन गुरुवर (रात्रि में) ध्यान में तल्लीन थे, तभी उनके बवासीर (पाइल्स) के मस्से फूट गए। उनसे खून निकलने लगा। खून निकलते-निकलते इतना निकल गया कि वह चटाई के नीचे से निकल कर पाटे के नीचे इकट्ठा हो गया। जब महाराज का ध्यान पूरा हुआ तो उन्होंने कहा-''अरे! देखो तो यह गीला-गीला क्या लग रहा है ?'' जब श्रावकों ने देखा तो आश्चर्यचकित हो कहने लगे, ''महाराज! धन्य हो आपको। आपके मस्सों में से इतना खून निकल चुका है कि वह पाटे के नीचे तक पहुँच गया और अभी तक आपको इस बात का ध्यान ही

नहीं।'' यह थी उनकी सहनशीलता। अतः अपने घर, परिवार, मित्रों में एकता, प्रेम, वात्सल्य एवं अखण्ड मित्रता बनाये रखने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करें, जिससे सहनशीलता की प्राप्ति हो एवं जीवन सुखमय बन सके।

6. आत्मनिर्भरता :- वासना से ग्रस्त मानव ही अपनी वासनापूर्ति के लिए दूसरे का सहारा ढूँढ़ता है। वह दीन-हीन बन रावण के समान भीख माँगता है तथा वासना से ग्रसित हो अपनी शारीरिक शक्ति, क्षीण कर दीन दरिद्र बन भटकता रहता है। परन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला भयानक वन-उपवन, नगर-श्मशान चाहे कहीं भी रहे, सदैव आनन्द का ही अनुभव करता है। ब्रह्मचारी का शारीरिक एवं मानसिक बल इतना प्रबल होता है कि वह किसी भी कार्य को करने हेतु दूसरों पर निर्भर नहीं रहता, बल्कि स्वयं ही हर कार्य को करने की क्षमता रखता है।

मध्यप्रदेश के सागर जिले के रहली नगर में देवी का एक मन्दिर था। वहाँ वर्ष में कई बार भैंसों, बकरों, मुर्गों आदि की बलि चढ़ाई जाती थी। यह बात वहाँ रहने वाले एक व्यक्ति को जो जन्म से ही ब्रह्मचारी था, ज्ञात हुई। वह उसी समय वहाँ पहुँचा जहाँ बलि चढ़ाने की तैयारियाँ हो रहीं थी। उसने देवी के भक्तों को बहुत प्रकार से समझाया तथा वेद, रामायण आदि के कथन भी बताये कि ''कहीं भी बलि का व्याख्यान नहीं किया गया है। हर स्थान पर हिंसा को पाप ही माना है। आप लोक व्यर्थ ही देवी का बहाना लेकर अपनी इन्द्रियों की पुष्टि हेतु नरकों के द्वार मत खोलो।'' देवी भक्तों में से एक भक्त बोला-''आप हमारी पूजा में विघ्न मत डालो, नहीं तो हमारी देवी नाराज हो जावेगी। हम गरीब लोग बिना मौत के मर जावेंगे।'' उस व्यक्ति ने गम्भीरता से कहा -''आप लोग मिथ्या अन्धकार में हैं, मैं कहता हूँ माँ देवी किसी की बलि नहीं चाहती हैं। यदि आपको विश्वास नहीं है तो मैं यहीं बैठा हूँ। यदि देवी प्रकट होकर बलि माँगेगी तो मैं अपनी बलि चढ़ा दूँगा तथा यदि वह प्रकट न हुई तो आपको आज से सदैव के लिए इस कुकृत्य को छोड़ देना होगा।'' भक्तों ने बात स्वीकार कर ली। रात्रि में कोई देवी प्रकट नहीं हुई जिससे वास्तविक स्थिति (देवी के बहाने माँस खाना) सामने आ गयी और उसी दिन से वहाँ बलि चढ़ना बन्द हो गया।

सार यही है कि अपने देश का विकास, समाज का उत्थान एवं धर्म की प्रभावना करने के लिए तथा अपना स्वतंत्र जीवन बनाने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

7. बन्धन से मुक्ति :-अब्रह्म का सेवन करने वाला तीव्र पापकर्मों का बन्ध करके परलोक में दुःखों को भोगता है तथा इस लोक में राजा आदि के द्वारा

दण्ड प्राप्त कर जेल (कारागृह) में जिन्दगी पूरी करता है। परन्तु पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का परिपालन करने वाले की बात तो दूर स्वदारसन्तोषी राज्य सेवारत वीर पुरुष बन्धन में पड़ा होकर भी दुष्ट राजा के सेवकों का हृदय परिवर्तित कर देता है। औरंगजेब के शासनकाल की एक ज्वलन्त घटना है :-

दुर्गादास राठौर का नाम मारवाड़ के वीरों में अग्रणी है। वे वीर थे और रूप में परम सुन्दर थे। औरंगजेब की बेगम 'गुलनार' की दृष्टि दुर्गादास पर पड़ी, वह उन पर मुग्ध हो गयी। उसे अब दुर्गादास ही दिखाई देने लगे। वह छिपकर नीरव रात्रि में उनके पास पहुँची। उसने कहा-''मैं बेगम गुलनार हूँ। मैं आपकी प्रेयसी बनने आई हूँ। मुझे आशा है कि मेरी प्रेम याचना व्यर्थ नहीं होगी। आप मुझे अपना प्रेम दें। मैं आपके रूप पर मुग्ध हूँ।'' दुर्गादास कुछ समझ नहीं सका। यह कैसी आपदा है। उसने कहा- ''माँ, तुम क्या कहती हो, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ तुम मेरी माँ हो, क्या एक पुत्र अपनी माँ के साथ ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है।'' बेगम काम-विह्वल बनी हुई थी। उसने कहा- ''माँ नहीं, आप मुझे प्रेयसी कहें।'' दुर्गादास ने कहा-''माँ! तुम माँ ही रहोगी। तुम इसके सिवा जो आदेश दो, वह मैं कर सकता हूँ।'' बेगम बोली-''देखो दुर्गादास! प्रार्थना की अस्वीकृति का क्या परिणाम होगा, यह तुमने सोचा है ?'' दुर्गादास बोला-''चाहे जो कुछ भी हो। मैं यह कार्य नहीं कर सकता।'' वह निराश होकर लौट गयी। जेलर ने इस घटना से प्रभावित होकर दुर्गादास से कहा ''आप इंसान नहीं, खुदा हैं।''

8. अद्भुत शक्ति की अभिव्यक्ति :- ब्रह्मचर्य का पालन करने से आत्मा का अद्भुत विकास होता है। ब्रह्मचर्य की वृद्धि होते-होते जब वह पूर्णता को प्राप्त होता है तब आत्मा की शैलेशी अवस्था प्रकट हो जाती है और तब यह आत्मा नियम से निर्वाण को प्राप्त हो जाती है। अतः जिसे अपना आत्म-कल्याण करना है, पूर्ण विकास करना है, संसार के दुःखों से बचना है, उसे इस अद्भुत प्रभावक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

शील का परिपालन करने वाले महातपस्वी मुनिराज को ही कोष्ठ बुद्धि आदि अठारह प्रकार की बुद्धिऋद्धि, जलचारण आदि नव प्रकार की क्रिया-चारण ऋद्धि, अणिमादि ग्यारह प्रकार की विक्रिया ऋद्धि, घोर तपोतिशय आदि सात प्रकार की तप ऋद्धि, मनोबल आदि तीन प्रकार की बलऋद्धि, जल्लौषधि आदि आठ प्रकार की औषधि ऋद्धि, आशीर्विष आदि छह प्रकार की रस ऋद्धि,अक्षीण महानस एवं अक्षीण महालय आदि अनेक ऋद्धियाँ प्रकट होती हैं, जिनके तप और शील के प्रभाव से विष से पीड़ित मरण शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति का शरीर भी

उनकी दृष्टि पड़ने मात्र से या उनके शरीर से स्पर्शित वायु के प्रभाव से क्षणभर में निर्विष हो जाता है। जिनके हाथ में आया हुआ विषमय भोजन भी (रस ऋद्धि के प्रभाव से) अमृतमय हो जाता है तथा रूखा, सूखा भोजन दुग्धमय, घृतमय हो जाता है। यह उनकी (जल्लौषधि आदि) ऋद्धियों का प्रभाव है कि जिनके शरीर का मल, मूत्र खंखार (कफ), नाक का मल तथा पसीने आदि का स्पर्श भी रोगों को नष्ट करने वाला है। ये सब ऋद्धियाँ ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही प्रकट होती हैं। क्योंकि ब्रह्म अर्थात् आत्मा और चर्य अर्थात् आचरण या स्थिरता। अतः ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ- आत्मा में स्थिरता और आत्मा में स्थिरता हुए बिना कोई ऋद्धियाँ प्रकट नहीं होती हैं। पाँचों इन्द्रियों को वश में किये बिना मन एकाग्र नहीं होता तथा मन के एकाग्र हुए बिना आत्मा में स्थिरता नहीं होती है। सारतः पाँचों इन्द्रियों पर विजय पाना ही ब्रह्मचर्य है। जब शरीर से ममत्व हटाकर जितेन्द्रिय महामुनिराज अपनी आत्मा में स्थिर होते हैं, तब उन्हें ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इसलिये तो ये ऋद्धियाँ भावलिंगी महामुनिराजों को ही प्राप्त होती हैं। मिथ्यादृष्टि, द्रव्यलिंगी या असंयमियों को नहीं। यद्यपि मिथ्यादृष्टि, असंयमी एवं पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक आदि भी ब्रह्मचर्य का (पूर्ण रूप से या स्वदार-संतोष रूप से) पालन करते हैं लेकिन उनके आत्मस्थिरता रूप निश्चय ब्रह्मचर्य का अभाव होने से ऋद्धियाँ प्रकट नहीं होती हैं। जैसे-जैसे आत्मा में स्थिरता होती है, वैसे-वैसे ब्रह्मचर्य में निखार, निर्मलता आती है और वह बढ़ती हुई निर्मलता चौदहवें गुणस्थानवर्ती स्नातक महामुनिराज के पूर्णता को प्राप्त होती है। तभी तो गोम्मटसार 'जीवकाण्ड' ग्रन्थ में श्री नेमिचन्द्राचार्य ने शैलेशी अवस्था तेरहवें गुणस्थान में न बताकर चौदहवें गुणस्थान में बताई है। क्योंकि तेरहवें गुणस्थान में भी योग सहित होने से आत्मा के प्रदेशों में कम्पन्न हो रहा है और वह कम्पन्न शैलेशी अवस्था प्राप्त करने में बाधक कारण है, क्योंकि शील के अठारह हजार भेदों को 'मूलाचार' में इस प्रकार बतलाया है -

जोग करणे सण्णा, इंदिय भोम्मादि समणधम्मे य।
अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्ठारससील सहस्साईं॥

तीन योग, तीन करण, चार संज्ञा, पाँच इन्द्रिय, दस पृथ्वीकायिकादि जीव भेद तथा उत्तम क्षमादि दस धर्म इनको परस्पर गुणा करने से (3×3×4×5×10×10)= 18000 भेद प्राप्त होते हैं।

इन्हीं अठारह हजार भेदों को अन्य प्रकार से बताया गया है-

अचेतन स्त्री- काष्ठ की, पाषाण की तथा चित्राम की, ये तीनों इनको मन और काय से गुणा करने पर 3×2=6 हुए। इनको कृत-कारित-अनुमोदना से गुणा

करने पर 6×3=18 हुए इनको पाँच द्रव्येन्द्रिय और पाँच भावेन्द्रिय, इन दस से गुणा करने पर एक सौ अस्सी हुए। इनको क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार से गुणा करने पर 180×4=720 भेद हुए। इनमें चेतन स्त्री, देवांगना, मनुष्यिनी तथा तिर्यंचिनी इन तीन में मन, वचन और काय का गुणा करने से 3×3=9 भेद हुए। इनमें कृत-कारित तथा अनुमोदना इन तीन का गुणा करने से 9×3=27 भेद हुए, इनमें पाँच द्रव्येन्द्रिय और पाँच भावेन्द्रिय इन दस का गुणा करने से 27×10=270 भेद हुए। इनमें आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं का गुणा करने से 270×4=1080 इनमें अनन्तानुबन्धी 4, अप्रत्याख्यानावरण 4, प्रत्याख्यानावरण 4 और संज्वलन 4 (क्रोध, मान, माया, लोभ) इन 16 कषायों से गुणा करने पर 1080×16=17280, भेद हुए।

इस प्रकार अचेतन स्त्रियों के 720 और चेतन स्त्रियों के 17280, सब मिलाकर शील के 18000 भेद होते हैं।

आचार्य वीरनन्दी स्वामी ने ''आचारसार'' में इन 18000 भेदों को इस प्रकार गिनाया है -

धर्मैर्गुप्तिभिः करणसंज्ञाऽक्षप्राणसंयमैः।
अष्टादश सहस्राणि शीलान्यन्योन्यसंगुणैः।।

दस धर्म, तीन गुप्तियाँ, तीन करण, चार संज्ञाएँ, पाँच इन्द्रियाँ और दस प्राण। संयम के इन भेदों को परस्पर गुणा करने से अठारह हजार शील होते हैं। (10×3×3×4×5×10=18000) किसी भी वस्तु के गुण-दोषों को जानकर दोषों से बचना और लाभ के लिये पुरुषार्थ करना ही जानने का समीचीन फल है।

आगम, तर्क, युक्ति, पौराणिक कथाओं और वर्तमान की घटनाओं के आधार पर पाठकगण ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय को समझकर दुर्गति को प्राप्त कराने वाले अब्रह्म से अपने शील की रक्षा करें।

❑❑❑

8. शील-रक्षा में तत्पर पुरुष एवं नारियाँ

(1) एक व्यक्ति घर में अकेली महिला को देखकर- ''मैं तेरे पति का मित्र हूँ'' इस बहाने से दरवाजा खुलवाकर भीतर चला गया और ऐसी-वैसी बातें तथा हरकतें करने लगा। महिला चतुर थी, उसने अपनी बुद्धि से काम लिया। वह दुःखी सी होती हुई बोली,- ''मैं भी यहाँ सुखी नहीं हूँ। कब से सोच रही थी कि यदि कोई अच्छा मित्र (जीवन-साथी) मिल जाये तो उसी के साथ भाग जाऊँ।'' वह व्यक्ति बोला- ''तो फिर चलो, अपन चलते हैं।'' वह बोली- ''कुछ देर आप बैठो। मैं नाश्ता लाती हूँ और कुछ आवश्यक सामग्री भी रख (जमा) लेती हूँ'' उसने (व्यक्ति ने) बात मान ली। वह विश्राम करने लगा। महिला गरम-गरम पकौड़े बनाकर लाई। उसने प्लेट सामने रख दी। वह बड़ी प्रसन्नता से भावी कल्पना में डूबा नाश्ता करने लगा। तभी महिला चतुराई से एक मुट्ठी पिसी हुई लाल मिर्ची उस पुरुष की आँखों में फेंकी और घर के बाहर जाकर आवाज लगाई- ''चोर-चोर है'', जिससे वह पकड़ा गया। इस प्रकार उसने शील की रक्षा की।

(2) कुछ दिन पहले का किस्सा है-भाई, बहिन, पिताजी एवं बड़ी बहिन का देवर चारों किसी नगर में अस्वस्थ पिताजी की चिकित्सा (इलाज) के लिए गये। वे एक धर्मशाला में रुके। भाई अपने पिताजी को लेकर डॉक्टर को दिखाने के लिए अस्पताल चला गया। इधर बहिन के देवर का मन बिगड़ गया। उसने लड़की को कमरे में किसी बहाने बुलाकर दरवाजा बंद कर लिया एवं पलंग पर बैठने के लिए कहा और अनेक रागभरी बातें करने लगा। लड़की बोली-''जरा मैं उस कमरे में रखी 'निरोगधाम' पुस्तक लेकर आ रही हूँ।'' वह दूसरे कमरे में गई तो वह भी पीछे-पीछे गया लेकिन लड़की ने बड़ी चतुराई एवं शीघ्रता से कमरे में जाकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। लड़के ने बहुत बार दरवाजा खुलवाना चाहा लेकिन जब तक भाई नहीं आया तब तक पूरी रात व्यतीत हो जाने पर भी उसने दरवाजा नहीं खोला और प्रातः पूरी वार्ता भाई से बताकर अपने शील की रक्षा की।

(3) एक बालिका किसी काम से बाजार गई। अपना काम करके जब वह लौट रही थी कि एक आवारा लड़का उसके पीछे लग गया। वह उसके पीछे-पीछे चलते हुए कुछ गन्दी बातें बोल रहा था। लड़की सुनती रही, कुछ नहीं बोली। जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने लगी। तभी लड़का बोला- ''ऐ लड़की शाम को बंगले पर आ जाना।'' लड़की ने मीठे और कठोर स्वरों में निर्भीक होकर कहा-''भैया! आप किसको कह रहे हो ? मैं कोई आवारा लड़की नहीं हूँ। सोच-समझकर बात

करना, आगे कभी मत कहना, अन्यथा ठीक नहीं होगा।'' इतना कहकर लड़की अपने घर चली गयी एवं उसने अपने पिताजी को पूरी बात स्पष्ट बता दी। उन्होंने उस लड़के को समझाया एवं डाँट लगाई। अतः लड़कियों को सावधानी (अडिगता) से रहते हुए अपने शील की रक्षा करनी चाहिए।

(4) कुछ बालिकाएँ मेला देखने गईं। वहीं कुछ लड़के उनके साथ हो गये। वे जिस-जिस दुकान पर जातीं वे भी उसी दुकान में उनके पीछे-पीछे जाते एवं ऐसी-वैसी बातें करते। लड़कियाँ समझ गईं कि इन लड़कों की दृष्टि गलत है। ये हम लोगों को चंगुल में फँसाना चाहते हैं। अतः वे स्वशील की रक्षा के लिए चिन्तित थीं। यद्यपि उन्हें कुछ भी नहीं खरीदना था, फिर भी वे एक दुकान पर चलीं गईं एवं उन्होंने बहुत सारा सामान देखा। साथ ही यह भी ध्यान रखा कि वे लड़के क्या कर रहे हैं। उन्होंने देखा कि वे लड़के दुकान की बाजू वाली गली में छिपे हैं। उन चतुर बालिकाओं ने युक्ति लगाई। वे जोर-जोर से एक-दूसरे से कहने लगी- ''अरे बहिन! जल्दी चलो, अपन लोगों को इतनी दूर जाना है। अपना मोहल्ला अभी बहुत दूर है।'' दूसरी ने कहा ''हाँ! जल्दी से चल रही हूँ, तुम थोड़ा रुको।'' बालिकाओं की इन बातों को सुनकर लड़कों ने सोचा ये उस मोहल्ले जायेंगी। अतः अपने को इनके आने के पहले वहीं जाकर छिप जाना चाहिए, जिससे अपना काम बन जायेगा। यह सोच वे वहीं जाकर छिप गये। बालिकाएँ उनको गया देख शीघ्र ही अपने घर लौट आईं और वे वहीं ताकते रहे। इस प्रकार अपनी चतुराई से उन बालिकाओं ने अपने शील की रक्षा की।

(5) एक बार एक युवती ट्रेन में सफर कर रही थी। वहीं डिब्बे में बैठे कुछ लड़कों ने उससे बातें करना प्रारम्भ की एवं बातों ही बातों में उसके घर की स्थिति जान ली और घर का पता भी पूछ लिया। घर पहुँचने के दूसरे ही दिन शाम को वे लड़के उसके घर पहुँच गये और बोले, ''हम आपसे कुछ बात करना चाहते हैं।'' वह समझ गई कि ये हमारे सम्बन्धी नहीं हैं। ये ट्रेन में बातें करने वाले वे ही लड़के हैं। उसे संदेह हुआ, कहीं दाल में काला अवश्य है। अतः बोली- ''आप बैठिये, मैं अभी आई।'' इतना कह वह पीछे के दरवाजे से जाकर अपनी पड़ोसन को साथ ले आयी और बोली- ''बोलिये! आपको क्या बात करनी है।'' पड़ोसन को साथ देखकर वे लड़के डर गये और बोले-''नहीं, कुछ नहीं ऐसे ही मिलने आये थे। अतः किसी भी अनजान व्यक्ति को अपने घर का पता नहीं बताना चाहिए, उस युवती ने अपना पता बताकर गलती की, लेकिन कुछ सावधानी से

काम लेकर अपने शील की रक्षा की।

(6)जिसने मध्यप्रदेश के पूरे बुन्देलखण्ड प्रान्त को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त कराकर एकछत्र शासन किया ऐसे महाराज छत्रसाल से एक युवती ने प्रार्थना की कि महाराज! आप तो सबके दु:खों को दूर करते हो। अत: मेरी प्रार्थना सुनिये। छत्रसाल बोले-''हाँ, मैं यथासंभव आपका दु:ख दूर करूँगा। कहो।'' युवती हँसती हुई बोली-''मेरी कोई संतान नहीं है। महाराज बोले- ''आगे बोलो।'' युवती बोली -''मेरे पति इसमें असमर्थ हैं।'' महाराज बोले -''भगवान् की कृपा से तुम्हें पुत्र हो।'' युवती बोली ''महाराज आप मेरा अभिप्राय नहीं समझे। मैं चाहती हूँ कि मुझे आपके समान सुंदर, सर्वगुणसम्पन्न, पौरुष एवं यौवन से भरपूर पुत्र की प्राप्ति हो। आप मेरे हृदय की वेदना दूर करके प्रणयदान दीजिए।'' महाराज बोले- ''मैंने आज से आपको माता मान लिया है। मैं जीवन भर माता के समान आपकी सेवा करूँगा।'' इस प्रकार छत्रसाल महाराज ने युवती को माता कहकर अपने शील की रक्षा की।

(7) श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का पालन (उसका हरण हो जाने के कारण) राजा कालसंवर एवं रानी कनकमाला ने किया। उन्होंने उसे दो-तीन दिन की अवस्था में ही जंगल में प्राप्त किया था। जब वह लगभग 15-16 वर्ष का हो गया तब एक दिन यौवन परिपूर्ण सुन्दर प्रद्युम्नकुमार को देखकर कनकमाला (उसका पालन करने वाली) कामासक्त हो गई। उसने प्रद्युम्न को बुलाया एवं अपना अभिप्राय प्रकट किया लेकिन कुमार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। एक दिन बीमार होने का बहाना करके उसे कमरे में बुलाया एवं दरवाजा बंद करके बोली-''तुम मेरा एक काम करोगे, मैं तुम्हें दो विद्यायें देती हूँ।'' प्रद्युम्न कुछ नहीं बोला तो रानी ने सोचा यह मेरी इच्छा पूरी करने को तैयार है। उसने अपनी दोनों विद्यायें उसे दे दीं तब प्रद्युम्न कनकमाला के चरणों में नमस्कार कर बोला- ''माँ! पुत्र के योग्य कोई सेवा हो तो आपका पुत्र उस सेवा के लिए तैयार है।'' इस प्रकार प्रद्युम्न ने युक्ति से अपने शील की रक्षा की।

(8) इतिहास बताता है कि मुगलों के शासनकाल में दिल्ली के राजा अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की और वहाँ के शासक को कैद कर लिया। वह रानी पद्मावती के महल में जा पहुँचा। उस समय रानी पद्मा और अनेक नवयौवना शीलवती नारियों ने संकटकालीन अवस्था में अपने शील की रक्षा के लिए आग में कूद कर जौहर किया। कहा जाता है कि उस समय राख में साढ़े इकतालीस मन

सोने की नथें (नाक में पहनने का आभूषण) मिली थीं। इससे पता चलता है कि साढ़े इकतालीस मन सोने की जितनी नथें बनतीं हैं, उतनी नारियों ने अपनी शीलरक्षा के लिए अग्नि में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी।

(9) औरंगजेब के शासन-काल का इतिहास कहता है कि नगर के बड़े-बड़े कुँओं में मात्र स्त्रियों की लाशें (शव) ही दिखाई देती थीं, पानी की एक बूँद भी नहीं। इन शब्दों से अनुमान लगा सकते हैं कि कितनी नारियों ने अपने शील की रक्षा के लिए कुँए में डूब कर अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया कि कुँओं में पानी तक शेष नहीं रहा था।

(10) एक ग्रंथ में बतलाया गया है कि चंदनबाला के पिता महाराज दधिवाहन युद्ध में पराजित हो गये थे तब राजा शतानीक के सैनिक चन्दनबाला एवं उसकी माँ धारिणी को रथ में बैठाकर भयानक जंगल में ले गये। मंत्री ने वहाँ उनसे भोग की प्रार्थना की, लेकिन रानी धारिणी ने उस प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए मंत्री को अनेक प्रकार से इस महापाप के दोष बतलाये। इस पर भी मंत्री पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उल्टा उसे अकेली समझ वह बलात्कार करने को तैयार हुआ। मंत्री को बलात्कार के लिए तत्पर देख रानी धारिणी ने अपने शील की रक्षा के लिए अपने हाथ से अपने पेट में छुरा घोंप लिया।

(11) सेठ सुदर्शन ने पुरुषत्व से युक्त होते हुए भी अपने आप को नपुंसक बताकर अपने शील की रक्षा की।

प्रश्न- ऊपर लिखे इन उदाहरणों को पढ़कर यह प्रश्न मन में उठता है कि क्या शील की रक्षा के लिए मरना आत्महत्या जैसा निकृष्ट कार्य नहीं है ?

उत्तर-नहीं, शील की रक्षा के लिए मरना आत्महत्या नहीं है क्योंकि आत्महत्या कषाय के आवेश में की जाती है। आत्महत्या करने से पहले वर्तमान जीवन में ग्लानि हो जाती और वर्तमान दु:ख से मुक्त होने के लिए तथा किसी पर क्रोधित होकर दुर्भावना से प्राणों का विसर्जन किया जाता है। परन्तु शील पर आई हुई आपत्ति को अनेक प्रकार से दूर करने पर भी जब उसकी रक्षा का कोई अन्य साधन नहीं दिखता है तो शील की रक्षा के लिये प्राणों का विसर्जन किया जाता है यद्यपि शील-रत्न को बचाने के लिए अन्य उपाय किये जाते हैं, फिर भी उसकी रक्षा होती हुई नहीं दिखती है तो मजबूरी से अग्नि में जलकर अथवा अन्य उपायों से अपने प्राणों का घात किया जाता है। अत: शील-रक्षा के लिए मरना कषायों के आवेश में नहीं होने के कारण, आत्महत्या जैसा निकृष्ट पाप नहीं है।

इस भारत वसुन्धरा पर पूर्व काल में सतियों ने अपने प्राणों की आहुति देकर शील की रक्षा की थी। ऊपर कुछ घटनायें लिखी गई हैं, जिनमें बालिकाओं, महिलाओं एवं पुरुषों ने अपने शील को सुरक्षित रखा। वे अपनी बुद्धि, चतुराई एवं अपने मन धैर्य के लिए प्रशंसनीय हैं ही, लेकिन इस पवित्र भूमि पर उत्पन्न हुए पशु पक्षी भी शील का महत्त्व समझते हैं। वे भी शील को सुरक्षित रखना चाहते हैं। भले ही वे मनुष्य के समान बोलने में समर्थ न हों, मनुष्यों के समान चतुर एवं बुद्धिमान न हों लेकिन फिर भी वे पूरी-पूरी शक्ति लगाकर शील का पालन करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीव ने हाथी की पर्याय में पाँच अणुव्रतों को धारण किया था। 'पार्श्वाभ्युदय' ग्रन्थ में आचार्य सकलकीर्ति कहते हैं कि वह हाथी जिसको स्पर्शन इन्द्रिय के विषयभोग में उदाहरण स्वरूप माना जाता है, वह ब्रह्मचर्य अणुव्रत के निर्दोष परिपालन के लिए कभी भूलकर भी हथिनी की ओर नहीं देखता था, वह इन्द्रियों की उत्तेजना नष्ट करने के लिए सूखे तिनकों, पत्तों का अल्पमात्रा में आहार (भोजन) करता था, वह अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करता था, इसी प्रकार सिंह, सर्प, सुअर आदि ने भी जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा का पालन किया था, कुछ दिन पहले एक चिड़िया का संस्मरण पढ़ा था, जिसने अपने प्राणों की बाजी भी स्वदारसंतोषव्रत की रक्षा कर जगत् में एक उदाहरण उपस्थित किया।

❑ चिड़िया का सतीत्व :

12 मार्च, 1931 माण्टगुमरी जेल की बात है। प्रसंग है एक पतिव्रता चिड़िया का। अयोध्याप्रसाद गोयलीय का आँखों देखा चित्रण। अनुमानतः प्रातः 8 बजे होंगे कि एक चिड़िया से एक चिड़ा अकस्मात् लड़ता हुआ देखा गया। चिड़ा उससे बलात्कार करना चाहता था, किन्तु चिड़िया जान पर खेल करके भी अपने आपको बचा रही थी। सफल मनोरथ न होने के कारण क्रोधावेश में चिड़े ने चिड़िया की गर्दन झकझोर डाली, जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। चिड़िया जमीन पर आ गिरी। एक दो मिनट बाद में एक दूसरा चिड़ा वहाँ आया और चिड़िया को बड़ी आतुरता और बेकरारी के साथ सूँघने लगा। वह हटाने पर भी नहीं हटता था। उसकी वह तड़फन कठोर हृदयों को भी तड़फा देने वाली थी। मालूम होता था यह चिड़ा ही उस चिड़िया का वास्तविक पति था, क्योंकि वह इतना शोकाकुल था कि उसे सामने उपस्थित जनसमूह का भी भय नहीं था। थोड़ी देर में जेल सुपरिण्टेन्डेन्ट और जेलर साहब भी वहाँ आ गये। उन्होंने सुना तो उनके नेत्र भी सजल हो उठे। मरी हुई चिड़िया को देख-देखकर चिड़ा कहीं प्राण न दे बैठे।

अतः इस स्थान से चिड़िया को उठाकर उसकी नजरों से ओझल कर दिया गया। यह सब दृश्य घातक, कामुक चिड़ा देख रहा था। किन्तु वह मरी हुई चिड़िया के पास आने की हिम्मत न कर सका। धन्य है भारतीय संस्कृति में जन्मी चिड़िया का शील, वह मरकर भी अमर हो गई।

इस प्रकार एक गाय के विषय में भी पढ़ा था। उसमें लिखा था कि हमारे गाँव राजपुरा से बारह कोस की दूरी पर मुराना गाँव है। वहाँ एक गाय ने एक साथ दो बछड़े प्रसव किये। उसके बाद वह गर्भवती नहीं हुई। उसे कामोन्मत्त करने के लिए कितनी ही दवाईयाँ खिलायी गयीं, किन्तु उसे कामेच्छा नहीं हुई, जब उसे जरूरत से ज्यादा परेशान किया गया तो वह अपने मालिक की छोटी सी बालिका को स्वप्न में दिखाई दी। उसने कहा कि मुझे गर्भवती करने हेतु कामोत्पादक चीजें न खिलाई जावें और न विजार (साण्ड) के पास ले जाया जावे। मैंने अब ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है यदि मुझे तंग किया तो कुँए में कूदकर जान दे दूँगी। लड़की ने स्वप्न की सारी बातें घर वालों को बता दीं, तो सब हँसने लगे, किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और प्रयत्न चालू रखा। अन्त में गाय ने कुँए में कूदकर (गिरकर) प्राण छोड़ दिये। तब लोगों ने समझा कि गाय ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था।

❑ मदनजयी मदनरेखा :

अपने शील की रक्षा के लिए मानव को परिस्थिति देखकर विवेकपूर्वक बुद्धि से काम लेना चाहिए। यदि वह भावुकता में आकर शील-रक्षा के लिए अनुकूल उपाय नहीं करता है तो उसके शील की रक्षा नहीं हो सकती है और ऐसी स्थिति में नारी के शील की रक्षा होना तो अत्यन्त दुष्कर ही हो जाती है क्योंकि पुरुष बलात्कार कर सकता है। अतः नारियों को पुरुष की दृष्टि एवं उसकी चेष्टाओं को अच्छी तरह से समझना चाहिए ताकि शील पर आपत्ति आने के पहले ही वह सावधान हो सके। जिस प्रकार सती मदनरेखा ने अपने ज्येष्ठ (पति के बड़े भाई) के द्वारा भेजे गये वस्त्राभूषणों से ही जान लिया था कि वह मुझे अपनी बनाना चाहता है। यह जानकर उसने सावधानी से अपने शील की रक्षा की थी।

एक नगर के न्यायप्रिय, गुणज्ञ राजा अपने पुत्रों युगबाहु और युगवीर के साथ रहते थे। दोनों पुत्र विनयवान, धर्मप्रिय एवं आज्ञाकारी थे। आपस में दोनों का प्रेम राम-लक्ष्मण के प्रेम का अनुसरण करता था। उनकी खेलने, खाने व सोने आदि की क्रियायें साथ-साथ होती थीं। राजा ने अपनी वृद्धावस्था निकट देख

अपने बड़े पुत्र को राज्यपद एवं छोटे पुत्र को युवराज पद देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

एक दिन रति के रूप को भी पराजित करने वाली, देवांगना के समान सुन्दर, युगवीर की पत्नी मदनरेखा स्नान कर झरोखे में खड़ी अपने बालों को सुखा रही थी। उसी समय राजा युगबाहु की दृष्टि उस पर पड़ी और भ्रमर के समान काले बालों के बीच चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख देख उसका हृदय काम के बाणों से बिंध गया। उसका हृदय काम की आग में जलने लगा। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो वह उसकी प्राप्ति के लिए तड़फने लगा। कामज्वर से सन्तापित हो उसने भोजनादि क्रियाएँ छोड़ दीं। वह अर्धमृतक के समान शय्या पर पड़ गया। राजा की यह दशा देख मित्रों आदि ने चिन्तित हो पूछा-''स्वामिन्! आपकी चिन्ता का क्या कारण है ? बार-बार आग्रह करने पर राजा ने निर्लज्ज होकर अपने मन की बात कह दी। राजा के मुख से ऐसी निकृष्ट बात सुनकर मित्र बोले-राजन्! छोटे भाई की पत्नी तो पुत्री के समान होती है। आप उसके लिए पिता के समान हैं। क्या पिता तुल्य आपको उसके साथ इस प्रकार सोचना उचित है ? आप तो प्रजापालक हैं यदि आप ही ऐसा अनुचित कार्य करेंगे तो प्रजा का क्या होगा ? यदि बाड़ ही खेत को खाने लगे तो खेत की रक्षा कौन करे ? यदि रक्षक ही भक्षक बन जाये तो किसकी शरण में जावे? हे स्वामिन्! आप नरक के महान् कष्टों को देने वाले, संसार में यशकीर्ति को नष्ट कर देने वाले इस निकृष्ट विचार को छोड़ दीजिये, ऐसी हमारी आपके चरणों में सविनय प्रार्थना है।''

इस प्रकार के अमृत तुल्य हितकारी वचन भी राजा को मदनज्वर के कारण विषतुल्य कटुक लगे। वह अत्यन्त क्रोधित हो बोला- ''इस समय मुझे उपदेश की नहीं, सहायता की आवश्यकता है। तुम लोग मेरे मित्र नहीं, शत्रु हो। चले जाओ यहाँ से, मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं।'' राजा के इस प्रकार वचन सुनकर भी उन्होंने उसे बार-बार समझाने की कोशिश की। परन्तु अन्त में राजा की उग्रता एवं हठ को देख सभी मित्रगण चले गये परन्तु एक लोभी मित्र वहीं रुक कर सान्त्वना देते हुए राजा की इच्छापूर्ति का उपाय सोचने लगा। दोनों मित्रों ने मदनरेखा की मनःस्थिति जानने के लिए बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से एक थाल भरकर दूती के साथ भेजा। दूती सामग्री लेकर मदनरेखा के पास पहुँची और बोली- ''स्वामिनी! महाराज ने आपके लिए ये वस्त्राभूषण भेजे हैं, इन्हें स्वीकार कीजिये।'' मदनरेखा को रहस्य समझने में देर नहीं लगी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा-''दूती! जाओ!अपने महाराज से कह दो कि मुझे आपके छोटे भाई से प्राप्त सामग्री में

सन्तोष है। मुझे इनकी किंचित् मात्र भी आवश्यकता एवं इच्छा नहीं है। आपने ये वस्त्राभूषण भेजकर व्यर्थ ही क्यों कष्ट किया ?''

दूती के द्वारा रानी के इस सन्देश को सुनकर राजा ने सोचा कि छोटे भाई युगवीर के रहते वह कभी मुझ पर प्रसन्न नहीं हो सकती। अतः छोटे भाई को मरवाने का विचार कर उसने उसे बुलाकर उसके सामने निकट देश स्थित पराक्रमी बलशाली राजा के साथ युद्ध का प्रस्ताव रखा और बोला-''भाई! मैं युद्ध के लिए जा रहा हूँ। तुम कुशलता पूर्वक प्रजा की रक्षा करना।'' बड़े भाई से युद्ध में जाने की बात सुनकर युगवीर बोला-''भाई! मेरे रहते आप युद्ध में नहीं जा सकते। आप मुझे आज्ञा दें तथा आशीर्वाद दें कि मैं शीघ्र ही शत्रु को परास्त कर विजय प्राप्त करूँ।'' युगबाहु (राजा) तो यह चाहता ही था। अतः बाहरी दिखावे शुभ शकुन के साथ उसे युद्ध के लिये विदा कर दिया तथा ''मन में यह वापस न लौटे'' इस प्रकार की दुर्भावना करने लगा।

भाई की अनुपस्थिति में कामान्ध राजा मदनरेखा की प्राप्ति के लिए एक दिन अर्द्धरात्रि में उसके महल में जा पहुँचा तथा दरवाजा खटखटाने लगा। मदनरेखा की निद्रा भंग हुई। वह सावधान हो बोली-''आप कौन हैं एवं असमय में यहाँ किस कारण से आये हैं ?'' राजा बोला- मेरी रानी! मैं युगबाहु राजा हूँ एवं तेरे विरह की अग्नि में झुलसता हुआ प्रेम की प्यास बुझाने आया हूँ। मैं तुझसे प्रेम की भीख माँगता हूँ। तू मेरी इच्छा पूरी कर। मैं तुझे पटरानी बनाऊँगा। तू शीघ्र ही दरवाजा खोल। राजा के ऐसे व्रज से भी कठोर वचन सुनकर वह अपनी शीलरक्षा का उपाय सोचने लगी। राजा पुनः पुनः प्रलोभन देकर प्रार्थना करने लगा तथा उसे अपने वश में न होती देख दरवाजा तोड़ने के लिए तत्पर हुआ। तब मदनरेखा ने गम्भीर शब्दों में कहा-''राजन्! आप मेरे पिता तुल्य हैं। आप नरक के गर्त में पटकने वाले इन दुविचारों को छोड़कर शीघ्र ही अपने स्थान पर लौट जाइये।'' राजा ने उसके शब्दों को नहीं सुना। उसने दरवाजे पर लात मारी तो वह जोर से चिल्लाई। उसकी चीख सुनकर पास के कमरे में सोई हुई सास की निद्रा खुल गई। वह बाहर आई। उसे देखते ही राजा भय से तत्काल वहाँ से चम्पत हो गया।

कुछ दिनों बाद युवराज युगवीर युद्ध में विजयश्री पाकर लौटा। दिल में दुःखी होते हुए राजा ने बाह्य में उसका जोर-शोर से स्वागत किया। मदनरेखा ने भी अपने पति को अपने साथ घटी घटना सुना दी एवं सावधान रहने की प्रार्थना की परन्तु भाई के स्नेह में डूबे युगवीर को इस बात का विश्वास नहीं हुआ। उसने

कहा-''नारियों का हृदय शंकालु होता है। मेरा भाई ऐसा कभी नहीं कर सकता। तुम इस बात पर कोई विचार नहीं करो, सुख से रहो।'' पति की बात सुन मदनरेखा चुप हो गई।

इधर राजा युगबाहु के मन में युगवीर के जीवित लौट आने का दुःख सताने लगा। वह उसे मारने का विचार कर अर्द्धरात्रि में युवराज के महल में आया और उसकी कुशल पूछकर बोला-''भाई! मुझे जोर की प्यास लगी है।

युगवीर अपने भाई की स्नेह भरी वाणी सुन पानी लेने के लिए जैसे ही नीचे झुका, राजा ने तत्काल उसका सिर काट डाला एवं रक्त-रंजित तलवार लेकर भाग गया। मदनरेखा ने धैर्यपूर्वक सिर और धड़ को मिलाकर णमोकार मंत्र सुनाते हुए अपने पति को सम्बोधित किया, जिससे वह वैरभाव को छोड़कर स्वर्ग में देव हुआ। मदनरेखा भी अपने शील की रक्षार्थ गुप्तद्वार से जंगल में भाग निकली। कंकड़-पत्थर, काँटों से उसके पैर छिल गये फिर भी वह भागती रही और भागते-भागते एक भयानक जंगल में पहुँची। वहाँ पशुओं से भयभीत हो अपनी रक्षा के लिए वह एक गुफा में गई। वहाँ उसे प्रसव की भयंकर वेदना हुई और कुछ ही समय में उसने एक सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया।

कुछ दिनों के बाद एक दिन अपनी साड़ी के एक पल्ले को फाड़कर वृक्ष की डालियों से बाँध झूला बनाकर बच्चे को सुलाकर स्वयं स्नान के लिए एक सरोवर पर गई तो वहाँ एक मदोन्मत्त हाथी ने उसे सूँड में उठाकर आकाश में उछाल दिया। उसी समय आकाशमार्ग से जाते हुए एक विद्याधर ने उसे आकाशमार्ग में ही झेल लिया। वह उसके अद्‌भुत रूप को देखकर कामासक्त हो गया और कहने लगा-'' प्रिये! मुझे अपना दास स्वीकार करो तथा मेरी इच्छा पूरी करो।'' वह सोच रही थी मैं बच गई, अब मेरा शील सुरक्षित रहेगा लेकिन वह तो कुँए से निकल कर खाई में गिर पड़ी थी। फिर भी वह मन में जिनेन्द्र भगवान् से शील-सुरक्षा की प्रार्थना करती हुई बोली-''भाई! तुम कौन भले पुरुष हो जो तुमने भयानक जंगल में मेरी रक्षा की।'' वह बोला-''तुम मुझे भाई न कहो भरतार कहो तथा मेरे हृदय की दाह शांत करो।'' उसे एक युक्ति सूझी वह बोली-''प्रथम आप बताइये कि आपका इधर आना कैसे हुआ ? आप कहाँ जा रहे थे ? विद्याधर ने यह सोचकर कि मेरे कार्य की सिद्धि होने वाली है, कहा कि मेरे पिता ने जिनदीक्षा ग्रहण की है। उनके दर्शनार्थ मैं जा रहा था परन्तु मार्ग में तुम जैसी स्त्री रत्न को देखकर अब वहाँ जाने की इच्छा नहीं है'' मदनरेखा बोली-''ठीक है, आप जिस कार्य के

लिए निकले हैं पहले उसे कर लें जिससे मुझे भी मुनिराज (आपके पिताजी) के दर्शनों का लाभ मिल जायेगा। आगे की बात बाद में सोचेंगे।'' मदनरेखा की बात सुनकर वह राजी हो गया। दोनों मुनिराज के दर्शन को गये। मुनिराज ने अपने ज्ञान से विद्याधर के मन की बात जान ली तथा अब्रह्म के दोषों को विस्तृत रूप से वर्णन किया, जिससे उसने वासना से विरक्त हो अपने मानसिक दोषों का प्रायश्चित्त लिया। मदनरेखा ने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति की। इधर युगबाहु ने खोटे परिणामों के कारण नरक की यात्रा की, वह अनेक कष्टों का पात्र हुआ।

इसी प्रकार अनेक नारियों ने अपनी चतुराई से अपने शील की रक्षा की है। उनमें से एक अन्य नारी की कथा इस प्रकार है-

❑ नारी की चतुराई :

एक नगर में एक श्रेष्ठी अपने परिवार सहित रहते थे। उनके परिवार में कुल चार ही सदस्य थे-सेठ, सेठानी, पुत्र एवं पुत्रवधू। एक दिन सेठजी ने यात्रा का विचार किया और वे सेठानी के साथ यात्रा के लिए निकल गये। अब घर में पुत्र एवं पुत्रवधू ही रह गये। योग की बात एक दिन पुत्र भी किसी आवश्यक कार्य से आठ दिन के लिए कहीं बाहर चला गया। जिस दिन सेठ पुत्र बाहर गया, उसी दिन शिकार खेलने के लिए जाते हुए राजकुमार की दृष्टि सेठ की पुत्रवधू पर पड़ी और वह काम से विह्वल हो गया। काम-बाण काँटे के समान पैर से सिर तक बड़ी तेजी से चुभने लगे, उसके शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। वह राजकुमार खाना-पीना, सोना, बोलना सब भूल गया। उसका मन बार-बार उसकी प्राप्ति के उपाय सोचने लगा। कहा भी है-

तन टूटे मन उछले, देखत कामिनी अंग।
दाह देह में होत है, भोजन में रुचि भंग॥

राजकुमार की यह दशा देखकर मित्रों आदि ने परस्त्री-पाप के बारे में अनेक प्रकार से समझाया लेकिन राजकुमार ने किसी की नहीं सुनी। अन्त में, एक दुष्ट मित्र ने अपने मित्र की इच्छापूर्ति के लिए एक दासी का कुछ वस्त्राभूषण देकर भेजा और कहलवाया कि ''हे रूपसुन्दरी! आपसे राजकुमार एकान्त में मिलना चाहते हैं।'' धर्म-संस्कारों से संस्कारित बहू उस गुप्त रहस्य को समझ गयी। उसने मन में सोचा-''यदि मैं इसकी बात ठुकराती हूँ अथवा इस दासी का तिरस्कार करती हूँ तो वह राजकुमार है, राजा का पुत्र है। वह चाहे तो राजसत्ता के बल से मेरे साथ बलात्कार करके मुझे शीघ्र भ्रष्ट कर सकता है। अतः मुझे कुछ युक्ति से काम

लेना चाहिए।'' इस प्रकार गम्भीरता से विचार कर बोली -'' दासी, अपने राजकुमार से बोल देना कि मैं आपसे आज से ठीक सातवें दिन मिल सकती हूँ।'' दासी ने राजकुमार को खबर सुना दी। राजकुमार सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगा। बहू ने उसी दिन अपनी ही रूप-आकृ ति के सदृश अन्दर से पोली (खाली) एक पुत्तलिका बनवाई और स्वयं ने जुलाब लेना प्रारम्भ कर दिया। वह खूब खाती और साथ में जुलाब ले लेती जिससे उसको कई बार शौच (दस्त) होता, वह पूरे शौच (मल) को एकत्र करके पुतली में भरती जाती। कई बार शौच होने के कारण उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया, ठीक सातवें दिन राजकुमार के इन्तजार में मलिन (गन्दी) साड़ी पहनकर वह दरवाजे पर झाड़ू लगाने लगी।

राजकुमार आया और उसने पूछा-''क्यों दासी! तुम्हारी मालकिन कहाँ है?'' वह झाड़ू लगाती हुई बोली-''चलिये, मैं आपको अपनी मालकिन के पास ले चलती हूँ।'' यह कहकर वह राजकुमार को उसे कमरे में ले गई जहाँ पर वह पुतली रखी थी। वह बोली।'' यह मेरी मालकिन है।'' राजकुमार बोला- ''अरे! यह तो नकली पुतली है। असली मालकिन कहाँ है?'' बहू ने (असली मालकिन ने) गम्भीरता से उत्तर दिया, ''असली मालकिन तो मैं ही हूँ जिसे देखकर आप मोहित हुये थे, उसे मैंने इस पुतली में भर दिया है।'' यह कहकर उसने पुतली को खोल दिया, चारों तरफ कमरे में शौच फैल गया और भयंकर दुर्गन्ध आने लगी। इस दृश्य को देखकर राजकुमार का विवेक जागृत हो गया। उसने बहू के चरणों में गिरकर क्षमा मांगी और भविष्य में ऐसा अपराध नहीं करने की प्रतिज्ञा की।

इसी सन्दर्भ में 'नर्मदा सुन्दरी' की कथा भी प्रचलित है। उसने राजा से अपने शील की रक्षा के लिए पागल के समान चेष्टायें कीं। वह गन्दे दुर्गन्धित कीचड़ के गड्ढे में कूदकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी-''अरे! सब लोगो! देखो, इस गड्ढे में कितनी सुगन्ध आ रही है। इसका पानी कितना मधुर है। तुम सब इसको पीओ तथा इस सुगन्धित पदार्थ का अपने शरीर पर लेप करो। आओ, तुम सब इसमें स्नान करो आदि-आदि।'' इस प्रकार चिल्लाते हुए उसने उस कीचड़ को पूरे शरीर पर लगा लिया-कभी वह कहती- ''मैं रानी हूँ, मैं देवी हूँ, मैं इन्द्राणी हूँ, तुम सब मेरी पूजा करो।'' इस तरह कई दिनों तक उसकी पागलपन की चेष्टा को देखकर राजा न उसे देश से निकाल दिया। इस प्रकार उसके शील की रक्षा हुई।

वर्तमान पंचम काल में भी ऐसी चतुर नारियाँ हैं जो अपने शील की रक्षा में तत्पर रहती हैं एवं अपनी चतुराई से अपने कार्य की सिद्धि कर लेती हैं।

❑ अनन्तमती का अचिन्त्य शौर्य :

अनन्तमती चम्पापुरी के राजा दत्त की पुत्री थी। एक राजा दत्त ने धर्मकीर्ति मुनिराज के निकट अष्टाह्निका पर्व में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का नियम बना लिया तथा विनोद भाव से अपनी पुत्री अनन्तमती को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया। जब अनन्तमती यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब राजा दत्त ने उसके विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ कीं। अनन्तमती अपने विवाह की तैयारियाँ देखकर पिता से बोली- ''पिताजी! आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, अब विवाह कैसा ? यह सुन पिता बोले-''बेटी! मैंने तो तुझे विनोद भाव से व्रत दिलाया था।'' अनन्तमती निर्भीकता एवं विनम्रता पूर्वक बोली-''पिताजी! धर्मक्षेत्र तथा व्रत-विधान में विनोद का कोई स्थान नहीं है। जिनेन्द्रदेव एवं गुरु के सामने कही गई बात प्रतिज्ञा होती है तथा जो उनके सामने बोलकर बदलता है या उसे विनोद का रूप कहता है अथवा उसमें कुछ गलती (बहाना) निकालता है, वह महान् पाप का आस्रव करता है। अतः मैं किसी भी हालत में विवाह नहीं कर सकती।'' यह सुन पिता कुछ देर सोचकर बोले-''बेटी! मैंने उस समय आठ दिन का व्रत लिया था और तुम्हें भी आठ दिन का ही व्रत दिलाया था। अतः अब विवाह करने में कोई बाधा नहीं है।'' अनन्तमती बोली-''पिताजी! आपका कहना ठीक है लेकिन मुझे व्रत दिलाते समय मुनिराज के सामने आपने कोई समय का परिमाण नहीं कराया था। अतः इस जीवन में मेरा विवाह नहीं हो सकता।'' अनेक प्रकार से समझाये जाने पर भी जब अनन्तमती को अपनी प्रतिज्ञा पर अटल देखा तो राजा ने उनके आत्मविश्वास के लिए धर्म का विशेष अध्ययन करने की व्यवस्था कर दी।

एक दिन यौवन के प्रांगण में प्रविष्ट जिसके रोम-रोम से सुन्दरता झलक रही थी, जो उद्यान में झूला झूल रहीं थी, ऐसी अनन्तमती को आकाशमार्ग से जाते हुए कुण्डन नाम के एक विद्याधर ने देखा और मोहित (कामुक) हो उसने उसका अपहरण कर लिया। अपहरण करके वह उसे अपने घर ले जा रहा था तब अनन्तमती अपने को विद्याधर के चंगुल में फँसी जान मन में सोचने लगी ''हे भगवन्! संसारी प्राणी कामान्ध हो बहिन और पुत्री के समान परस्त्री के प्रति भी गलत व्यवहार करने की चेष्टा करता है। हाय! इस समय मेरा रक्षक कोई नहीं दिख रहा है। हे प्रभो! आप ही मेरे रक्षक एवं शरण हो, मुझे आत्मबल दो जिससे मैं अपने शील की रक्षा कर सकूँ। हे जगत्राता! चाहे मेरे प्राण चले जावें, कोई बात नहीं लेकिन मेरे शील पर आपके प्रसाद से किसी भी प्रकार की आँच न आवे। इस भाई

विद्याधर को सद्बुद्धि मिले।'' इस प्रकार अपने शील की रक्षा के लिए वह बार-बार जिनेन्द्र भगवान् से प्रार्थना करती हुई, पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण कर रही थी। उसकी शील-रक्षा की प्रबल भावना के प्रभाव से तथा अपनी पत्नी के भय से विद्याधर ने अनन्तमती को पर्णलब्धि विद्या के बल से एक भयानक जंगल में छोड़ दिया। सती ने अपनी भावना तथा प्रभु की श्रद्धा के बल से अपने शील की रक्षा की। क्योंकि भावना भवनाशिनी होती है और जिसे चाह होती है उसे राह अवश्य मिलती है।

भयानक जंगल में अकेली अनन्तमती को शिकार के लिए आये हुए भीलों के राजा ने देखा और मोहित हो अपनी वासना पूर्ति के लिए उसे अपने घर ले गया। अनन्तमती सोच रही थी मैं विद्याधर के चंगुल से बच गयी, अब मेरे शील की रक्षा हो जायेगी लेकिन यह उसका भ्रम था, वह तो कुँए से निकलकर खाई में गिर गई थी। जब भीलराज ने अपनी वासना पूरी करने की बात कही तो उसने पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण करके अपने शील की रक्षा के लिए साहस के साथ भयंकर गर्जना करते हुए भीलराज को फटकारा ''अरे पापी! इस प्रकार नीच कार्य करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती, भयंकर नरक की वेदना से तू क्यों नहीं डरता।'' लेकिन भीलराज पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वह उसे अकेली एवं निर्बल समझकर बलात्कार करने के लिए उद्यत हुआ। उसकी यह बदमाशी देख अनन्तमती के सतीत्व के प्रभाव से तत्काल वनदेवी प्रकट हुई और उसने भीलराज को निर्दयता पूर्वक कोड़ों की मार लगाई। इस प्रकार शील के प्रभाव से वनदेवी के द्वारा सती की रक्षा हुई। भील ने उसे साहूकार के सुपुर्द कर दिया।

सेठ भी भीलराज के समान दुष्ट विचारों वाला था। उसने भी अपनी वासना पूर्ति की भावना प्रकट की और उसे (अनन्तमती को) मनाने के लिए प्रार्थना करने लगा, ''हे देवी! तुम अपने हृदय के कोने में मुझ दास को स्थान दे दो, मैं तुम्हारें चरणों में दास बनकर रहूँगा। तुम्हारे बिना मेरे जीवन का कोई महत्त्व नहीं है। तुम एक बार मेरी इच्छा की पूर्ति कर दो।'' यह सुन अनन्तमती नम्र भाव से बोली- ''हे मान्यवर! इस मुसीबत के समय में मैंने आपको दूसरा पिता समझा है। आपके यहाँ अपने आपको सुरक्षित समझा है लेकिन आपके इस कामुकता भरे शब्दों ने तो पृथ्वी ही हिला दी। आप तो निम्न उक्ति ही चरितार्थ कर रहे हैं :-

मन मलीन तन सुन्दर कैसे ?
विष रस भरा, कनक घट जैसे।

आप जैसे महान् व्यक्ति भी क्या अपने मन में ऐसे विचार रख सकते हैं ? ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था-हे पिता! मैं किस पर विश्वास करूँ ? जब रक्षक ही भक्षक बन जावे तो व्यक्ति किसकी शरण लेवे ?'' सेठ ने उसके वचनों को सुनकर उसे कामसेना नाम की वेश्या के पंजे में फँसा दिया।

कामसेना वेश्या ने भी धन और विषय सुख की अनेक सामग्रियों का प्रलोभन देकर उसे अपने शील से भ्रष्ट करना चाहा। लेकिन शीलव्रत के साथ खिलवाड़ करना आग से खिलवाड़ करना है। वेश्या के अनेक प्रयत्न सती के सामने निष्फल हो गये। सती अपने शील पर सुमेरु के समान अटल थी। वेश्या ने भी अपने आपको असफल होता देख उसे व्यभिचारी राजा सिंहराज को सौंप दिया।

दुष्ट राजा सिंहराज भी अपनी इच्छा प्रकट कर प्रार्थना करने लगा-'' हे सुन्दरी! हे मनमोहिनी! मैं तुम्हें पटरानी बनाना चाहता हूँ। मैं जीवन भर तेरे चरणों का दास बना रहूँगा, तेरी आज्ञा का पालन करूँगा'' आदि प्रलोभन देने पर भी जब उसने (अनन्तमती ने) उसे स्वीकार नहीं किया तो उसके सतीत्व को नहीं जानने वाला वह मूर्ख राजा उसके साथ बलात्कार करने के लिए आगे बढ़ा, तभी शील के प्रभाव से वनदेवी ने आकर राजा की पिटाई कर दी और बचने के लिए एकमात्र सती की शरण बताई। राजा ने सती से क्षमा माँगी और उसे एक जंगल में छोड़ दिया। कालान्तर में आर्यिकाओं का समागम प्राप्त कर वह आर्यिका दीक्षा लेकर स्वर्ग गई।

इस प्रकार सती अनन्तमती ने अपने शील की रक्षा करके हमारे लिए एक आदर्श उपस्थित किया है। धन्य हो ऐसी शीलवती सतियों को जिनका स्मरण भी पापों का क्षय करने वाला है। वे आज से हजारों वर्ष पहले दिवंगत हो चुकी हैं लेकिन उनका नाम, उनकी कीर्ति आज भी जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगी, धन्य है ऐसा शीलव्रत।

शीलव्रत संसार में कल्पवृक्ष के समान है। वह कामधेनु के समान सभी इच्छित वस्तुओं को देने वाला है। लोक में भी कोई उपवास, व्रत आदि नहीं करता हो लेकिन यदि शील को पालता हो अथवा स्वदार संतोष व्रत का पालन करता हो तो उसे सभी लोग अच्छी दृष्टि से देखते हैं और जो भगवान् का अभिषेक-पूजन, उपवास-व्रत आदि भी करता है लेकिन यदि वह परस्त्री या पर-पुरुष पर गलत दृष्टि डालता है, उसके साथ गलत व्यवहार रखता है तो उसे सभी लोग हीन दृष्टि से देखते हैं और उसे व्यभिचारी, कुशील, हीन आचरण वाला कहते हैं। अतः शील

का पालन करना जीवन में श्रेयस्कर है। आचार्य समन्तभद्रस्वामी स्वयंभूस्तोत्र में भगवान् नमिनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए कहते हैं –

वपुर्भूषा-वेष-व्यवधि-रहितं शान्त-करणं।
यतस्ते संचष्टे, स्मर-शर-विषातंक-विजयम्॥

संसार के अन्य पुरुष काम के विषमय बाणों के प्रहार से होने वाली विकृति को वस्त्रादि के आवरण से छिपाकर अपने आपको स्वस्थ प्रकट करते हैं, लेकिन हे जिनेन्द्र! आप तो वस्त्र-आभूषणादि से रहित सर्वथा दिगम्बर रूप (यथाजात लिंग) के धारक हैं। आप कामविकार को कैसे छिपा सकते हैं ? इससे विदित होता है कि आपने कामविकार पर पूर्णतः विजय प्राप्त कर ली है। संसारी मनुष्यों की चंचल इन्द्रियाँ अनेक मानसिक विकार को प्रकट कर देती हैं। परन्तु आपकी इन्द्रियाँ अत्यन्त शान्त हैं। इससे भी जाना जाता है कि आपके मन में किसी प्रकार का विकार नहीं है। आप मानसिक विकार पर भी पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर चुके हैं। इसी बात को प्रकट करते हुए भागेन्दु कवि ने महावीराष्टक स्तोत्र में लिखा है :-

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द प्रशमपदराज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु नः॥ 7॥

नित्य आनन्द स्वरूप प्रशम पद की प्राप्ति के लिए जिसका उद्रेक (मद) अनिर्वार है अर्थात् जिसका निवारण करना अत्यन्त कठिन है, जिसने तीन लोक पर अर्थात् ऊर्ध्वलोक में सम्पूर्ण देवों को, मध्यलोक के मनुष्य-तिर्यंचों को तथा अधोलोक के असंख्यात नारकी, भवनवासी, व्यन्तर आदि देवों को जीत लिया है, ऐसे उस काम सुभट को भी हे प्रभो! आपने बाल्यावस्था में ही अपनी शक्ति से अर्थात् मानसिक बल से जीत लिया है, ऐसे महावीरस्वामी हमें मोक्षमार्ग दिखावें। हमें भी उस अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति प्रदान करें।

तीर्थंकरों और महापुरुषों ने तो काम को जीता ही है। लेकिन जो एक गृहस्थ थे, परिवार और समाज के बीच रहते थे, उन पर गृहस्थ अवस्था में ही स्वदार-सन्तोष व्रत पर संकट आया, उस समय पर्वत के समान अचल रह कर अपने व्रत से जो नहीं डिगे, धैर्य से उपसर्ग सहन कर प्राणी के लिए आदर्श उपस्थित कर गये, वे थे सेठ सुदर्शन।

❑ सेठ सुदर्शन : श्रेष्ठी का श्रेष्ठशील :

सेठ सुदर्शन ने पूर्व भव में ग्वाले की पर्याय में णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए मरण किया था, जिसके फलस्वरूप वे वृषभदास सेठ की सुभद्रा सेठानी के गर्भ में उत्पन्न हुए थे। उनका रूप अत्यन्त सुन्दर था, वे दूज के मयंक के समान बढ़ते हुए यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। इस अवस्था में भी उनकी धर्मनिष्ठा, परोपकार की भावना, समाजसेवा आदि अद्वितीय थी। एक दिन पुत्र को योग्य देख सेठ-सेठानी ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। अनन्तर सुदर्शन को भी अपने पिता का 'राजश्रेष्ठी' पद मिला।

एक दिन सेठ सुदर्शन को उसके बचपन के मित्र राजपुरोहित कपिल की पत्नी कपिला ने देखा और वह उसके रूप से मोहित हो काम से विह्वल हो गयी। हर क्षण उसे प्राप्त करने का उपाय सोचने लगी। वह एक दिन अपने पति कपिल को राज्य कार्य से बाहर गया देख स्वयं पलंग पर चादर ओढ़कर लेट गई और दासी से सेठ सुदर्शन को किसी (कपिल का स्वास्थ्य खराब है) बहाने से अपने घर बुलाया। भोले सुदर्शन कपिल को देखने के लिए शीघ्र आये और शयनकक्ष में पलंग पर लेटी हुई कपिला को कपिल समझ जैसे ही चादर हटाने लगे, कपिला ने उसे कस कर पकड़ लिया और शय्या पर बिठा कर रतिदान (भोग) की प्रार्थना करती हुई उसे नाना प्रकार के हाव-भाव कटाक्षों से आकर्षित करने लगी। आज सुदर्शन नारी के चंगुल में फँस गये। वे बार-बार पिंजरे में बंद पक्षी के समान निकलने का मन ही मन प्रयास करने लगे, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में उन्हें एक युक्ति याद आयी। वे बोले ''कपिला! मैं क्या बताऊँ, बताने जैसी बात नहीं है। बताने में लज्जा आती है।'' कपिला बोली-''अरे! आप लज्जा न करें। हम दोनों की यह बात तीसरे के पास नहीं जायेगी। आप निर्भीक होकर अपनी बात कहिये।'' सुदर्शन बोले-''क्या कहूँ।'' कपिला बोली-''मैं आपको वचन देती हूँ कि मैं आपकी बात किसी से नहीं कहूँगी। आप निःसंदेह कहें।'' सुदर्शन बोले-''क्या बताऊँ ? फूल तो बहुत सुन्दर है लेकिन उसमें सुगन्ध का नामो-निशान नहीं है, अर्थात् मेरा शरीर तो बहुत सुन्दर है लेकिन मैं पुरुषत्व से रहित (नपुंसक) हूँ।'' यह सुनते ही कपिला ने शीघ्र ही सुदर्शन को महल से बाहर निकाल दिया। कपिला के चंगुल से बचकर सुदर्शन शीघ्र ही जिनालय की ओर आये और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं कभी किसी के घर अकेले नहीं जाऊँगा। यद्यपि सुदर्शन ने अपने शील की रक्षा के लिए छल किया, लेकिन उससे उनको कोई दोष नहीं लगा। क्योंकि

उनका अभिप्राय गलत नहीं था।

एक बार बसन्तोत्सव के समय रानी अभया कपिला के साथ रथ में बैठकर वन की ओर जा रही थी एवं उनके पीछे सेठ सुदर्शन की सेठानी मनोरमा भी अपने बच्चों सहित रथ में बैठकर जा रही थी। सेठानी और बच्चों को देख कपिला ने रानी अभया से पूछा –''हे महारानी जी ! यह पीछे वाला रथ किसका है और इसमें बच्चे किसके हैं?'' रानी बोली ''अरे कपिला अरे तू इतना भी नहीं जानती है।'' कपिला हँसती हुई बोली–''ये बच्चे सुदर्शन के हैं और यह सेठानी शीलवती आकाश-पुष्पवत् असंभव।'' रानी बोली- ''क्यों, कैसे असम्भव?'' कपिला बोली–सेठ तो नपुंसक है। उनके बच्चे नहीं हो सकते और ये सेठानी के बच्चे हैं तो सेठानी शीलवती कैसे हो सकती है?'' रानी ने पूछा–'' तुमने यह गुप्त बात कैसे जानी।'' इस प्रकार रानी के पूछने पर कपिला ने अपने साथ बीती पूरी घटना स्पष्ट बता दी। रानी बोली–''कपिले! तू मूर्ख है। तुझे सुदर्शन ने ठग लिया। उसने शायद अपने शील की रक्षा केलिये अपने आपको नपुंसक बताकर तेरे चंगुल से निकलने का प्रयास किया होगा।'' कपिला व्यंग्य करती हुई बोली–'' अच्छा महारानी जी! मैं तो मूर्ख ही सही पर आप तो चतुर हैं जो सेठ को वश में करके बता दो तो जानूँ।''

कपिला के ये वचन सुन रानी ने उसी समय प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मैंने छह माह के भीतर ही सेठ को अपना नहीं बना लिया तो प्राण त्याग दूँगी। उसी दिन से रानी सेठ को अपना बनाने का उपाय सोचने लगी, परन्तु जब असफल रही और प्रतिज्ञा के कुछ दिन शेष बचे तब रानी अत्यन्त चिन्तित हुई और बीमार होने का ढोंग कर पलंग पर लेट गई। राजा ने अनेक वैद्यों से औषधि दिलाई लेकिन किसी भी औषधि से स्वास्थ्य-लाभ नहीं हुआ। तब राजा ने रानी की धाय माँ पण्डिता से उसके रोग की जानकारी के लिए कहा। पण्डिता ने बहुत प्रयास करके रानी के मन की बात जानकर उसकी सिद्धि के लिए राजा से कहा–''महाराज! आप एक बार युद्ध करने के लिये गये थे तब रानी ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि महाराज विजयी हुए तो वह कामदेव की पूजा करेगी। आपके विजयी होने की खुशी और मिलन की आतुरता में वह पूजा करना भूल गई थी, इस कारण कामदेव ने कुपित हो रानी का यह हाल किया है।'' राजा ने यह सुन शीघ्र ही कामदेव की पूजा की आज्ञा दी।

आज्ञा पाते ही रानी और पण्डिता ने मिलकर एक कुम्भकार से सुदर्शन के रूप आकार के सात पुतले बनवाये और प्रतिपदा के दिन एक पुतले को अर्द्धरात्रि

में अपने सिर पर लेकर पण्डिता रानी अभया के महल की ओर प्रविष्ट हुई। महल के प्रथम द्वार पर स्थित द्वारपाल के रोकने पर पण्डिता ने पुतला वहीं गिरा दिया और रोने लगी तथा कहने लगी ''हाय! मैं तो रानी की पूजा के लिये यह ले जा रही थी। तुमने यह बाधा डाली है। मैं रानी से कहकर अवश्य तुम्हें दण्डित कराऊँगी।'' यह सुनकर द्वारपाल डर गया और क्षमा मांगते हुए भविष्य में ऐसा अपराध नहीं करने की उसने प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार सात दिन तक सातों ही द्वारपालों को वश में कर आठवें दिन अष्टमी की रात जब सेठ सुदर्शन प्रोषध धारण कर श्मशान में ध्यान कर रहे थे, उस समय वह (पण्डिता) वहाँ गई और सुदर्शन को उठाकर ले आई तथा उसे अभया के शयन-कक्ष में रख दिया।

रानी अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए सेठ से विनम्र प्रार्थना करने लगी। ''मेरी तरुण अवस्था रंग रूप पर दुनिया मोहित है, लेकिन मैं आपको चाहती हूँ। आप मेरी इच्छा पूरी करके मुझे कृतार्थ कीजिये। आप सोच रहे हैं कि मैं विरक्त हूँ, परस्त्री का त्यागी हूँ लेकिन जब तक पुरुष की नजर नारी से नहीं मिलती है तभी तक वह भोला-भाला रहता है, नजर मिलते ही वह मतवाला हो जाता है। अतः आप मेरी ओर निहारिये।'' उसने रानी की प्रार्थना नहीं सुनी, आँखें नहीं खोली तो रानी ने प्रलोभन देना प्रारम्भ किया। ''सेठजी यदि आपने मेरी इच्छा पूरी कर दी तो मैं आपको राजा बना दूँगी, आप यशस्वी महाराज बनकर राज्य का भोग करना, आपका सभी लोग आदर करेंगे'' आदि। इतना कहने पर भी जब सेठ जी ने अपना ध्यान नहीं छोड़ा तो रानी उन्हें धमकियाँ देने लगीं कि ''सेठजी यदि आपने मेरी इच्छा पूरी नहीं की तो मैं लोक में व्यभिचारी बताकर आपकी धवलकीर्ति को कलंकित कर दूँगी, जिससे आपके धर्म की भी अप्रभावना होगी तथा राजा से आपको मृत्युदण्ड दिलवाऊँगी। आपका सारा धन लुटवाकर आपकी पत्नी बच्चों को मरवा दूँगी।'' और भी अनेक धमकियाँ देने पर भी शील-धुरंधर सेठ अपने मन में भी रानी के प्रति किञ्चित् भी आकर्षित नहीं हुए तथा उन्होंने पञ्चपरमेष्ठी का ध्यान नहीं छोड़ा।

रानी ने सेठ को आकर्षित करने में लगभग पाँच-छह घण्टे बिता दिये। लेकिन सेठजी रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुए। रात्रि के समय को समाप्त होता देख रानी ने अपना अपराध छिपाने के लिए अपने ही हाथों से अपने शरीर को लहूलुहान कर दिया, बाल बिखेर लिये और क्रोधित हो चिल्लाने लगी। ''ऐ पहरेदारों!'' तुम लोग कहाँ चले गये, क्या रात्रि में तुम मर गये थे, यह पापी सेठ मेरे

रणवास में आकर मेरे शील को लूटने की कोशिश कर रहा है, शीघ्रता से आओ। महाराज को बुला लाओ।'' पहरेदार जल्दी-जल्दी महाराज को बुला लाये। राजा को रणवास की ओर आता देख रानी बोली- ''महाराज!'' शीघ्र ही इस पापी, दुष्ट, व्यभिचारी को सूली पर दण्ड दिया जाय। इस दुराचारी ने मेरा शील हरण करने का बहुत प्रयास किया लेकिन मैंने बड़ी मुश्किल से अपने शील की रक्षा की है और अब अपनी रक्षा के लिए इस प्रकार ढोंग करके बैठा है। आप शीघ्रता कीजिये। मैं एक क्षण के लिए भी इसे नहीं देखना चाहती हूँ।'' राजा ने कहा-''रानी! शीघ्रता न करो, मेरे न्याय में ''दूध का दूध और पानी का पानी ही होगा।'' इस प्रकार कहकर राजा सेठ को रणवास में देख आश्चर्यचकित हो विचार करने लगे-''क्या यह शीलवान सेठ ऐसा भी कार्य कर सकता है ? मुझे विश्वास नहीं हो रहा, क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ, नहीं मैं जागृत हूँ।'' राजा ने सेठ के पास जाकर सही-सही बात कहने के लिए अनेक बार कहा किन्तु सेठ ने कोई उत्तर नहीं दिया तो राजा ने सोचा-''सेठ दण्ड के डर से नहीं बोल रहा है अतः राजा ने सेठ को अभयदान की घोषणा की, फिर भी सेठ को कुछ भी उत्तर देता न देख बात का निर्णय करने के लिए राजा ने राजसभा आयोजित की। सभी लोगों ने यथार्थता जानने की बहुत कोशिश की लेकिन सभी असफल रहे। सेठ ने यथार्थ बात नहीं बताई। सेठजी जानते थे कि त्रियाचरित्र बहुत दुर्गम है। यहाँ मेरे बोलने से सत्य प्रकट नहीं हो सकता। अतः राजा ने सेठजी को मौन देख दण्ड की घोषणा की कि सेठजी ने धर्मात्मा, लोकप्रिय, राजश्रेष्ठी तथा हमारे विश्वासपात्र होकर भी यह निम्नकोटि का कार्य करने का प्रयास किया है। दूसरी बात है ऐसा नीच कर्म अन्य किसी के साथ नहीं अपितु महारानी अभया के साथ किया है। तीसरी बात-अपराध करके बार-बार पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं। अतः इन्हें सूली की सजा दी जाती है।''

सेठजी को सूली की सजा सुन जनता में त्राहि-त्राहि मच गयी लेकिन सेठजी अडिग थे, उन्हें विश्वास था, सत्य के प्रकट होने में देर हो सकती है, अंधेर नहीं। सत्य को कुछ समय के लिए आवृत किया जा सकता है, लेकिन उसे कोई नष्ट करने में समर्थ नहीं है। सेठजी ने उसी समय प्रतिज्ञा कर ली कि यदि ''यह उपसर्ग टल जायेगा तो मैं घर में नहीं वन में जाऊँगा।'' सारी जनता सेठजी की रक्षा के लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगी, लेकिन सेठजी को कोई चिन्ता नहीं थी। उन्हें तो शील का परिपालन करते हुए मरना भी श्रेयस्कर लग रहा था। सेठजी को शूली के स्थान पर ले जाया गया। उसी समय सेठजी के शील के प्रभाव से नगर रक्षक देवों के आसन कम्पित हुए। उन्होंने तत्काल आकर शूली को सिंहासन में

परिवर्तित कर दिया और जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। कहा भी है-

अमराः किंकरायन्ते, सिद्धयः सह संगताः।

समीपस्थायिनी सम्पत्, शीलालंकारशालिनाम्॥

सेठजी ने उपसर्ग दूर हुआ जान अपना ध्यान पूरा किया। राजा इस सूचना को सुन शीघ्र ही सेठ के पास आकर क्षमायाचना करने लगा और सेठ से इच्छित वस्तु माँगने की प्रार्थना करने लगा। सेठजी ने कहा-''राजन्! अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे मात्र वचन दीजिये :-

(1) रानी अभया को अभयदान तथा (2) मुझे जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति।'' राजा नहीं चाहता था कि राज्य की इस अमूल्य चेतन धरोहर को मैं दीक्षा की अनुमति दूँ, फिर भी वचनबद्ध होने से दीक्षा लेने की अनुमति दी। सेठ राजा की अनुमति प्राप्त कर सेठानी मनोरमा से बोले- ''तुम जब तक तुम्हारे पुत्र योग्य न हो जावे तब तक गृहस्थ धर्म का परिपालन करते हुए रहो और योग्य होने पर तुम भी आत्म-कल्याण के इसी मार्ग को अपनाना।'' इस प्रकार अपने कर्त्तव्य को पूरा कर गुरु के निकट जाकर सेठ सुदर्शन ने जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की।

इधर अभया रानी सेठ का उपसर्ग दूर हुआ जान अपनी रक्षा के लिए राजमहल से नीचे कूदकर भागने लगी तो वहीं मरण को प्राप्त हो, व्यन्तरदेवों में देवी की पर्याय में उत्पन्न हुई। धाय माँ पण्डिता वहाँ से भागकर पाटलिपुत्र नगर में एक वेश्या के यहाँ रहने लगी।

मुनि सुदर्शन विहार करते हुए एक दिन आहार के लिए उसी पाटलिपुत्र नगर में प्रविष्ट हुए। उन्हें झरोखे में बैठी धाय माँ पण्डिता ने पहचान लिया और बदला लेने की भावना से पास में बैठी वेश्या से बोले। ''बहिन! क्या तुम्हें अपने पर पूर्ण विश्वास है कि तुमने सम्पूर्ण व्यक्तियों के दिल को जीत लिया है।'' वेश्या बोली-''क्या तुझे इस बात में संशय है कि हर व्यक्ति मुझे चाहता है? पण्डिता ने कहा-''नहीं, नहीं मुझे इस बात में संशय नहीं है लेकिन मैंने एक आदमी ऐसा भी देखा है जो किसी के वश में नहीं होता।'' वेश्या बोली-''ठीक! यदि ऐसा व्यक्ति है तो क्या तुम मुझे बताओगी।'' पण्डिता बोली-''हाँ, हाँ क्यों नहीं, अवश्य बताऊँगी। देखो-देखो वह सामने आ रहा नग्न साधु। यह किसी के वश में नहीं होता और अगर तुम अपने वश में करके बता दो तो मैं समझूँ कि तुम सही में वेश्या हो, अन्यथा कुछ भी नहीं।'' यह सुन उसने उसे वश में करने का वचन दे दिया और सुदर्शन मुनि को अपने घर बुलाने के लिए कुछ ही दिनों में पड़गाहन, उच्चासन,

पादप्रक्षालन, पूजा, नमस्कार आदि नवधाभक्ति सीख कर एक दिन आहार के लिये आये मुनीश्वर को पड़गाहन कर भोजन-शाला के स्थान पर शयनकक्ष में प्रवेश करवा दिया। वहाँ पूरा कक्ष कामोत्पादक नाना प्रकार के चित्रों, सुगन्धित पुष्पों की शय्याओं तथा अनेक रागोत्पादक साधनों से भरा था। मुनि सुदर्शन अपने ऊपर उपसर्ग आया जान वहीं ध्यान में स्थित हो गये। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि यदि उपसर्ग टल गया तो कभी नगर में आहार के लिए नहीं आऊँगा। वेश्या हाव-भाव, कटाक्ष सहित मधुर स्वर में काम को उत्पन्न करने वाले गान करने लगी, गान के साथ नाचने लगी तथा अपने गुप्त अंगों को बार-बार दिखाकर सुदर्शन मुनि को आकर्षित करने लगी लेकिन मुनिराज पर उन सब बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे तो अटल थे। अन्त में वेश्या नग्न होकर नाचने लगी तो भी उनकी सौम्य मुद्रा में कोई विकार नहीं आया। उनके मन में कोई राग-द्वेष नहीं था। वे वीतरागी थे। आखिर वेश्या हार गयी। वह मुनिराज के चरणों को अपने नयन जल से प्रक्षालित करती हुई अपने कुकृत्य की क्षमा याचना करने लगी तथा अपने जीवन में किए गए सभी कुकृत्यों की आलोचना करती हुई प्रायश्चित्त माँगने लगी। मुनिराज ने उपसर्ग दूर हुआ जान ध्यान पूरा किया और वेश्या को सदुपदेश दिया, जिससे वेश्या ने अणुव्रतों को धारण कर लिया। सुदर्शन के शील के प्रभाव से जो वेश्या सैकड़ों पुरुषों के साथ निरन्तर रतिक्रीड़ा में मग्न रहती थी उसने भी जीवन भर के लिए अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने का संकल्प कर लिया। महामुनि सुदर्शन की शरण पाकर पाप-पंक से लिप्त दुश्चरित्रा वेश्या ने भी पाप छोड़कर अपने जीवन को उज्ज्वल बनाया। यह घटना आज भी प्रत्येक प्राणी को शील पालने की प्रेरणा दे रही है।

शीलधारी महामुनियों की बात तो दूर, परन्तु एक गृहस्थ भी एकदेश ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उनकी इन्द्र भी भक्ति तथा प्रशंसा करते हैं।

चक्रवर्ती भरत के धीर-वीर सेनापति और अनेक गुणों की खान जयकुमार अपने स्वदारसंतोष व्रत के कारण ही इन्द्र की सभा में भी इन्द्र द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए थे तथा महाशील के प्रभाव से वे पूज्य हुए और मुक्ति के स्वामी हुए थे। उनकी कथा पाठकों को आदिपुराण (महापुराण) से जान लेनी चाहिए। इसी शीलव्रत के कारण सुकेत आदि कितने ही पुरुष देवों के द्वारा पूज्य हुए हैं, उन सबकी कथाओं को पूर्णरूप से कहने में बड़े-बड़े आचार्य असमर्थ हो गये तो हम जैसे मन्दबुद्धि वाले कैसे समर्थ हो सकते हैं ?

यह शीलरत्न यश और पुण्य को बढ़ाने वाला है, संसार में इसकी कोई उपमा नहीं है अर्थात् शील के लिए कोई उपमा देने योग्य पदार्थ नहीं है। यह सद्धर्म रूपी निर्मल रत्नों का पिटारा है। पापों का नाश करके उत्तम सुख देने वाला है, अत्यन्त पवित्र है। धीर-वीर पुरुषों के द्वारा ही यह सेवन किया जाता है। अत्यन्त शुभ एवं सारभूत है। यह संसार रूपी सागर से पार लगाने वाला जहाज है। जो प्राणी इस शीलव्रत का पालन नहीं करते हैं, वे इस जन्म में वध बन्धन आदि अनेक प्रकार के महादुःख पाते हैं और जो शीलव्रत का पालन करते हैं वे इस लोक में राजा, प्रजा आदि सभी के द्वारा पूजे जाते हैं और परलोक में भी देवों के द्वारा पूज्य होते हैं। देखो, यम, नियम, इन्द्रिय दमन और शान्त परिणामों से परिपूर्ण तथा निर्मल गुणों को उत्पन्न करने के लिए पृथ्वी के समान और शीलरूपी रत्नों की खान नीली सेठानी शीलरत्न के प्रभाव से समस्त दोषों से रहित हुई तथा इसी लोक में देव, राजा तथा प्रजा आदि सब लोगों के द्वारा पूज्य हुई।

❑ **नीली का निर्मल शील** :

मृगकृच्छ नगर में सेठ जिनदत्त और सेठानी जिनदत्ता रहते थे। उनके नीली नाम की एक पुत्री थी। उसी नगर में एक समुद्रदत्त नाम का सेठ भी रहता था। उसके सागर नाम का पुत्र था। एक दिन जिनालय में जिनेन्द्र-अर्चना करती नीली को अपने मित्र के साथ मन्दिर में आये हुए सागरदत्त ने देखा और कामासक्त हो विचार करने लगा-इस रूपवती को कैसे प्राप्त किया जाये ? इसी चिन्ता में कृश होता हुआ वह नीली को प्राप्त करने के लिए अपने पिता के साथ ढोंगी श्रावक बन गया। पिता पुत्र को सही समझ श्रेष्ठी जिनदत्त ने अपनी पुत्री का सागरदत्त के साथ विवाह कर दिया। नीली को प्राप्त कर दोनों पिता-पुत्र पुनः कुमार्गगामी (बौद्ध सम्प्रदायी) बुद्ध के भक्त बन गये। जिनदत्त यह देख बहुत दुःखी हुआ। वह पश्चात्ताप करने लगा-''हाय! मैं अपनी पुत्री को मिथ्यात्वी को देने की अपेक्षा कुँए में धकेल देता तो ज्यादा अच्छा होता। ओहो! मैंने इस मूर्ख मिथ्यात्वी को कन्या क्यों दे दी?''

एक दिन नीली को बौद्ध बनाने की इच्छा से सेठ समुद्रदत्त बोला- ''बेटी नीली! हमारे गुरु बहुत ज्ञानी हैं, उन्हें तुम निमंत्रित करके भोजन कराओ।'' नीली ने बात स्वीकार कर ली और बौद्धभिक्षु को निमंत्रण देकर के भोजन करवाया। जब वे भोजन कर रहे थे तभी नीली ने उनके ज्ञान की परीक्षा के लिए गुप्त रूप से उनकी एक-एक जूती मँगवाई एवं उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर घी-बूरे में पकाकर उनको

खिला दिये। जब भिक्षु जाने लगे तो अपनी एक-एक जूती को न देख क्रोधित हो बोले- ''पाँवों का हित करने वाली हमारी एक-एक जूती कहाँ हैं ?'' इसके उत्तर में नीली ने कहा- ''आप बड़े ज्ञानी विद्वान् हैं, आप ही बताइये कि जूती कहाँ हैं और यदि नहीं जानते हैं तो मेरे वचनों पर विश्वास करके अपने उदर (पेट) में ही जूतियाँ सम्हालें।'' यह सुन क्रोधित हो सब भिक्षुओं ने किसी उपाय से जबरदस्ती वमन किया तथा वमन में चमड़े के छोटे-छोटे टुकड़े देख लज्जित तथा व्याकुल हो अपने स्थान पर चले गये। नीली के कारण भिक्षुओं का अपमान देख सारे घर वालों ने रुष्ट होकर ''नीली परपुरुषगामी है'' इस प्रकार का झूठा लांछन लगा दिया। कुछ ही दिनों में यह बात पूरे नगर में फैल गई। अपने लांछन को दूर करने के लिए नीली ने भगवान् के सामने प्रतिज्ञा की-''हे भगवन्! जब तक मेरा यह लांछन (अपवाद) समाप्त नहीं होगा तब तक मैं भोजन नहीं करूँगी, अनशन धारण करती हूँ।'' उसकी इस कठोर प्रतिज्ञा एवं शील के माहात्म्य से नगर-रक्षक देवता को क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसने आकर कहा-''हे सती! तू व्यर्थ ही अपने प्राणों का विसर्जन मत कर। मैं आज रात को ही नगर के दरवाजे कीलित करके राजा, मंत्री तथा नगर के मुख्य लोगों को स्वप्न देता हूँ कि जो नगर के दरवाजे कीलित हो गये हैं, वे किसी महासती के बायें पैर के स्पर्श होने से खुलेंगे।'' इस प्रकार कहकर देव चला गया। उसने दरवाजे कीलित करके राजा आदि को स्वप्न दिया प्रातःकाल दरवाजों को कीलित देख राजा ने अपने स्वप्न के अनुसार नगर की सभी स्त्रियों को बुलाकर दरवाजों का स्पर्श करवाया लेकिन दरवाजे नहीं खुले। तब राजा ने बड़े सम्मान के साथ नीली को बुलवाया। नीली भी जिनेन्द्र अर्चना करके दरवाजे के पास गई और उसने अपने बायें पैर से दरवाजे को स्पर्श किया। नीली के स्पर्श करते ही दरवाजे खुल गये एवं नीली का सतीत्व प्रकट हो गया। इसी प्रकार सती मनोरमा ने अपने शील की परीक्षा दी और परीक्षा में सफल हो जगत् में शील के माहात्म्य को प्रकट किया, अपने शील में लगे अपवाद को दूर किया।

इसी प्रकार की घटना ''पद्मपुराण'' में रानी सिंहिका की आती है।

❑ रानी सिंहिका :

राजा सुकौशल के पौत्र नघोष अयोध्या का राज्य नीतिपूर्वक कर रहे थे। एक बार राजा नघोष अपनी सिंहिका नामक रानी को अयोध्या में छोड़कर उत्तर दिशा के राजा को जीतने के लिए निकले। इधर राजा को युद्ध में जाते देख दक्षिण दिशा के राजा ने बहुत बड़ी सेना लेकर अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। शस्त्र विद्या

और शास्त्र-विद्या दोनों में निपुण महाप्रतापिनी रानी ने बड़ी फौज लेकर दक्षिण दिशा के राजा से युद्ध किया तथा विजयपताका लहराते हुए नगर में प्रवेश किया। इधर राजा नघोष भी विजयश्री लेकर पुनः अयोध्या लौटे और जब रानी का पराक्रम सुना तो अत्यन्त कुपित हुए तथा मन में विचार करने लगे कि कुलीन स्त्रियाँ अखण्ड शील का पालन करने वाली होती हैं। उन्हें इस प्रकार की धृष्टता नहीं करनी चाहिए। ऐसा निश्चय कर वे रानी सिंहिका से उदास हुए और उसे पटरानी पद से हटा दिया।

एक बार राजा के शरीर में मदादाह ज्वर हुआ। अनेक कुशल वैद्यों ने नाना औषधियों से उपचार किया परन्तु किंचित् भी स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ। जब राजा के दाह रोग की जानकारी रानी सिंहिका को प्राप्त हुई तो वह बहुत चिन्तित हुई। अपनी शुद्धता और राजा के आरोग्य के लिए रानी ने पुरोहित, मंत्री आदि सामन्तों को बुलाकर जल देते हुए कहा-''यदि मैं मन, वचन और काय से पतिव्रता हूँ, पवित्र हूँ तो इस जल के सिंचन से राजा दाहज्वर रहित होवें।'' जल का सिंचन करते ही राजा का शरीर दाहज्वर से रहित, हिम के समान शीतल हुआ और आकाश में शब्द गूँजने लगे ''शीलवती पतिव्रता रानी सिंहिका धन्य हो! धन्य हो!!''आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। राजा ने रानी को शीलवती जानकर पुनः पटरानी पद पर आसीन किया। देखो! जिस दाहज्वर को रसयुक्त अनेक महान् औषधियाँ भी दूर नहीं कर सकीं, वह दाह शील के प्रभाव से सामान्य जल से भी नष्ट हो गया तथा देवों द्वारा पुष्पवृष्टि आदि आश्चर्य उपस्थित हुए। अतः हर प्राणी को इस शील को उत्तम रत्न समझ सावधानी से इसकी रक्षा करनी चाहिए।

श्रीमन्दिर के शिखर पर चढ़े हुए कलश की भाँति ब्रह्मचर्य मानव-जीवन की अन्तिम ऊँचाई है। जिसका अर्थ है- समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण और मन, वचन एवं काय द्वारा लोलुपता से मुक्ति। इस महान् व्रत की रक्षा से मनुष्य स्त्री के लिए प्रिय, सुन्दर शरीर का धारक, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वीर्य और सुख का अद्वितीय सागर तथा मुक्तिरूपी वधू के मुख के लिए रत्नमय दर्पण स्वरूप होता है। लोक में राजा ब्रह्मचर्य के तेज से प्रजा की रक्षा करता है।

आचार्य अकलंकदेव ने कहा है कि ब्रह्मचर्य मानव की स्वच्छन्द वृत्तियों पर अंकुश है। जहाँ यह है वहाँ जीवन है क्योंकि निरंकुश व्यक्ति का विकास 'खरविषाणवत्' है।

पृथ्वी पर अन्य सब व्रतों से रहित भी एक ब्रह्मचर्य व्रत प्रशंसनीय है और

उसके बिना सत्पुरुषों का समस्त व्रतों का समूह भी प्रशंसनीय नहीं होता है। आचार्य महाराज कहते हैं- उस ब्रह्मचर्य का पालन करो जो सारभूत है, श्रेष्ठ गुणों को देने वाला है, संसार से पार करने वाला है, स्वर्ग और मुक्ति का हेतु है तथा दुःख रूपी सागर को लाँघने के लिए सेतु (पुल) है। तुम उस ब्रह्मचर्य की सेवा करो जो संसार समुद्र से तारने वाला है, सुखकर है, देवों के द्वारा पूजित है, मुक्ति का द्वार है, अपार पुण्य को उत्पन्न करने वाला है, धीर मनुष्यों द्वारा सेवित है, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप गुणों का उत्तम पात्र है, अत्यन्त पवित्र है एवं लोक और परलोक सम्बन्धी सुखों का घर है तथा इससे श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है। ब्रह्मचर्य पालन से पवित्र बुद्धिवाला मनुष्य आश्चर्यकारी ऐश्वर्य, उदारता, शूरवीरता, धीरता, सुन्दरता और बल को प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा करने से मनुष्य स्त्री के लिए प्रिय, सुन्दर शरीर का धारक, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, बल तथा सुख का अद्वितीय सागर तथा मुक्तिरूपी वधू के मुख के लिए रत्नमय दर्पण स्वरूप होता है।

जिनके शरीर में सब लोगों के लिए अत्यन्त प्रिय ऐसा निर्मल शील सुशोभित होता है उनके लिए अग्नि जल के समान, समुद्र नहर के समान, मेरू लघु शिला के समान, सिंह मृग के समान, सर्प मालासमूह के समान और विषरस अमृत के समान शीघ्र ही आचरण करने लगता है। जो शील को धारण करते हैं उनकी व्याघ्र, सर्प, जल और अग्नि आदि की विपत्तियाँ क्षय को प्राप्त होती हैं। उनके अनेक प्रकार के कुशल मंगल समुल्लसित होते हैं, सुख निकटता को प्राप्त होता है, कीर्ति विस्तृत होती है, धर्म संचय को प्राप्त होता है, पाप नष्ट होता है और स्वर्ग तथा मोक्ष के सुख प्राप्त होते हैं। आचार्य महाराज उपदेश करते हैं कि धन्य है उन महापुरुषों को जिनका मन विषयों से स्वप्न में भी आलीढ़ नहीं हुआ तथा काम के बाण आदि स्त्रियों के कटाक्षों से स्पृष्ट नहीं हुआ है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में ऐसे-ऐसे महापुरुष हो चुके हैं, जिनकी प्रशंसा किसी प्रकार शब्दों से नहीं की जा सकती है, जिनके जीवन में वह पराक्रम, धैर्य और मनोजयता थी जो बड़े-बड़े साधुओं में भी न मिले। वे महान् आत्मायें गृहस्थी के कीचड़ में फँसी हुई थीं, लेकिन फँसे हुए भी निम्नलिखित पंक्तियाँ चरितार्थ करती थीं-

गेही पे गृह में न रचे ज्यों, जल से भिन्न कमल है।
नगर-नारी को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥

उन्होंने देवांगनाओं के समान अपनी सुन्दर पत्नियों के साथ रहते हुए भी असिधारा व्रत का अखण्ड रूप से पालन किया। उन्होंने अपने मन से भी ब्रह्मचर्य

का खण्डन नहीं किया था। बड़े आश्चर्य की बात है, उन्होंने ऐसा कैसे किया था? सामान्यतः कोई व्यक्ति सोच सकता है क्या ? क्या कभी ऐसा हो सकता है कि विवाह करे एक के साथ नहीं अनेक के साथ, फिर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। हाँ, यह कार्य दुःसाध्य अवश्य है लेकिन असंभव नहीं है। क्योंकि ''मन के जीते जीत है, मने के हारे हार'' जिसने अपने मन को जीत लिया है, वे तीन लोक को जीतने में समर्थ होते हैं। जिसने स्त्री एवं शरीर के दोषों का अच्छी तरह विचार कर लिया है, जिसे ब्रह्मचर्य के गुणों, लाभों का सुष्टुरूप से ज्ञान हो गया है, वह उस रूप से इस कार्य को करने में समर्थ हो सकता है।

❑ राजकुमार अभिराम :

पद्मपुराण में महाराज दशरथ की महारानी कैकेयी के पुत्र भरत के कई भवों का वर्णन आया है। उसमें एक भव का वर्णन करते हुए बताया है कि पूर्व भव में भरत अचल नामक चक्रवर्ती के 'अभिराम' नामक पुत्र थे। उसने बाल्यावस्था में ही एक दिन मुनिराज के उपदेश को सुन वैराग्य से ओत-प्रोत हो पिताजी से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। पिता चक्रवर्ती बोले-''मैं चक्रवर्ती पद के योग्य नाना ऐश्वर्य और भोगों को भोगूँ और तू चक्रवर्ती का पुत्र होकर नग्न रहे, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि यातनाओं को सहन करे, ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम घर में ही रहो और गृहस्थ धर्म का पालन करो। अभिराम ने बार-बार दीक्षा लेने का आग्रह किया लेकिन पिता ने मोहवश उसे दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं दी और यह सोचकर कि दीक्षा न ले लेवे, इसलिए शीघ्र ही सुन्दर रूप-लावण्य से युक्त देवकन्याओं सम नवयौवनवती तीन हजार कन्याओं के साथ राजकुमार (अभिराम) का विवाह कर दिया। उन कन्याओं ने नाना प्रकार के मधुर आलाप, हाव-भाव-विलास आदि चेष्टाओं से कुमार को मोहित करना चाहा परन्तु महाशीलवान् त्यागी कुमार को ये सब चेष्टायें और विषय सुख विष के समान लगते थे। वह मन में विचार करता था, पिता ने मुझको तीन हजार बेड़ियों के बंधन में बाँधा है। परन्तु मैं दृढ़तापूर्वक असिधारा व्रत पालूँगा, स्त्रियों के मध्य रहना और शील पालना, उनसे संसर्ग नहीं करना ''असिधारा'' व्रत है। कुमार को संसार की माया किञ्चित् भी नहीं रुचती थी। वह अत्यन्त उदास, वैराग्य से युक्त जिनधर्म की चर्चा में अपना समय व्यतीत करता था। वह स्त्रियों को सदैव जिनधर्म का उपदेश देता था। संसार की असारता, मनुष्य भव की दुर्लभता, जीवन की चंचलता आदि के बारे में समझाता था। कुमार के परमार्थ उपदेश से स्त्रियों का चित्त शांत हुआ और वे भी अनेक प्रकार के नियम

लेकर शीलव्रत में दृढ़ हुईं।'' अर्थात् उन्होंने भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। कुमार एकान्तर, बेला, तेला आदि अनेक उपवास करता हुआ दृढ़तापूर्वक असिधारा व्रत पालता था, तप से उसका शरीर इस प्रकार सूख गया था जैसे ग्रीष्मकाल के सूर्य से सरोवर। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि,निश्चल चित्त, धीर, वीर उस कुमार ने चौंसठ हजार वर्ष तक तप करते हुए व्यतीत किये और अन्त में पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए समाधिमरण पूर्वक देह को त्याग कर छठे स्वर्ग में देव हुआ।

जहाँ विषयभोग-सामग्रियों का उग्र तूफान चल रहा था, तीन हजार कन्याओं द्वारा भोगों की ओर दी गयी प्रेरणा मानों हाथ पकड़ कर मार्ग में विपरीत दिशा में बलात् प्रेरित कर रही थी, ऐसी विपरीत अवस्था में भी राजकुमार अभिराम के श्रद्धा और वैराग्य रूप चरण किञ्चित् भी नहीं डगमगाये और वे निरन्तर लक्ष्य की ओर बढ़ते गये। अतः हमें गृहस्थ वैरागी राजकुमार के आदर्श जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए, जो विपुल भोग सामग्री के दल-दल में नहीं फँसे और जिसने तीन हजार कन्याओं के बीच चौंसठ हजार वर्ष तक रहकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया तो क्या आज गृहस्थावस्था में एक नारी के बीच पर्व के दिनों में व्रत नहीं पाला जा सकता है? अवश्य पाला जा सकता है। यदि लक्ष्य जिनेन्द्रदेव की आज्ञा पालन करने का है तो कोई कार्य कठिन नहीं हो सकता।

❑ अनंगविजयी अनंगसरा :

उत्तम शील के धारक मनुष्य को समुद्र भी नहीं डुबो सकता है, प्रज्ज्वलित ज्वालाओं वाली अग्नि भी उसे जलाने में समर्थ नहीं होती, देवता भी उसे लांघने में समर्थ नहीं हैं और आने वाली विघ्न-बाधायें प्रयत्न के बिना ही नष्ट हो जाती हैं। जो मनुष्य गुणों से सहित इस श्रेष्ठ शीलरूपी रत्न को हृदय में धारण करता है, लक्ष्मीरूपी स्त्रियाँ उसकी स्वयं सेवा करती हैं, पुरुषों के शील व्रत से दुष्ट मनुष्य अधीनता को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार क्षुद्र उपद्रव करने वाले दुष्ट तिर्यंच भी वशीभूत हो जाते हैं। चाहे तीर्थों को जाओ, चाहे एक पैर से खड़े रहो, चाहे जल में निमग्न हो जाओ और चाहे पर्वत के शिखर से गिर पड़ो तो भी शीलरहित मनुष्य को परभव में सिद्धि उसी तरह प्राप्त नहीं होती, जिस तरह कि शिला पर बोए हुए बीजों से धान्य की सिद्धि नहीं होती है। शील व्रत की रक्षा करने से मनुष्य, नरेन्द्र तथा सुरेन्द्र के भोग भोगने वाले, समस्त दोष रूपी अंजन के समूह को नष्ट करने वाले और ज्ञान आदि गुणों से अलंकृत होते हैं। शील समस्त गुणसमूह का चूड़ामणि है, शील विपत्ति से रक्षा करने वाला है, शील उत्तम आभूषण है, शील मुनियों के द्वारा

सदा सेवित है, शील भयंकर शारीरिक रोग रूपी दावानल को शान्त करने के लिए वर्षा ऋतु सम्बन्धी मेघ का जल है और शील समस्त सुखों का अद्वितीय कारण है। अतः किसको इष्ट नहीं है? शीलरहित स्त्रियों को जीवित रहते हुए भी मृतक समान जानना चाहिए और शीलवती नारी मरण को प्राप्त होने पर भी इस लोक तथा परलोक में जीवित कही जाती हैं। यतश्च इस जगत् में शील स्त्रियों के सब मनोरथों को सिद्ध करने वाला है। इसलिए इसके बिना एक क्षण भी जीना निरर्थक है। शीलरक्षित मनुष्य किसी के द्वारा अभिभूत/तिरस्कृत नहीं होता है क्योंकि महाह्रद में निमग्न पुरुष का दावानल क्या कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं कर सकता। शीलवतियों का विषधर, सिंह, अष्टापद आदि भयंकर क्रूर पशु क्या बिगाड़ेगे ? शील का पालन करने वालों में ऐसी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं जो भव-भवान्तरों में भी साथ देती हैं। देखो! विशल्या में ऐसी शक्ति कहाँ से आयी जिसके प्रभाव से उसके शरीर का स्पर्श हुआ जल बड़े-बड़े असाध्य रोगों को नष्ट करने में समर्थ था। यह उसके पूर्व में पाले गये शील का ही प्रभाव था। वह पूर्व में चन्द्रधर चक्रवर्ती की अनंगसरा नाम की पुत्री थी। उसके रूप से मोहित होकर एक विद्याधर उसका हरण कर ले गया। चक्रवर्ती के सेवकों से युद्ध करते समय उसका विमान चूर-चूर हो गया। तब उसने व्याकुल होकर उस कन्या को आकाश से गिरा दिया, जिससे वह ऐसी पर्णलघु विद्याधर अटवी में जा गिरी, जहाँ सामान्य मनुष्य का तो प्रवेश ही असंभव था तथा जहाँ निरन्तर शेर, चीता आदि जंगली जानवरों की गर्जना सुनाई देती थी। ऐसे भयानक जंगल में अनंगसरा ने तीन हजार वर्ष अपना जीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ बिताया था। उसके पास वस्त्रों का अभाव था फिर भी उसके मन में कभी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। वहाँ उसके शील के प्रभाव से शेर, चीता आदि जानवरों ने उसको अपना भोजन नहीं बनाया। वे उसके साथ भाई, बहिन, मित्र के समान क्रीड़ा करते थे। वहाँ से मरण कर वह भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में विशल्या नाम की राजकुमारी हुई और उसके स्पर्श किये जल से रावण के बाणों से मूर्च्छित लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई। आचार्य महाराज कहते हैं कि विशल्या का विवाह जब तक नहीं हुआ था तब तक उसमें जो रोगनाशक शक्ति थी, वह लक्ष्मण के साथ विवाह होने के बाद नहीं रही थी। इसी प्रकार शीलवती अंजना के शील के प्रभाव से मारने के लिए द्वार पर पहुँचा हुआ अष्टापद भी अंजना के तेजस्वी चेहरे को देखकर बिना मारे ही लौट गया।

गृहस्थी में रहकर स्वदारसन्तोष व्रत पालन करने वालों के शील का भी इतना प्रभाव देखा जाता है तो जो अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उनका तो

कहना ही क्या? उन्हें क्या-क्या नहीं मिलता अर्थात् सब कुछ मिलता है।

इसी सन्दर्भ में अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले विजय सेठ एवं विजया सेठानी को नहीं भूला जा सकता। उनके निमित्त से जो आश्चर्यकारक घटनाएँ घटित हुई थीं। उनका वर्णन जड़ लेखनी से अथवा जड़ शब्दों के द्वारा नहीं किया जा सकता है उनको भोजन करवाने मात्र से पापों का प्रायश्चित्त हो जाता था। आचार्यों ने विजय सेठ और विजया सेठानी के असिधारा व्रत की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उस दम्पति को भोजन कराने मात्र से सेठ जिनदास के पापों का प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ।

❑ विजय सेठ और विजया सेठानी :

उज्जयिनी नगरी में धर्मनिष्ठ, षट् आवश्यक कर्म में निरत, जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों का भ्रमर जिनदास नामक सेठ रहता था। एक दिन उसकी नवविवाहिता पुत्रवधू के हाथ से असावधानी वश जीवानी (बिलछानी) जमीन में गिर गई। सेठ के हृदय में इस घटना से बहुत व्यथा हुई। उसने एक दिन आचार्य महाराज से अपने घर में हुए इस पाप को नष्ट करने के लिए अपनी निन्दा-गर्हा करते हुए प्रायश्चित्त मांगा। सेठ की बात सुन आचार्य भगवान् प्रायश्चित्त देते हुए बोले-''सेठ! यदि तुम अपने घर चौरासी हजार मुनिराज को एक साथ आहार कराओ अथवा तुम अखण्ड असिधारा व्रत का पालन करने वाले दम्पति को भोजन कराओ, जिनके शील के प्रभाव से तुम्हारे रसोईघर में बँधा हुआ (काला पड़ गया है वह) चन्दोवा सफेद हो जावे। न दोनों में से एक कार्य करने पर तुम्हारे घर में हुआ पाप नष्ट हो जावेगा।'' सेठ ने सहर्ष प्रायश्चित्त स्वीकार किया और चौरासी हजार मुनिराज का एक साथ मिलना एवं एक साथ आहार होना दुष्कर समझ प्रतिदिन एक-एक दम्पति को क्रमशः निमंत्रित करके भोजन करवाना प्रारम्भ किया। एक दिन उस दम्पति की बारी आई, जिन्होंने अपनी बाल्यावस्था में गुरु के निकट अध्ययन किया और गुरु को गुरुदक्षिणा के रूप में कुमार विजय ने शुक्लपक्ष में तथा कुमारी विजया ने कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की कठोर प्रतिज्ञा ली थी। उन्होंने विवाह के बाद एक-दूसरे के विचार को जानकर यह निश्चय किया था कि जिस दिन अपनी यह गुप्त बात प्रकट हो जायेगी, उसी दिन हम दोनों जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर लेंगे।

इस प्रतिज्ञा को निर्दोष और निर्बाध रूप से कई वर्षों से वे पाल रहे थे। उस दम्पति को भोजन कराते ही सेठ के रसोईघर में बँधा हुआ चंदोवा सफेद हो गया।

घर में रहते हुए भी तथा विवाह के बाद भी बाल ब्रह्मचारी रहने वाले उस दम्पति को भोजन करवाकर सेठ का प्रायश्चित्त पूरा हुआ। विजय सेठ और विजया सेठानी के शील की चर्चा घर-घर फैल गयी। दोनों सेठ-सेठानी यह सोचकर कि हमारी गुप्त बात (ब्रह्मचर्य) प्रकट हो गयी है, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर लेते हैं। धन्य हो उनके शील-संयमित मन एवं धैर्य को जिन्होंने अपने जीवन को ऐसा अद्वितीय आदर्शमय बनाया और हमें भी आदर्शमय बनने की प्रेरणा दी।

❑ कुलभूषण-देशभूषण :

इसी सन्दर्भ में कुलभूषण-देशभूषण की कथा भी मात्र वैराग्य-वृद्धि की ही नहीं अपितु मानव-जीवन में ब्रह्मचर्य-पालन करने की भी प्रेरणा देने वाली है। लोक में जड़ पदार्थ भी क्यों न हो, यदि वह सुन्दर मनमोहक है तो प्रत्येक प्राणी को तत्काल अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस पर भी नारी की सुन्दरता और उसमें भी तरुणाई की सुन्दरता का तो कहना ही क्या! वह तो इस कहावत को चरितार्थ करती है कि ''एक तो गुरबेल फिर नीम पर चढ़ी।'' नवयौवना नारी की सुन्दरता एक ऐसी शराब है जिसे पीने से नहीं, देखने मात्र से ही नशा आ जाता है। कभी-कभी तो यह सुन्दरता संयम की सीमा का भी उल्लंघन कर जाती है, जहाँ भाई-बहिन का पावन रिश्ता (सम्बन्ध) भी जवाब दे देता है। परन्तु जो वस्तुस्वरूप के आधार से उस सुन्दरता का मूल स्वरूप जान लेता है, उसका राग-विराग में परिणत हो जाता है।

राजा क्षेमंकर और महारानी विजया के पुत्र कुलभूषण-देशभूषण संयमित और सात्त्विक आहार, कठोर भूमि पर शयन, नियमित चर्या, लगनशीलता एवं इन्द्रियविजय पूर्वक बारह वर्ष तक अध्ययन कर गुरु से न्याय-नीतिपूर्वक जीवन जीने का आशीर्वाद लेकर अपने नगर को लौट रहे थे। राजा के आदेशानुसार नगरी राजकुमारों के स्वागतार्थ दुल्हन के समान सजाई गई थी। दोनों राजकुमार प्रसन्नता से रथ में बैठे नगर की शोभा देखते हुए सबको अपनी प्रसन्न दृष्टि एवं वात्सल्य मुद्रा से संतुष्ट करते हुए बढ़ते जा रहे थे। रथ बढ़ता हुआ प्रासाद (महल) के द्वार पर आ पहुँचा। ऊपर झरोखे में खड़ी नवयौवना सुन्दरी बहिन निर्निमेष दृष्टि से युगल बन्धुओं को देखती हुई पुलकित हो रही थी। सहसा दोनों की दृष्टि उस हर्षित युवती के मुखचन्द्र पर अटक गई और उसी समय दोनों के मन में विकार का प्रार्दुभाव हो गया। वासना अपने पंख खोल सुंदरी का वरण करने उड़ चली। एक की चाह में दोनों बावले (पागल) थे। दोनों एक दूसरे के भावों को नहीं जानते

हुए अपलक उस अनिंद्य सुन्दरी को देख रहे थे और सोच रहे थे कि यदि भैया इसके साथ मेरा विवाह होने में बाधक बनेगा तो मैं उसे तलवार से मौत के घाट उतार दूँगा। इस प्रकार निंद्य विचार में डूबे रहे थे उसी समय रथ के, महल में प्रविष्ट होने से सुन्दरी आँखों से ओझल हो गयी। दोनों व्याकुल हो गये फिर भी दोनों की वासना ने पराजय स्वीकार नहीं की। वे दोनों भावी योजना में फँस गये। माँ सामने आ गई लेकिन दोनों ने नहीं देखा वे खोये हुये थे सुन्दरी के रूप में सारथी के संकेत देने पर दोनों रथ से उतरे, उन्होंने माँ के चरण स्पर्श किये माँ आरती सजाये खड़ी थी। माँ ने आशीर्वाद दिया। इसी बीच सुन्दरी भी नीचे उतर आयी। अतृप्त नयन पुनः उसके (भातृ) दर्शन कर तृप्ति पाने लगे। रानी विजया सुन्दरी पुत्री (कनकमञ्जरी) का हाथ पकड़कर आगे करती हुई बोली- ''बन्धुओं की प्रतीक्षा में रत अब क्यों छिप रही हो? भाईयों से कैसा संकोच ? आयुष्मानों! यह तुम्हारी बहन कनकमञ्जरी है। बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।'' यह सुनते ही दोनों कुमारों पर मानों घड़ों पानी पड़ गया। सुन्दरी के परिचय ने मानों कानों में गरम-गरम शीशा डाल दिया हो, हृदय में विष ही विष घुल गया। मन ग्लानि से भर आया। अहो! यह हमारी तनुजा है और इसके प्रति हमारे ऐसे निकृष्ट (गन्दे) विचार। मन में द्वन्द्व चलने लगा। दोनों ने बहिन के चरण स्पर्श किये। बहिन बोली-''भैया! कितने दिनों से राह देखते-देखते आज मेरे मन की इच्छा पूरी हो सकी।'' यह सुन दोनों को मानों करेण्ट मार गया हो। दोनों अन्दर ही अन्दर पश्चात्ताप करते हुए काम को धिक्कारने लगे। दोनों बहिन के चरणों में झुककर क्षमायाचना करने लगे। मैं अपराधी हूँ, मैं अपराधी हूँ। कनकमञ्जरी हतप्रभ हो कहने लगी-''बड़े भैया! आप यह क्या कह रहे हो ? कौन-सा अपराध ?'' कुमार-''मेरा घोर अपराध है, बहिन! मुँह से कहा नहीं जा सकता।'' वहाँ राजा प्रजा सब अवाक् थे, यह रंग में भंग कैसा? पिता प्रश्न रूप में देख रहे थे, परन्तु वे कुमार क्या उत्तर देते? माँ ने कहा-''महल में चलो। वहीं सबका निराकरण करेंगे।'' दोनों भाई माँ की आज्ञानुसार महल में गये। वहाँ पिता, मंत्री, माता, बहिन आदि के प्रश्नों का सही-सही समाधान करके अपने दुर्विचारों (वासना के विचारों) के प्रायश्चित्त के रूप में दीक्षा लेने का विचार कर दोनों एक साथ बोले-''जिस महल के द्वार पर ही अनजाने में हमारा सर्वस्व लुट गया तो उसमें प्रवेश करने पर न जाने क्या-क्या होगा ?'' माँ बोली-''यह तुम्हारा भ्रम है वत्स!'' दोनों भाई-'' माँ! भ्रम में तो अब तक थे जो अब टूट गया है।'' क्षण भर में ही कामदेव के बाण निरस्त हो गये। वह अब कुमारों से पराजित हो चुका था। ''अब हम दीक्षा लेगें'' कुमारों के दृढ़ संकल्प के कारण

तत्काल शोभायात्रा दीक्षायात्रा में परिवर्तित हो गयी। राजा ने अन्तिम पासा फेंका-''पुत्रों! अभिलाषा छूटने के पूर्व वस्तु का त्याग संक्लेश का कारण बनता है।'' दोनों भाईयों ने विनम्रता एवं साहस से उत्तर दिया-''पिताजी! आत्मस्वभाव के परिचय के अभाव में त्याग, संक्लेश का कारण हो सकता है लेकिन आत्म परिचय प्राप्त करके त्याग सहज रूप में किया जा सकता है।'' इस प्रकार पिता को सन्तुष्ट कर दोनों ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। एक बार वंश-स्थल नगर के निकट वंशगिरि पर साधना में निमग्न अनेक प्रकार के तप और ध्यान में मग्न मुनिराज समता रस का पान कर रहे थे। तब असुरकुमार और राक्षस आदि देवों ने विक्रिया से सर्प, बिच्छु आदि बनकर मुनिराजों के अंग से लिपट कर भयंकर शब्द आदि करते हुए उपसर्ग किये परन्तु दोनों मुनिराजों ने शान्त भाव से उपसर्ग सहन कर केवलज्ञान प्राप्त किया और कुंथलगिरि से निर्वाण प्राप्त किया।

ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता है फिर भी सामान्य प्राणियों को ब्रह्मचर्य का महत्त्व दिखलाने के लिये यहाँ कुछ कथानक लिखे गये हैं। आगम में और भी सैंकड़ों सतियों एवं महापुरुषों के उदाहरण आते हैं लेकिन उन सबकी जीवनगाथा यहाँ लिखना असंभव है। अतः ब्रह्मचर्य की महिमा को शास्त्रों से जानकर अपने मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

सृष्टि में भटकते दुःखी प्राणियों को प्राचीन आचार्यों ने शील के विषय में जो मार्गदर्शन दिया था, उन्हीं के वचनों का संकलन करके मैंने स्वान्तः सुखाय और भव्य प्राणियों के उपकार के लिए इस ''शील मञ्जूषा'' पुस्तक का लेखन किया है। वास्तव में इस पुस्तक को लिखने में मैंने कुछ नहीं किया। इसके लेखन का पूरा श्रेय तो उन प्राचीन महान् आचार्यों को ही है क्योंकि उनके रचित ग्रन्थों का आधार लेकर ही इस पुस्तक का लेखन हुआ है। परमपूज्य आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज का साक्षात् आशीर्वाद एवं पूज्य स्वर्गीय गुरुदेव विवेकसागर जी महाराज के परोक्ष आशीर्वाद से ही इस कार्य को करने में मुझे सफलता मिली है। मैं सभी पूज्य गुरुओं की अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और उनके उपकार को कभी नहीं भूल सकती हूँ।

इस पुस्तक की रचना का प्रारम्भ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, हरदा, जिला-होशंगाबाद (म.प्र.) में वीर निर्वाण संवत् 2520 के चातुर्मास काल में 1008 भगवान् श्री शांतिनाथ के चरणों में हुआ तथा वीर निर्वाण संवत् 2521 कार्तिक शुक्ला सप्तमी, बुधवार को निम्बाहेड़ा (राज.) में भगवान् 1008 श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर में यह पूर्ण हुई।

COPY RIGHT इस शास्त्र का स्वरूप,ग्रंथ का नाम, लेखक,
संपादक एवं स्तर परिवर्तित न करें तो किसी को भी प्रकाशित
कराने का अधिकार है, हम आपके सहयोग के लिए तत्पर है।
प्रकाशन के पूर्व हमसे लिखित अनुमति अवश्य प्राप्त करें।
आप इसे DOWNLOAD भी कर सकते हैं।